"आग, पानी और तूफान" ऐतिहासिक उपन्यासों के विकास में क्रान्ति का प्रतीक है। इस उपन्यास में पहली बार ऐतिहासिक वातावरण के मध्य मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्र की प्रतिष्ठा के सहारे मानव-सभ्यता की मूलभूत समस्या का आकलन किया गया है।

आज विश्व का संयुक्त पारिवारिक जीवन आपद्ग्रस्त है और उसका भविष्य भी निरापद नहीं है। उस जीवन के सर्वथा समाप्त हो जाने पर व्यक्ति का जीवन उल्लम्भित रह सकेगा : यह संदेहास्पद है। वैयक्तिक दृष्टि से माँ का स्थान कितना ही उच्च क्यों न हो किन्तु संयुक्त पारिवारिक जीवन में भाभी एक केन्द्रीय शक्ति होती है। यदि उस शक्ति की प्रतिष्ठा दिगन्त व्यापी हो जाए तो पारिवारिक जीवन का उल्लास कभी उदासीन नहीं हो सकेगा। उसी संयुक्त पारिवारिक शक्ति की प्रतिष्ठा इस उपन्यास में हुई है और संयुक्त पारिवारिक जीवन को एक आशा की किरण मिली है।

इस उपन्यास का नायक पीथल (कवि पृथ्वीसिंह राठौर) भारतीय इतिहास का एक ऐसा रत्न है जिससे स्वातन्त्र्योपासना को ज्योति मिली है। महाराणा प्रताप जैसे महान व्यक्तित्व को प्रेरणा और शक्ति मिली है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत ग्रन्थ हिन्दी-उपन्यास-साहित्य में क्रान्ति स्तंभ बनकर उतर रहा है।

डा० यतीन्द्र
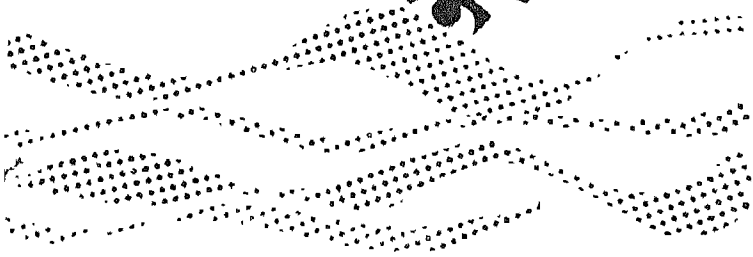
आग पानी और तूफान

उमेश प्रकाशन

५, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक • उमेश प्रकाशन,
५, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-६

मुद्रक • राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स,
२७ शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली

संस्करण • दिसम्बर, १९६१
(प्रथम संस्करण)

मूल्य • चार रुपये

प्रस्तुत उपन्यास के प्रणयन में इति-
हास, मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र
और साहित्य के अनेक ग्रंथों से
सहायता मिली है। मैं उन सभी
ग्रंथों के प्रणेताओं के प्रति हृदय से
आभारी हूँ। मानवता की बहती
धारा में यदि इस उपन्यास ने एक
बूंद का भी अपना योग दिया तो मैं
अपना श्रम सफल समझूंगा।

विजयदशमी, २०१८

—यतीन्द्र

आदरणीय डा० विजयेन्द्र स्नातक
को समर्पित

प्रथम परिच्छेद

जिसने इस दुनिया में पहले-पहल भाभी के प्यार की कल्पना की होगी, वह जरूर से जरूर सबसे बड़ा रोमान्टिक कलाकार होगा— और नालायक तो परले सिरे का होगा। अरे! कोई सीमा है? सारा रोमांस एक जगह ही भर दिया। वह मनमाजी भी खूब रहा होगा—मनमौजी नम्बर एक। और भंग तो वह हमेशा पिये रहता होगा, तभी तो उसने पहले-पहल जब प्यार का बँटवारा किया तो माँ, बहिन, प्रेयसी आदि सबको थोड़ा-बहुत देकर फिर सबका प्यार छीन लिया और बना दिया एक मूर्ति···भाभी।

वैसे प्यार औरों का भी होता है, लेकिन भाभी के प्यार का मज़ा ही कुछ और है। चिकोटी वह काट ले, गाल मसलकर लाल वह कर दे, चपत वह लगा दे, हँसले-हँसाले, रोले-रुला दे और कहाँ तक कहूँ, अगर देवरजी जरा ज्यादा छोटे और दुलारे हुए तो कपड़े खोलकर दिगम्बर बना दे, नचा दे, और ताली पीटे अलग से। शादी तो वह रोज़ कराती है—गाय से, भैंस से, पेड़ से, पत्थर से। बहिन को भी नहीं छोड़ती। आँख में काजल लगाते-लगाते गालों पर पोतकर हनुमानजी बनाना तो वह शायद ही कभी भूलती हो।

मज़ा तो तब आता है जब देवरजी नहा-धोकर साफ सुथरे कपड़े पहने बैठे हैं और बस पीछे से 'भाभी-छाप' हस्त रेखाएँ ट्रेड मार्क की लग जाएँगी ···हल्दी की या काजल की। साथ-साथ चिकोटी काटना तो उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है। अब देवरजी रूठेंगे, क्रोध करेंगे। भाभी कसम-पर-कसम खाएगी कि वह कभी मज़ाक नहीं करेगी और मुँह भी फुला लेगी। फिर घर से जाते समय शकुन के मौके पर वह लापरवाही और गुस्से के साथ

उन्हें पान दे देगी। वे भी बड़ी बेफिक्री से पान खाएँगे......थू...थू...थू...थू। उसमें सारे मसाले भर दिए गए हैं...मिर्च, नमक, कंकड़, पत्थर। राम! राम!! ऐसी भाभी से भगवान बचाए! भाभी है कि बला है!

फिर भी मैं सच कहता हूँ कि जिसे इस दुनिया में भाभी नहीं मिली, उससे बढ़कर अभागा कोई नहीं है। उसे फिर दुबारा जन्म ज़रूर लेना पड़ेगा। मेरा ख़याल है, भाभी पाकर पुनर्जन्म नहीं होता। पुनर्जन्म तो तब हो जब कोई बात इस जन्म में छूट गई हो। भाभी कुछ छोड़ती ही नहीं। भगवान भले ही कहीं चक कर जाएं, लेकिन भला भाभी कहाँ चूक सकती है?

ऐसी ही थी पीथल की भाभी...नाम था गंगा, जैसलमेर-नरेश की दुलारी कन्या। ख़ूबसूरत और प्यार से ज़्यादा प्यारी। हिमालय से अधिक महान ऊँची, प्रशान्त से अधिक गहरी और आकाश से भी अधिक उदार।

होली का रँगीला दिन था और सुबह-सुबह गुलाबी ठंड थी। सारा जैसलमेर नगर और राजमहल होली की रंगीनी से सज रहा था। बाजे बज रहे थे। गीतों से गगन गुंजरित हो उठा था। लेकिन पीथल का मन रंग खेलने को नहीं था और भाभी को मना कर दिया था कि वह रंग नहीं खेलेगा। पलंग पर वह रजाई में मुँह ढककर लेटा हुआ था। सुबह की ठंडी मादक हवा से बड़ी मीठी-मीठी नींद आ रही थी। सहसा उसका शरीर छनछनाया, मानो बरफ छू गया हो। वह रजाई फेंककर भन्नाता हुआ उठा। देखता क्या है कि उसकी रजाई पानी के मानसरोवर में हंस की तरह तैर रही है।

"सोते हुए को बरफ-जैसे ठंडे पानी से नहला दिया। यह कौनसी बात है, भाभी?"

"देखो लल्ला! सँभल के बोलो। मैं क्यों डालूँगी पानी? लालसा ने डाला होगा। मुझे कौनसी होली खेलनी है? तुम्हें खेलना है तो बहाना लेकर क्यों आते हो? जाओ, जिससे जी चाहे खेलो, लेकिन मैं नहीं खेलूँगी। याद रखना।"

पीथल हक्का-बक्का-सा रह गया। लालसा, भाभी की छोटी बहिन है। सम्भव है उसी ने डाला हो। खैर, बात पलट गई। तब भाभी ने बड़े रूखे मन से पूछा—

"हाँ पीथल! तुम्हारे भैया पूछ रहे थे, बताओ तुम्हें तलवार चलाना कहाँ तक आ गया है?"

"बस भाभी! एक ही वार में कवच काटकर शत्रु के दो टुकड़े कर सकता हूँ।"

"तो ठीक है। आज तुम्हारी परीक्षा है। तुम्हारे भैया कह गए हैं। लो, तलवार उठाओ और देखो, सामने ऊँचाई पर बड़े आले में जो विशाल लोहे का कलश रखा हुआ है, उसे एक ही वार में काट दो।"

पीथल उत्साह से भर गया और हाथ को साधकर उसने पूरी शक्ति से कलश पर वार कर दिया। किन्तु यह क्या? कलश कटते ही उसके फव्वारे से पीथल लाल रंग में नहा गया। आँख, नाक, कान, मुँह सभी रंग से भर गए···राम! राम!! भाभी भी अजीब है। अब उसे भाभी की चाल का पता चला। वह कुछ सोचे, तब तक पीछे से उसके दोनों हाथ रेशमी गुच्छे से बँध गए और भाभी चिकोटी काटती हुई तथा सतरंगे गुलाल से पीथल के गालों पर चित्रकारी करती हुई उमंग और तरंग में गा उठी—

"होली आई रे लला, होली आई रे!"

यह गीत मानो संकेत था······सारी सखियों तथा दासियों ने होली के इस गीत से महल में समा बाँध दिया। सारा महल रंग-गुलाल और हँसी-मजाक के साथ-साथ संगीत से गूँज उठा। देखते-देखते फर्श पर घुटनों तक गुलाल बिछ गया। उड़ते हुए गुलाल से अम्बर लाल हो गया। ऐसी रंगीनी को भेदकर महल में चारों ओर सुरीले कंठों से मस्ती के गीत उड़ने लगे—

"होली आई रे लला, होली आई रे!"

× × ×

लालसा और उसकी सखियाँ गा रही थीं—

"होली आई रसिया ! होली आई रे !"

× × ×

रास-मंडल सा बन गया। चारों ओर से घिरकर पीथल को बँधे हाथों ही उस गुलाल की धरती पर नाचना पड़ा। अब तो वह भी मटक-मटककर गा रहा था—

"होली आई रसिया, होली आई रे !"

घंटों तक रस बरसता रहा। पीथल को सभी नचाती रहीं, गवाती रहीं और कहाँ तक कहा जाए···। हँसी-विनोद के सागर में सभी डूबने-तिरने लगे। तब तक किसी तरह पीथल के हाथों का बंधन खुल गया। अब उसकी बारी थी। भाभी और लालसा की चोटियाँ सहज ही उसके हाथों में आकर बँध गईं। रंग ने पलटा खाया। आखिर उसने भाभी को 'चीं' कराकर ही छोड़ा और लालसा के गालों पर ज़ोरों से गुलाल मलता हुआ बोला, "और पानी डालो न !" लालसा के गालों पर जैसे मिर्च लग गई हो, वह छनछना उठी, आँखें छलछला गईं। वह बोली, "मुँह देखा है शीशे में ? मैं डालूँगी और इन पर ? काले बन्दर जैसा तो चेहरा है, तवे से भी ज़्यादा······। बड़े खूबसूरत हो ? जनाब तुम्हारी भाभी ने डाला था, घड़े का, ठंडा-ठंडा।" भाभी दोनों को झगड़ते देख खिलखिलाकर हँस पड़ी। रहस्य खुल गया।

अब जलपान का समय हो गया था। पीथल की थाल सफेद रसगुल्लों तथा नानाप्रकार की नमकीन पकौड़ियों से भर कर आई। भाभी ने बड़े प्यार से पीथल के मुँह में दो रसगुल्ले डाल दिए······थू···थू···थू···थू। ये सफेद खड़िया मिट्टी के बनावटी रसगुल्ले थे। शायद भाभी ने अपने देवर के लिए विशेष प्रेम से बनाये थे। पीथल ने मिष्टान्न छोड़कर नमकीन पकौड़ियों को मुँह में डाला······ओ···ब्वाअ···क्वाव्अ···। ये पकौड़ियाँ नीम की पत्तियों को भरकर विशेष विधि से लालसा के सुझाव पर दुलारे लल्ला के लिए तैयार की गई थीं। पीथल समझ गया कि अब खैर नहीं है। वह बिना कुछ खाये ही उठ गया। भाभी का मसालेदार पान तो पहले भी कई

बार खा चुका था। इसलिए आज खाने की हिम्मत नहीं हुई।

भाभी जितना विनोद और हँसी-मजाक करती है, उससे लाख गुना प्यार उसके दिल में भरा होता है। पीथल को अनखाये देखकर उससे नहीं रहा गया। अब उसने सचमुच सुस्वादु मिठाइयाँ, फल, मेवे आदि मँगवाए, किन्तु दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँककर पीता है। पीथल ने कुछ नहीं खाया, नहीं खाया। उसे हर मिठाई और हर नमकीन 'भाभी-छाप' करतूतों से भरी नज़र आती थी। इससे भाभी को बड़ा दुःख हुआ। बहुत मनाया। पीथल नहीं माना, किन्तु वह रूठा भी नहीं। बोला—

"मैं नहीं खाऊँगा भाभी! तुम्हारी मिठाई में मीठा ज़्यादा और नमकीन में नमक ज़्यादा है।"

यह फिलासफी हाँककर वह सामने रंगीन रेशमी वस्त्रों से सजी हुई पलंग पर लेटने चला। उस पर तशरीफ रखते ही नीचे की ओर श्रीमान् औंधे मुँह रंग के कुण्ड में चित्त लेट गए। चारों ओर से कहकहे और तालियाँ बज उठीं। और लालसा तो ताली पीटते-पीटते नाच उठी। किन्तु पीथल हँसते-हँसते रो पड़ा। वह सबकी ताली पीटना बर्दाश्त कर सकता था, किन्तु लालसा की नहीं। न जाने क्यों? भला उसे क्या मालूम था कि उसकी भाभी ने यहाँ भी जाल फैला दिया है। बिना बुनी हुई पलंग को रेशमी वस्त्र से ढककर रंग-कुण्ड पर बिछा दिया है। वह भन्ना उठा। भाभी है या तूफान? यह भी क्या कि हर बात और हर जगह मज़ाक-ही-मज़ाक और मज़ाक भी इतना कि लालसा के सामने मेरा अपमान हो गया। वह मुँहफुलाकर अपने कक्ष में चला गया। और भाभी......वह दिल मसोसकर रह गई। आज उसने पीथल को बहुत नचाया था, बहुत हँसाया था, बहुत चिढ़ाया था और रुलाया भी था।

पीथल रोते-रोते गुस्से के मारे सो गया। शाम को भी खाना नहीं खाया। वह मचल गया था। लाख मनाने से भी नहीं माना। अब रात हो गई है। महल के सभी प्राणी सुस्वादु भोजन से तृप्त होकर सो रहे हैं। केवल भाभी ही ऐसी है, जो दिल मसोसकर बैठी हुई है। आज बरस-बरस के

त्यौहार पर उसके सोलह बरस के दुलारे देवर ने खाना नहीं खाया। वह कैसे खाये ? पति छः महीने बाद सम्राट् अकबर की सेवा में से होली पर पत्नी के पास ससुराल आए हैं और रंग-महल में प्रतीक्षा कर रहे हैं। करने दो, वह नहीं जाएगी और नहीं गई। पीथल के पास आई। पुचकारा, सिर सहलाया, किन्तु पीथल नहीं उठा, करवट बदलकर सो गया। दासी भाभी के लिए भोजन लाई। भाभी ने थाल उठाकर एक ओर रख दिया और रो उठी…रोती रही। पश्चाताप के आँसू बड़े गहरे आते हैं, रोकने से भी नहीं रुकते। वह फिर उठी, सोने की थाल में बड़े प्यार से मक्खन, मिश्री, मेवा, फल तसमई आदि सारे मीठे पदार्थों को स्वयं सजा लाई। पीथल के पास रखा और सिसककर रो पड़ी। आज बरस-बरस के त्यौहार के दिन उसका पीथल बिना खाये सो गया। लोग कहेंगे कि आज पीथल की माँ होती तो क्या पीथल को बिना खिलाये सो जाने देती ? लेकिन भाभी के दिल की कौन जाने ? माँ का हज़ार गुना प्रेम उसके दिल में है। वह पीथल के लिए क्या नहीं करती ? लेकिन पीथल आज अपनी भाभी की मनुहार नहीं मान रहा है। कैसे माने पीथल ? भाभी ने आज उसे बहुत चिढ़ा जो दिया था। सारी बातें याद करते-करते भाभी का कंठ फूट पड़ा। आँखों से सावन-भादों की झड़ी बरसने लगी। वह पीथल का सिर सहलाते-सहलाते उसके गालों पर हाथ रखकर न जाने कब सो गई। भाभी के हृदय का मातृत्व आँखों से बरसते-बरसते कब थम गया ? कौन जाने ?

खाली पेट नींद कम आती है, सपने ज्यादा आते हैं। पीथल सपना देख रहा है, डर रहा है, रो रहा है।

"ऊँ…ऊँ…ऊँ…ऊँ…"

भाभी की नींद खुली, "क्या है रे ?" मातृत्व बरस पड़ा। उसने पीथल के सिर को अपनी गोद में भर लिया और आँखों में आँखें बिछाकर बोली, "मुझे माफ न करोगे पीथल ! आज माँजी होतीं तो क्या तु…भ…इ…सी …तरह……" भाभी का कंठ भर आया। आँसुओं से उसने सब कुछ कह दिया। अब पीथल की आँख खुली। वह सब कुछ देख सकता है, किन्तु भाभी

की आँखों में आँसू नहीं देख सकता, सारा क्रोध बह गया। उसने अपनी छोटी-सी हथेली में भाभी के गालों को भर लिया, रोओगी तो मैं कभी नहीं खाऊँगा।" भाभी ने आँसू पोंछ लिये।

"तो चलो, खालो।"

"ऊँ···हुं······जैसे तुमने मुझे नचाया है वैसे ही नाचो तो खाऊँगा।"

"अच्छा चलो, नाचती हूँ बाबा। खाना तो खाओ।" पीथल भाभी को खुश करना जानता था। वह दौड़कर घुंघुरू उठा लाया और भाभी के पैरों में बाँध दिये और बोला, "अब नाचो।" भाभी ने धीरे से फर्श पर पैर रखा और धीमे-धीमे थोड़ा नाच दिया।

"ऐसे नहीं। खूब नाचो······ज़ोर से।"

"तुम्हारे भैया सो रहे हैं। कच्ची नींद में जाग जाएँगे। कल दिन में नाच दूंगी। अब खाना खाओ।"

रात के सन्नाटे में घुंघुरू की थोड़ी आवाज़ भी ज़्यादा होती है। पीथल के बड़े भाई रायसिंह की कच्ची नींद टूट गई। रात आधी से ज़्यादा ढल चुकी थी। उन्होंने अपने कक्ष में देखा, वहाँ पीथल की भाभी नहीं थी। वे स्वयं उठकर धीरे-धीरे आए और पीथल के कक्ष के बाहर खड़े हो गए······ और शक की गंदी नापाक नज़रों से देखने लगे देवर-भाभी के गंगा-जल के समान पवित्र प्यार को। उनका पारा गर्म हो गया। कच्ची नींद टूट जाने से वे पहले ही क्रोध में अंधे हो रहे थे। कक्ष के अन्दर पीथल अपनी भाभी से कह रहा था, "नाचो, खूब नाचो···ज़ोर से। तभी खाना खाऊँगा। नहीं तो, लो मैं सोता हूँ।"

"अच्छा, नाचती हूँ···नाचती हूँ। सोओ मत।" और भाभी मग्न होकर नाच उठी। दुलारे देवर का आग्रह था। क्या करती? जब वह नाच चुकी तो पीथल हँस पड़ा, "अच्छा भाभी! एक गाना भी गा दो।"

"हटो, बड़े देखे गीत सुनने वाले। गीत सुनना है तो जाकर शादी कर लो।"

"और आगे कहो न! गाय से, भैंस से, पेड़ से, पत्थर से।"

"अरे नहीं बाबा ! किसी गोरी-गोरी छोरी से। गोरी न मिले तो काली से···किसी सोलह साल वाली से। सोलह साल की न मिले तो आठ-आठ साल की दो से। वह भी न मिले तो चार-चार साल की चार से।"

"हाँ जी ! सुन्दर-सुन्दर आँख वाली से, आँख वाली न मिले तो कानी से, कानी न हो तो अन्धी से। अन्धी न मिले तो लूली से, वह भी न मिले तो लँगड़ी से···" कहते-कहते पीथल ठहठहाकर हँस पड़ा।

"अच्छा, कुछ भी करो खाना खा लो।"

"ऊँहूँ······"

भाभी को विवश होकर गीत भी गाना पड़ा। पीथल भाभी की लाचारी पर हँस पड़ा और भाभी के कानों में ज़ोर से बोला, "कुक्कू"। यह मानो दोनों के समझौते का प्रतीक था। इस उत्फुल्ल ध्वनि से रायसिंह का कलेजा धड़ककर रह गया। पीथल अब अपनी पूरी कसर भाभी से निकाल चुका था। खाना खाने लगा। भाभी बड़े प्यार से खाना खिलाने लगी। ज्यों-ज्यों पीथल खाता जाता था, भाभी तृप्त और खुश होती जा रही थी। न जाने क्यों पीथल को खाते-खेलते देखकर भाभी का मन बाँसों उछलकर नाचा करता था। अचानक पीथल को मज़ाक सूझी और वह बोला, "भाभी ! एक बात कहूँ।"

"एक क्यों दो कहो।" भाभी समझ गई कि अब पीथल कोई गहरा मज़ाक करने वाला है।

"भाभी ! मैं तो तुमसे शादी करूँगा···सिर्फ तुमसे।"

भाभी का अस्त्र पहले ही से तैयार था। उसने पीछे से पीथल के कमर के नीचे वाले भाग में ज़ोर से चिकोटी काट लिया। पीथल चिहुँका, तब तक भाभी ने उसके गालों पर दही पोत दिया। अब फिर पीथल की बुरी हालत थी। वह चिल्ला उठा, "नहीं, नहीं, भाभी ! मैं नहीं करूँगा शादी तुमसे।" मुश्किल से पिंड छूटा। वह भागा और दोनों ठहठहाकर हँस पड़े।

"नहीं, नहीं, शादी करोगे न ! ठहरो।" भाभी ने जल्दी से हाथ में मक्खन और काजल लेकर मिलाया तथा पीथल के दोनों गालों पर तबीयत

से मल दिया। पीथल छटपटाता रहा। तब तक उसे लाकर भाभी ने शीशे के सामने खड़ा कर दिया, "मुँह देखो इसमें, शादी के लायक है कि नहीं?" पीथल, दही, मक्खन और काजल से नक्काशी किये हुए अपने 'भाभी-छाप' बन्दर-मुँह को देखकर लाड़ में खीझ उठा, मचल गया। उसने शीशे को पटका धरती पर और थाली को कटोरों सहित फेंका दरवाजे की ओर···टन्‌न्ननन। दुर्भाग्यवश शीशे का एक हिस्सा उछलकर भाभी के पैरों में लगा। वह धड़ाम से गिर पड़ी। खून बह चला। उधर एक कटोरी टन्‌नन करती हुई दरवाज़े पर खड़े रायसिंह को लगी। घाव खाकर वे और भी आग-बबूला हो गए। अन्दर आए और अपनी पत्नी के पैर से बहते हुए खून को जब उन्होंने देखा तो आपा खो बैठे और बादल की तरह तड़-पते हुए, हाथ उठाकर पीथल पर बाज की तरह टूट पड़े। पीथल उनके पैरों से ठोकर खाकर फर्श पर गिर पड़ा। तब तक भाभी की दृष्टि उधर गई, "खबरदार! उस पर हाथ उठाया तो!" शेरनी गरज उठी। और दाड़-कर पीथल को गोद में उठा लिया। सिसक पड़ी। सहानुभूति की नोक से दिल के घाव की पट्टी फट गई, पीथल रो पड़ा। भाभी अपने बहते खून को भूल गई, लेकिन अपने दुलारे देवर को लगी हुई ठोकर को न भूल सकी। वह रो-रोकर कहने लगी, "शर्म नहीं आई तुमको इस पर हाथ उठाते हुए? आज तुमने इसे पैरों से ठुकराया है, कल गर्दन नाप लोगे? मेरे जीवित रहते ही मेरे······। आज माँजी होतीं तो······" आगे कुछ न कह सकी। आँसुओं से उसने पीथल को गीला कर दया और बार-बार चूमने लगी उसके पैरों को जहाँ ठोकर लगी थी।

रायसिंह ने एक तीखी, कडुवी और घृणा भरी दृष्टि उधर डाली और फिर तीर की तरह तेज़ी से बाहर निकल गए। और भाभी बँदरिया की तरह पीथल को छाती से चिपकाए टप-टप आँसू गिरा रही थी। उसके कानों में अब भी पीथल की प्यारी आवाज़ गूँज रही थी, "कुक्कू"। ऐसी थी पीथल की अभागी भाभी और ऐसा था उसका लाड़ला दुलारा देवर पीथल।

द्वितीय परिच्छेद

रायसिंह उस रात सोये नहीं। सन्देह का साँप उनके मन में बैठ गया था। यद्यपि पहले भी वे अपने दीवान हिम्मतसिंह से पीथल और उसकी भाभी की कुचर्चाएँ सुन चुके थे, तथापि कभी विश्वास नहीं किया था। किन्तु रात की घटना से उनका सिर घूम गया। उन्होंने प्रातः होते ही दीवान को बुलाया और रात की सारी घटना सुना दी। दीवान अपनी विजय पर मुस्करा उठा। उसने कहा, "महाराज ! नारी तो एक बेल है, लता है। उसे किसी भी वृक्ष का सहारा चाहिए और उस नारी का क्या कहना, जिसमें जवानी हो, खूबसूरती हो, मस्ती हो।"

"फिर भी······"

"फिर भी क्या महाराज ! नारी तो रस की सुराही है। ढुलकना उसका स्वभाव है। उन्माद उसका गुण है। इसमें महाराना का भला क्या दोष है महाराज ? अब तो बस साँप मारने का उद्योग होना चाहिए। लेकिन महाराज ! ध्यान रहे, लाठी न टूटे।"

"लेकिन दीवानजी ! पीथल मेरा भाई है, मेरी माँ की धरोहर है, मेरी गोद में खेला है।"

"ठीक है महाराज ! किन्तु फूल में ही काँटे होते हैं और विश्वास में ही विष मिलता है।"

"लेकिन पीथल अन्धा हो सकता है, इसकी कल्पना भी मैंने नहीं की थी।"

"अन्धा तो उसे होना ही चाहिए था महाराज ! महात्माओं की वाणी वृथा नहीं जाती।"

कबीरदास ने कहा है—

नारी की झाईं परत, अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी काह गति, नित नारी को संग।।

"फिर भी न जाने क्यों मेरा मन नहीं मानता दीवानजी ! मैं वह क्षण नहीं भूल पाता जब पीथल आठ बरस का था और माँ ने मरते समय उसका हाथ मेरे हाथों में दे दिया था। वह कुछ बोली न थी। बस, दो मोती के दाने उसकी सीपी जैसी आँखों से ढुलक पड़े थे।" कहते-कहते रायसिंह की आँखों से बादल गरजकर बरस पड़े। उन्होंने दीवान को जाने का संकेत किया। दीवान चला गया। आँसू ईश्वर का पवित्रतम वरदान है, सभी रोगों की अचूक औषधि है। रोते-रोते जब रायसिंह का सिर कुछ हल्का हुआ तो सो गए। जब उनकी आँख खुली तो उन्होंने देखा''पीथल की भाभी सिर झुकाए उनके पैरों में बैठी हुई है। ग्लानि से उसका मुख गला जा रहा है, मानो शरद् का चाँद बरसात में नहाकर आया हो। रायसिंह अपने क्रोध को पी गए। सन्देह का साँप डँसने के लिए सचेष्ट होकर मुस्कराता हुआ उठ बैठा। वह अपने शिकार को हँसाकर और उसके साथ खिलवाड़ करते-करते डँसना चाहता था। उन्होंने उसकी ठोड़ी को ऊपर उठाया और पूछा, "जरा आँख तो मिलाओ गंगा !" वह अपनी आँख दूसरी ओर फेरती हुई बोली, "शरम लगती है, महाराज !"

"या मन दोषी है, इसलिए आँखें मिलने नहीं देता।"

"यह भी हो सकता है, महाराज ! रात को मेरे मुँह से जरा कड़ी बात निकल गई थी।"

"और कोई बात तो नहीं है न ?"

गंगा चौंक गई, "क्या मतलब सरकार ?"

रायसिंह ने उसे अपने आलिंगन में भरते हुए कहा, "कुछ नहीं। मुस्कराओ न।" गंगा मुस्करा उठी, दोनों मुस्करा दिए, आँखें मिलीं। तब गंगा ने शिकायत करते हुए कहा, "महाराज ! आप तो अकबर की सेवा में ऐसे लगे रहते हैं कि दूसरे किसी की कोई चिन्ता ही नहीं। मैं अब

की वार नहीं मानूँगी। साथ ही चलूँगी।"

"और पीथल ?" पाथल का नाम सुनते ही गंगा की वाँछें खिल गई। वह मुस्कराते हुए बोली, "वह तो बड़ा शैतान हो गया है महाराज! सेवक-सेविकाओं के हाथ से खाना नहीं खाता, जब तक मैं उसके पास न बैठूं। उस पर भी "भाभी! गाना गाओ, नाचो" तब कहीं दो कौर खाता है। लेकिन महाराज! शस्त्र में तो वह बड़ा ही निपुण हो गया है। देख लेना, एक दिन आपको भी मात दे देगा।"

रायसिंह ने कहा, "वह तो आज ही मात दे रहा है।" गंगा इस लहजे पर फिर चौंक गई, "कैसी बहकी-बहकी बात आज आपके मुँह से निकल रही है। मैं समझ नहीं पाती। पहले तो आप इस तरह की बात नहीं करते थे।" रायसिंह ने देखा कि गंगा कुछ उदास हुआ चाहती है। तब उन्होंने उसके मधुर अधरों पर अधर धर दिये। वह फिर भी मचल गई और मचलती रही। रायसिंह अपने प्रेम के विश्वास को अपने चुम्बनों से अटूट बताते रहे। गंगा को लग रहा था जैसे उनके होंठ बड़े ही गरम हों, किन्तु चुम्बन अजीब नीरस और मुर्दा है। उनके चुम्बनों में वह गरमाहट न थी, एक विचित्र ठंडक थी। चुम्बन और चुम्बन में अन्तर है। एक चुम्बन वह जो खून खौला दे और एक चुम्बन वह जो खौलते खून को भी उदास बना दे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। गाल सहलाए, ठोड़ी उठाई, दिल को करार देने वाला हाथ भी उसकी छाती पर रख दिया। निगाहों में कयामत का नशा बिखेरना भी न भूले। घंटों तक उसकी अलकों में अपनी उंगली उलझाकर खेलते रहे, किन्तु गंगा को सिहरन तक न हुई।

प्यार की भाषा बड़ी सरल है। उसमें किसी शब्द के दो अर्थ नहीं होते। किन्तु दुर्भाग्यवश पुरुष समझता है कि वहाँ भी दो शब्द हो सकते हैं। प्यार का भी अभिनय हो सकता है। यही सबसे बड़ी मूर्खता है। नारी का यह सौभाग्य है कि प्यार की हर बारीकी, हर लहर और तरंग को ठीक-ठीक पढ़ लेती है। यही कारण है कि पुरुष अपने प्यार में धोखा खा जाता है, किन्तु नारी नहीं, वह जानबूझ कर अपने प्यार के नाम पर धोखा खा

जाय तो बात दूसरी है।

उसके कोष में धोखा शब्द नहीं होता। पुरुषों के इस शब्द को वह विवशता का पर्याय समझती है। गंगा ने भी रायसिंह के धोखे के प्यार को किसी प्रकार की विवशता ही समझा और बोली, "महाराज! आज आपका चित्त ठिकाने नहीं है। सो जाइए।" रायसिंह के लिए यह असह्य हो गया।

अभिनय में असफल होकर हर अभिनेता ऐसा ही दुःखी होता है। किन्तु रायसिंह ने हार नही मानी। वे खिलखिलाकर हँस पड़े मानो रो रहे हों। यदि वे सचमुच रोते तो शायद उनका मुँह इस हँसने से ज्यादा सुन्दर लगता। गंगा सहम गई। रायसिंह ने समझा कि उनके हँसने का जादू काम कर गया है। अब उन्होंने अपनी पूर्ण शक्ति से गंगा को बाहुओं में कस लिया और पूरी गरमाहट के साथ चुम्बनों की बौछार कर दी। गंगा को लगा जैसे लोहे के छड़ को आग में तपाकर लाल कर दिया गया हो और उसके शरीर को चारों ओर से दागा जा रहा हो। वह चीख उठी। उसके अधरों पर रायसिंह के अधर आग से भी अधिक दाहक और घातक लग रहे थे। कड़ुवी वेदना से उसके नेत्र वैसे ही मुँद गए जैसे गर्म-गर्म कड़ुवा काढ़ा पीने पर आँखें मिचला जाती हैं।

नारी अनारी नहीं है। धन्वन्तरि जैसे वैद्य की भी माँ है। वैद्यराज नाड़ी देखकर भी शायद शरीर की ही बात जान सकते हैं, किन्तु नारी आपकी साँसों से आपके भाव पकड़ लेती है कि आप प्यार चाहते हैं या क्षमा चाहते हैं। आपकी छाती पर सिर रखकर आपकी धड़कनों से आपकी आत्मा की पुकार सुन लेती है कि आप प्यार करने आए हैं या प्यार ठुकराने आए हैं, ठगने आए हैं या ठगाने आए हैं।

आपकी बाहुओं में अपनी बाहु फँसाकर वह आपकी धड़कनों के कम्पन को गिन लेती है और समझ जाती है कि आपमें वासना का जहर है या प्यार का अमृत है। आपकी ललचाई आँखों में लाल रेशमी डोर को देखकर वह जान जाती है कि यह डोर हृदय के किस कोने से उठी है। यह डोर

प्यार से बाँधने के लिए आगे आ रही है या प्यार का बन्धन तोड़कर पीछे हट रही है। प्यार की शुरूआत है या विदाई।...और...चुम्बन तो उसके लिए थर्मामीटर है जिससे वह आपकी बेचैनी, बेहोशी, शांति या अशान्ति के सारांश को निश्चित रूप से नाप लेती है।

आपके होंठ गर्म हैं या ठण्डे, इससे उसको मतलब नहीं है। वह तो केवल यह देखती है कि आपके होंठ उसके कपोलों या होठों से मिलकर कितनी आग, कितनी बेहोशी, कितनी शराब और कितनी खुमारी बिखेरते हैं।

गंगा ने भी रायसिंह के हृदय में उठने वाले झंझावात की भयंकर रंगीनी को पढ़ लिया, किन्तु कुछ बोली नहीं। भारत की नारी किसी भी तरह अपने पति की खुशी को ही अपनी खुशी मानती है। रायसिंह धोखा खा गए। धोखे का प्यार धोखा ही पाता है। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—

"गंगा ! मुझे प्यार करती हो ?"

"यह भी पूछने की बात है महाराज।"

रायसिंह ने मुस्कराकर एक बार और चूम लिया और पूछ बैठे।

"कितना ?"

"अपने प्राणों से भी अधिक।"

"तो मेरी एक बात मानोगी ?"

"क्या कभी मैंने नहीं भी मानी है ?"

"देखो ! यह तुम्हारे प्रेम की अन्तिम परीक्षा है।"

"आप कहकर देखिए, यह सिर काटकर अभी आपके चरणों में रख दूँ?"

"नहीं। पहले त्रिवाचा दो तो कहूँगा।"

"करूँगी ! करूँगी !! करूँगी !!! जो भी आप आज्ञा देंगे।"

"तो पीथल को एक पान का बीड़ा जहर मिलाकर खिला दो।"

"आह !" गंगा पछाड़ खाकर धड़ाम से गिर पड़ी जैसे तीर सीधा लगा हो। कोशिश करके भी उसकी जिह्वा नहीं हिल सकी। तब तक साँप ने एक बार और डँस दिया—

"यही है न तुम्हारा प्यार ? नीच नारी ! मुझी से त्रिया-चरित्र पढ़ती है ? पत्नी मेरी और प्यार पीथल से ?"

गंगा को जैसे लकवा मार गया हो। वह एकटक देखती-की-देखती रह गई। सिर घूम गया और बेहोश हो गई। रायसिंह खुश हो गए, ठीक उतना ही जितना एक शिकारी अपने शिकार को छटपटाते देखकर खुश होता है। गंगा छटपटा उठी। एक तन्द्रा-लोक का चित्र सामने आने लगा ...."पीथल, पीथल ! मेरे दुलारे देवर ! तो क्या तुम्हें मैं...।

"क्या कलंक के भय से करुण और प्रेम की पवित्र धारा को कलंकित कर दूं ? और...और...यह है मेरे पति का प्यार ? और तो कुछ नहीं, बस आने वाली दुनिया कभी भाभी पर विश्वास नहीं करेगी। नहीं...नहीं...मैं भाभी के रिश्ते पर कलंक नहीं लगाऊँगी ? और मेरे पति की आज्ञा ? मेरी त्रिवाचा ? मेरी प्रतिज्ञा ? भाड़ में जाए मेरी त्रिवाचा, मेरी प्रतिज्ञा और पति की आज्ञा ? वह तो भ्रम, संदेह और शक का शैतान है। उसे दूर कैसे भगाया जाए ? प्रिय देवर के खून से ? नहीं...नहीं...यह नहीं होगा...।"

वह उठ बैठी और गरजकर बोली, "महाराज ! यह है आपका अपने अनुज के प्रति प्यार ? यह है आपका पीथल के प्रति प्रेम ? आप वह दिन भूल गए जब बँदरिया की तरह आप पीथल को गोद में चिपकाए फिरते थे और कहा करते थे, 'गंगा ! पीथल माँ की धरोहर है। आज से पीथल तुम्हारा बेटा है।' यह है आपका माँ की धरोहर के प्रति प्यार ?"

"हाँ ! मैंने माँ बनने के लिए कहा था, प्रेयसी बनने के लिए नहीं ?"

"एक भाभी माँ क्यों बने ? भाभी का प्यार विस्तृत है और माँ का संकुचित। भाभी के प्यार में किसी प्रकार का कोई स्वार्थ नहीं है, किन्तु माँ के प्यार में कुछ-न-कुछ स्वार्थ अवश्य है।"

"माँ के प्यार से भी भाभी का प्यार बड़ा होता है ?"

"भाभी का प्यार ! आप क्या जानें भाभी क्या होती है ? उसकी तुलना माँ ही नहीं, स्वयं भगवान् भी नहीं कर सकते। आप भाभी नहीं

बन सकते···काश ! एक बार आप एक नारी होते···एक भाभी होते।"

"साहित्य और शास्त्र में कहीं भी भाभी माँ से ऊपर नहीं मानी गई है।"

"आपके साहित्य और शास्त्र पुरुषों ने ही लिखे हैं। किसी नारी ने नहीं। किसी भाभी से लिखवाकर देखिए। कहती तो हूँ, आप भाभी नहीं बन सकते। आप क्या समझें भाभी······"

"मुझे तुमसे बहस नहीं करनी है। बोलो, क्या चाहती हो ? आज्ञाकारिणी प्रिय पत्नी रहना चाहती हो या एक कलंकित भाभी ?"

"कहती तो हूँ···आपकी आज्ञा टाल सकती हूँ, किन्तु देवर को ज़हर नहीं दे सकती। मैं एक भाभी हूँ। दुनिया की भाभियों का नाम उनके देवरों की नज़रों में नीचा नहीं करूँगी। उनको कलंक नहीं लगाऊँगी। हाँ, आपके सन्देह की कालिमा अपने खून की लाली से अवश्य पोंछ देना चाहती हूँ।"

"ध्यान रखो, उससे सन्देह मिटेगा नहीं, और भी पक्का होगा।"

"तो जीवन भर पति-वियोग की आग में तिल-तिल करके जलूँगी, किन्तु देवर पर आंच तक नहीं आने दूँगी। यह निश्चित समझिए महाराज ! मैं आपकी पत्नी हूँ किन्तु पीथल की भाभी भी हूँ। इसे न भूलिए।"

"वाह रे भाभी ! कुलटा ! ! वेश्या ! ! ! जरा शीशे में मुँह तो देख ? कितनी बदबू आ रही है तेरी लाश से······किन्तु इससे मुझे क्या ? हाँ, तेरी माँग में सिंदूर मैंने भरा था। उसे मैं स्वयं अपने हाथों पोंछकर जाना चाहता हूँ।"

"सच ! सच मेरे देवता ! ! मेरे सुहाग ! ! ! क्या आप अपने आपको मेरी माँग से मिटा सकेंगे ? मिटा लीजिए।······जरा मिटने वाले में जीने की तमन्ना भी तो देखिए। आह ! मेरे सुहाग का कितना पवित्र दिन है जब मेरे सुहाग का सिंदूरी हाथ मेरी माँग से खेलने जा रहा है और मैं मर कर अमरता से खेलने जा रही हूँ।······मेरे सुहाग ! तुम कितने अच्छे हो ! ऐ कोटि-कोटि सीता सावित्रियो ! आज तुम स्वर्ग में बैठकर भी मृत्युलोक

के इस मेरे सौभाग्य पर ललचाओ, तरसो……"

कहते-कहते गंगादे ने अपना सिर झुका लिया और रायसिंह के चरणों में बैठ गई।

सत् की आग असत् नहीं सह सकता। अविवेक की चाल बड़ी तेज़ होती है और सन्देह का भूत बड़ा क्रूर होता है। रायसिंह ने भी वही किया। रुक नहीं सके। दीवान को बुलाया और अपने ससुर से आज्ञा लेकर गंगादे को बिना कुछ कहे चल दिए दिल्ली की ओर……सम्राट् अकबर की सेवा में।

……और भाभी ? कौन जाने उसके दिल की आग को ?

तृतीय परिच्छेद

पीथल आज अपने चित्र में रंग भर रहा था। चित्र सरस्वती का बनाया था, बड़ा ही दिव्य चित्र उतरा था। अब वह पुलकित होकर उसमें रंग भर रहा था। साथ-ही-साथ कोई मधुर गीत भी गुनगुनाकर गा रहा था। इतने ही में लालसा वहाँ पहुँची और उतावली-सी होकर बोली, "मालूम है तुम्हें? आज क्या होने वाला है?"

"जी, नहीं मालूम!"

"तो तुम कान में तेल डालकर सोते रहते हो क्या?"

"सुनूँ भी तो बात क्या है?"

"आज मेरी गुड़िया की शादी है।"

"ओह!" पीथल ने हँसकर मुँह बनाते हुए पूछा, "तो इतने महान कार्य में मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

"जल्दी से गाने के लायक एक सुन्दर कविता लिख दो और देखो शादी में तुम भी बाराती बनकर आना। वहाँ कवित्त सुनाना। हाँ?"

पीथल जल-भुनकर राख हो गया। जैसे उसकी कविता, उसकी सरस्वती की वाणी इतनी सस्ती हो। फिर भी वह इस समय झगड़ना नहीं चाहता था। उसने लालसा को टालने के बहाने से कहा, "बस! और कुछ?"

"हाँ, देखो, मेरी वह काली झबरी कुतिया है न! उसके गले में उसी समय घंटी भी पड़ेगी। मैंने पंडितजी से साइत पूछ ली है।"

"जी! तो मुझे उसमें क्या करना होगा?" क्रोध को पीते हुए पीथल ने पूछा।

"उसके लिए भी एक कविता लिख डालो और देखो, इस चित्र को तो

हटा दो, इसे पीछे बना लेना। पहले मेरी उस झबरी कुतिया का चित्र बना दो।"

"यानी मैं अपनी इस सरस्वती के चित्र को तो अलग रख दूँ और आपकी झबरी कुतिया का चित्र जरूर बनाऊँ। क्यों?"

"हाँ, हाँ। इसे हटा दो। नाराज़ क्यों होते हो ? तुम्हारी सरस्वती से हमारी झबरी कुतिया कम खूबसूरत है क्या ?"

यह सुनकर पीथल के मन में आया कि लालसा की चोटी पकड़कर उसे ज़मीन पर घसीट दे और जमा-जमाकर चपत लगावे अलग से। लेकिन आज वह अपने चित्र में रंग भरने का काम पूरा करना चाहता था। कुछ बोला नहीं और अपने काम में जुट गया किन्तु लालसा वहाँ से नहीं गई बल्कि जमकर खड़ी हो गई। शायद वह अपनी कुतिया का चित्र बनते हुए देखकर ही जाना चाहती थी। पीथल झल्लाकर बोला, "ए लालसा! सच-सच बता। तू मेरे सिर पर क्यों चढ़ी है ? क्या झगड़ा करने की ठानी है ?"

"नहीं, बस मेरा काम कर दो। मैं चली जाऊँगी। और पीथल, तुम नाराज़ न होओ तो एक बात और कहूँ। वह यह कि कल मैं अपने इन लम्बे नाखूनों पर मेंहदी रचाऊँगी। तब मेरी सारी सहेलियाँ आएंगी। तुम भी आना और नाखून पर अच्छे-अच्छे कवित्त बना लाना। सबको सुनाना। बड़ा मजा आएगा।"

पीथल का पारा गर्म हो गया था। उसने आव देखा न ताव, तड़ से एक तमाचा लालसा के गालों पर जड़ दिया। लालसा न हिली, न डुली, भौंचक्की-सी पीथल को देखती ही रह गई। पीथल चिल्ला रहा था, "गुड़िया के लिए कविता लिख दो, कुतिया का चित्र बना दो। क्या समझा है तूने अपने को ? शीशे में अपनी सूरत तो देख। लाल मुँह वाली बँदरिया जैसा तो मुँह है। कम्बख्त कहीं की।"

नारी सब-कुछ सह सकती है, लेकिन अपने रूप का अपमान नहीं सह सकती। लालसा भी पीथल की फटकार सुनकर वैसे ही सूख गई। मुरझा

गई, जैसे लाजवन्ती की पत्तियाँ किसी की उठी हुई उँगली देखकर मुरझा जाती हैं। वह छिपकर उसी कक्ष के एक कोने में बैठ गई। पीथल अपने काम में जुट गया। लगभग तीन-चार घण्टों तक वह चित्र में लगा रहा। रुचि के अनुकूल चित्र में रंग भरता रहा। सहसा वह चित्र अपनी पूर्णता से मुस्करा उठा।

पीथल भी मुस्करा उठा, मानो भक्त को भगवान् मिल गए हों। वह जैसा चाहता था, चित्र वैसा ही उतरा था। खुशी में उसने एक अँगड़ाई ली और चुटकी बजाकर गुनगुना उठा। अचानक उसकी दृष्टि कक्ष के कोने की ओर पड़ी। वह लालसा को वहाँ अभी तक बैठा देखकर सन्न रह गया···लालसा चुपचाप और अपलक जमीन पर बैठी थी। उसके दिव्य कपोलों पर गंगा-यमुना-जैसी आँसू की रेखाएँ शान्त और चुपचाप बह रही थीं। उसका गोरा-गोरा मुख बर्फ की तरह गला जा रहा था। पीथल ने आज तक कभी उसे नयन भरकर देखा ही न था। आज वह देखता ही रह गया। सहसा पीथल की भाभी आ गई। पीथल ने भाभी की ओर नहीं देखा। बस, देख रहा था लालसा की ओर और देखता ही जा रहा था, जैसे उसको देखने से उसका मन ही नहीं भर रहा था।

उसके जी में आया कि वह भी रो दे। वह पश्चाताप कर रहा था कि ऐसी भोली फूल-सी सुकोमल लड़की को रुला दिया। ऐसा रूप प्यार करने के लिए है न कि फटकार के लिए। किन्तु पश्चात्ताप क्या है? बस, दिल की मासूम निगाहों पर कफन की पट्टी बाँधना ही तो?···और बाँधने लगा···वह अपने नयन-मोतियों के दो-चार दानों का मलहम लगाकर विचारों के कफन से अपने दिल का घाव।

तब तक उसकी भाभी के शब्द सुनाई पड़े, "क्या बात है पीथल? लालसा क्यों रो रही है?"

"कुछ नहीं भाभी!" पीथल भर्राए स्वरों में कहने लगा, "मैं अपनी सरस्वती के चित्र में रंग भर रहा था तो यह कहने लगी कि तुम्हारी सरस्वती मेरी झबरी कुतिया से ज्यादा खूबसूरत है क्या? और···और···

गुड़िया की शादी पर कविता बना दो, नाखून पर कवित्त लिखो···और···
और ऐसे ही इन्होंने कला का अपमान कर दिया भाभी ! तब मैंने···"

"तब तुमने डाँट दिया होगा। ठीक ही तो है। तुम कला का अपमान करती हो लालसा ? अच्छा उठो। अरे, तुम्हारे इस गाल पर पाँच अँगुलियाँ कैसे उभर आई हैं ? क्यों रे पीथल ! तुम्हारी यह करतूत···।" लालसा बीच ही में सिसकती हुई बोल उठी, "नहीं, नहीं जिज्जी ! इन्होंने मारा नहीं है। मैं गालों पर हथेली लगाए तभी से बैठी हूँ। मेरी ही अँगुलियों की छाप पड़ गई होगी।"

पीथल लालसा के इस खूबसूरत झूठ पर शर्म से नीचे झुक गया। उसने सुन रखा था कि झूठ बोलना पाप है, लेकिन आज उसका हृदय कह रहा था कि ऐसे खूबसूरत पाप पर तो वह अपने करोड़ों पुण्यों का बलिदान चढ़ा सकता है। लालसा अपनी जिज्जी के आगे रो-रोकर कह रही थी, "लेकिन मैं मानूँगी नहीं। जिसने मुझे रुलाया है, वही मनाएगा तो मानूँगी।"

अब पीथल नहीं रुक सका। उसकी आँखों से बरबस आँसू निकल पड़े। वह आया और चुपचाप लालसा का हाथ पकड़कर उठा दिया। भाभी तब तक चली गई थी। पीथल को भाभी के सहसा आने और एकदम चले जाने से कुछ आश्चर्य और दुःख हुआ। उसने आज अपने जीवन में पहली बार देखा था कि उसकी भाभी आई और बिना हँसी-मुस्कराहट बिखेरे ही चली गई। उस समय अभी तक पीथल की आँखों में मोती के दाने बने हुए थे।

लालसा यह देखकर एक बार फिर रो पड़ी। उसकी पलकों में जो आँसू के बूँद सटे हुए थे, वे सभी झरझराकर गिर पड़े, मानो वर्षा के बाद किसी वृक्ष के पत्ते से बूँदें झोंका खाकर और भरभराकर गिर पड़ी हों। प्यार में आनन्द के आँसू ऐसे ही आते हैं। सचमुच, रोने का मज़ा भी तभी है, जब रोने वाला तो रोये ही, रुलाने वाला भी रोये।

पीथल ने लालसा के गालों पर हाथ फेरा और बड़ी देर तक देखता

रहा, उसके उस गाल पर जहाँ उसकी पाँचों उँगलियाँ उभरकर मोटी हो गई थीं। फिर वह लालसा के आँसुओं को पोंछता हुआ बोला, "लालसा ! मुझे माफ कर दो। अब मैं तुम्हारी झबरी कुतिया का भी चित्र बनाऊँगा। तुम्हारी गुड़िया की शादी के गीत भी लिखूंगा और तुम्हारे नाखूनों पर सुन्दर-सुन्दर कविताओं की मेंहदी भी रचाऊँगा।" भर्राये हुए स्वरों में पीथल ने कहा।

"यह तो तुम्हारी कला का अपमान होगा। मैं तो यूँही तुम्हें तंग करने आई थी। न जाने क्यों तुम्हें छेड़ने और तंग करने में मुझे बड़ा मजा आता है। बड़ी कम्बख्त हूँ मैं। सच ना पीथल ! मैं बड़ी कम्बख्त हूँ न ?"

"धत् गिलहरी कहीं की। आ, चल तुझे आज का चित्र दिखाऊँ।" कहते हुए पीथल ने लालसा के कानों में जोर से आवाज़ दी…"कुक्कू" और दोनों हँस पड़े। यह समझौते का प्रतीक था।

पीथल ने बड़े प्यार से लालसा को अपना चित्र दिखाया। वह बड़ी देर तक बताता रहा कि किस अंग में उसे कितनी सावधानी बरतनी पड़ी और किस रंग के भरने में उसने कितनी मेहनत की। उसने यह भी बताया कि ऐसा सुन्दर और दिव्य चित्र उसने आज से पहले कभी नहीं बनाया था। सहसा चौंककर लालसा पूछ बैठी, "एं ? पीथल ! तुम इसे कैसे जानते हो ?"

"किसे ?"

"इसी चम्पा को, जिसका चित्र तुमने उतारा है।"

"धत् पगली ! यह तो सरस्वती का चित्र है। तुम्हारी चम्पा कौन है ?"

"हटो, कितना झूठ बोलते हो ? चम्पा का तो चित्र उतारा है और मुझसे कह रहे हो कि सरस्वती का चित्र है।"

पीथल लालसा के भोलेपन पर ठहठहाकर हँस पड़ा। फिर बोला, "ऐसा हो सकता है लालसा, कि यह चित्र तुम्हारी चम्पा जैसा ही हो, लेकिन मैं तो चम्पा नाम की किसी देवी को जानता भी नहीं। अपनी ओर से तो

मैंने सरस्वती का ही चित्र बनाया है।"

"फिर झूठ बोलने लगे ? चलो, जिज्जी से पूछती हूँ।"

पीथल और लालसा दोनों गंगा के पास पहुँचे। लालसा ने जाते ही कहा, "जिज्जी ! यह चित्र देखो तो ! यह चम्पा का नहीं है ?"

गंगा बड़ी देर तक चित्र देखती रही। सचमुच चित्र बड़ा ही मनोहारी बना था। मन-ही-मन पीथल की कला पर रीझ गई। बड़ी प्रसन्न हुई। फिर बोली, "पीथल ! क्या तुम चम्पा को जानते हो ?"

"चम्पा, चम्पा, चम्पा आखिर कौन है यह चम्पा ? तुम भी चम्पा कहती हो। लालसा भी चम्पा कहती है। है कौन यह ?"

"पीथल सचमुच यह चित्र उसी जैसा बना है। वह मेरी छोटी बहिन है, लालसा से भी छोटी।"

"कहाँ है ?"

"वह महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह के पास है। शक्तिसिंह हमारे फूफा होते हैं, वह उन्हीं की पुत्री है। वह यहाँ बहुत दिनों तक रही है। अब फिर आने वाली है।"

"कब तक आवेगी।"

"कह नहीं सकती। वैसे उसका मन लालसा के साथ ही लगता है। अपने पिता के पास जरा भी उसका मन नहीं लगता क्योंकि उसकी माँ यानी मेरी बूआजी बहुत पहले मर गई थीं। सौतेली माताएँ उतना प्यार नहीं करतीं।"

"तो भाभी, मैंने यह चित्र उसी के जैसा कैसे बना दिया ? बड़े आश्चर्य की बात है।"

"इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है पीथल ! कुछ चित्र या रूप मन के गहरे परदे में छिपे रहते हैं। उसे स्पष्ट रूप से कोई व्यक्ति नहीं कह सकता। हाँ,कोई कवि या चित्रकार हो तो वह अवश्य अपने एकान्त के भावन जगत में उस चित्र को ढाल देता है। तुमने भी वही किया है।"

"मैं तो कोई बड़ा कवि या चित्रकार नहीं हूँ भाभी ! मुझे जो कुछ आता

है वह सब तुम्हारा ही तो सिखाया हुआ है।"

"पीथल! तुम मेरे आँचल में पले हो, खेले हो और बड़े हुए हो। तुम्हारी सारी शिक्षा-दीक्षा भी मुझसे ही हुई है। इसीलिए तुम्हें मैं तुमसे ज्यादा समझती हूँ। तुममें एक महान आत्मा या महान कवि छिपा हुआ है। किन्तु ध्यान रखना, अभिमान को आश्रय मत देना।"

"लेकिन भाभी! वह बात मेरी समझ में फिर भी नहीं आई कि वह चित्र मैंने कैसे बना दिया।"

"अच्छा, देखो तुम्हें सीधे-सादे उदाहरण से समझाती हूँ। जीवन के रास्ते में कई लोग तुम्हें ऐसे मिलेंगे जिन्हें तुम नहीं जानते और न कभी तुमने उन्हें देखा ही है। लेकिन फिर भी उन्हें सहसा देखकर तुम्हारे मन में यही भाव पैदा होगा कि तुम उन्हें अवश्य जानते हो, अवश्य ही उन्हें कहीं तुमने देखा है।"

"हाँ भाभी! ऐसा भ्रम तो मुझे कई बार हुआ है।"

"क्यों हुआ? कभी सोचा है तुमने?"

"सोचा तो, किन्तु कुछ समझ में नहीं आया। अब तुम्हीं बताओ।"

"सारे जड़-चेतन में एक ही तत्त्व समाया हुआ है अथवा यह कहो कि सारा जड़-चेतन संसार एक ही तत्त्व का भिन्न रूप है। तुम भी एक रूप हो। तुममें भी जड़-चेतन दोनों पदार्थ हैं। इनमें शरीर जड़ विकारी या परिवर्तनशील है और चेतन मन या आत्मा अविकारी या अपरिवर्तनशील है। फलतः अनेक जन्म होते हैं और मन या आत्मा पर पड़े हुए सुपरिचित अनेक चित्र दूसरे जन्म में भी मन में पड़े ही रहते हैं।"

इसका अर्थ तो यह निकला कि चंपा को मैं पिछले जन्म से या जन्मान्तरों से जानता हूँ।"

"इसमें कोई संदेह नहीं। बहुत संभव है, उसका तुम्हारा पहले निकट सम्बन्ध भी रहा हो, तभी यह चित्र इतना स्पष्ट बन सका है।"

इतना कहकर गंगा वहाँ से पुनः कहीं दूसरी ओर चल पड़ी। आज उसका मन बड़ा व्यग्र था। वह अपने मन के झंझावात को किसी भी प्रकार

छिपा लेना चाहती थी और हर प्रकार से यह प्रयत्न कर रही थी कि उसके विषाद या मनोव्यथा की छाया उसके देवर पीथल पर न पड़ने पावे । वह पीथल को पान के पत्ते की तरह बार-बार पलटती रहती थी और इस तरह से उसे प्रसन्न और सुखी रखने का यत्न करती थी। कारण उसने अपने पति-देव से हुई वार्त्ता आदि के सम्बन्ध में पीथल को कुछ भी नहीं बताया। जब उसके नेत्रों मे आँसू आते तो वह उठकर एक ओर हो जाती और आँखें फहरा-कर मल देती। किन्तु पीथल भी अपनी भाभी को अच्छी तरह जानता था। आज उसने जीवन में पहली बार देखा था कि उसकी भाभी उसके चित्र वाले कमरे में आई और बिना हँसी-मुस्कान बिखेरे ही अचानक चली गई। इधर अभी-अभी बातें करते-करते एक दम कहीं चली गई। उसके मन में बिजली कौंध गई और वह पीछे-पीछे अपनी भाभी के कक्ष में पहुँचा।

वहाँ देखता क्या है कि उसकी भाभी तकियों के नीचे अपना मुँह छिपा-कर सिसक रही है। यह पीथल के लिए सर्वथा नई बात थी। उसकी हिम्मत नहीं हुई कि वह भाभी के पास जाए। वह लौटकर लालसा के पास आया और उसे एकान्त में ले जाकर पूछा, "लालसा! एक बात बताओगी?"

"अरे! तुम इतने उदास क्यों हो गए?"

"छोड़ो इस बात को, सच कहो, बताओगी?"

"भला तुमसे मैंने कभी कुछ छिपाया भी है?"

"अच्छा, तो भाभी आज इतनी उदास क्यों हैं? मैंने देखा है, तकिये के नीचे मुँह छिपाकर सिसक रही हैं।"

"लालसा ने हँसकर कहा, "तुम्हारे भैया चले गए, इसलिए।"

"कब गए?"

"जब तुम चित्र में रंग भर रहे थे।"

"मुझे बिना मिले चले गए?"

"हाँ, शायद कोई आवश्यक कार्य था।"

पीथल का सिर घूम गया। यह बात भी उसके लिए सर्वथा नई थी। उसके भाई आवश्यक से आवश्यक कार्य पर जाते हुए भी बिना पीथल से

मिले नहीं जाते थे। जाते समय उसका सिर सहलाकर इतना अवश्य कह जाते थे, खूब पढ़ना, खूब शस्त्रादि सीखना और अपनी भाभी को देखते रहना। कोई कष्ट हो तो तुरन्त मेरे पास पत्र लिखकर सवार दौड़ा देना।"

आज पीथल के भैया चले गए बिना मिले, बिना कुछ कहे। भाभी रो रही हैं। यह सब पीथल के लिए विचित्र है। फिर भी उसे न जाने क्यों लालसा की बातों में कुछ विश्वास-सा हो गया'''विश्वास नहीं बल्कि कुछ वह जिसमें आदमी अपने दिल का दर्द कुछ देर के लिए भूल-सा जाता है।

चतुर्थ परिच्छेद

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा की मुलायम रेशमी किरणें धरती पर फैलती हुई काँपती-काँपती-सी आ रही थीं, जैसे कोई लाजवन्ती नारी पहली बार अपने पहले प्यार में संकेत-स्थल पर लुक-छिपकर मिलने चली हो। सहसा पीथल की नींद खुली। वह सुनने लगा, आकाश धरती को अपने प्रेम का संदेश भेज रहा था। पत्ते आपस में चुपचुप कुछ कह-सुन रहे थे। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

जब सारी दुनिया सो रही है तब प्रकृति की धड़कनों में एक अजीब प्यार का नशा-सा छा गया है। वह मन्द-मन्द बाहर निकला और चुपके-चुपके विनोद-कुंज में आकर खड़ा हो गया। यह विनोद-कुंज महल के भीतर खिले हुए खुशबूदार फूलों से सदैव ढँका रहता था। बीच में स्फटिक मणि का एक बड़ा ही सुन्दर सफेद चबूतरा बना हुआ था।

पीथल कुछ देर बाद वहीं आकर बैठ गया। तब कुँआरी कलियों की पलकों पर लज्जा का पहरा था और उनके अनब्याहे नयनों में कुतूहल का पानी छलक रहा था। उनकी खुशबू पर तैरता हुआ पीथल का मन इतरा गया और वह उस झूले पर झूलने लगा जिस पर पराग मचल रहा था और किरणें झुला रही थीं।

उसकी साँस-साँस खुमारी से भर गई। वह सो गया। एक रंगीन सपना चल पड़ा—

"मैं उड़ा जा रहा हूँ। कहाँ आ गया? एक बहुत बड़ा खिला हुआ फूल। उसमें उड़ते हुए परागों की खुशबू की खुमारी में झूमता हुआ मैं। पराग पर लेट गया। झूमने लगा। किरणों की कलाइयाँ मेरे शराबी झूले

झोंकुला रही हैं। यह क्या ? मुझे चाँदनी की धार में हिला-हिलाकर नहलाया जा रहा है। और किरणों की कलाइयाँ कहाँ चली गईं ? अब तो यह एक किसलय—जैसी सुकोमल कलाई लालसा की है और दूसरी ओर भाभी की मुलायम-मुलायम गोरी बाँहें हैं। भाभी खिलखिलाकर हँस रही हैं और लालसा शरमाती हुई सिर नीचा किए अधरों में ही मुस्करा रही है।

मैं अपने झूले में झूलता हुआ ऊपर उठता जा रहा हूँ। यह कौनसा विचित्र लोक है जिसकी धरती सोने की है। शीतल मन्द बयार सबको अभिवादन करती हुई बह रही है और सुगंधि बाँटती जा रही है। सैकड़ों चाँद खिलखिलाकर अपना मुँह मणियों से पूर्ण इस धरती के आइने में देख रहे हैं। नाना रंगों के अलौकिक फूलों से सारा वातावरण ढका हुआ है। फूलों की यह गदरारी पंक्ति यहाँ के आकाश में भी कैसे उगी हुई है ? यह तो जादू का देश है। माया की नगरी है। यहाँ की प्रत्येक नारी का शरीर सोने के पराग से बना हुआ है।

उनके अधर ऐसे हैं मानो सुबह की लाली किसी नवजात किसलय पर आकर विश्राम कर रही हो। उनके प्रत्येक अंग को आर-पार देखा जा सकता है। सुन्दरता उनके पैरों को चूमकर ही सुन्दर हो गई है। वे जहाँ-जहाँ पैर रखती हैं वहाँ-वहाँ छवि के फूल खिल जाते हैं। वे सभी मेरे स्वागत में नृत्य और गान करती हुई पुष्प-मालाएँ उछाल रही हैं। अब मैं इस माया नागरी की रानी के कक्ष में पहुँच गया हूँ···उफ् क्या रूप है? ऐसा न देखा, न सुना और न ऐसे रूप की कल्पना ही कभी कोई किया होगा। वह चिर किशोरी है। मेरी ओर देखकर वह सहज मुस्करा उठी है। मानो चम्पई रंग की बिजली फूल बनकर खिल उठी हो। अब भाभी और लालसा दोनों ही गायब हो गई हैं। सुन्दरता को भी सुन्दर करने वाली इस चिर किशोरी के पास मैं लज्जा से पसीने-पसीने हुआ जा रहा हूँ···और···लो, मैं रूप का नशा पीते-पीते बेहोश हो गया।···रानी अपने सिंहासन से मुस्कराकर उठती है और धीरे से मेरे अधरों को चूम लेती है······मेरी

बेहोशी उतर जाती है।

रानी कहती है, "मुझे पहचाना नहीं मेरे देवता ! मैं वही तो हूँ जिसका चित्र तुमने उस दिन बनाया था।...मुझे देखने के लिए तुम तड़प रहे थे न ! लो, आज जी भरकर देख लो। देख लिया न ! मैं कैसी हूँ ? तुम्हें अच्छी लगी ? अच्छा...अच्छा, मेरे देवता ! दिल में आकर अब जाना नहीं। आओ तुम्हें अंजन बनाकर आँखों में भर लूँ...।

"अरे ! तुम फिर बेहोश होने लगे मेरे देवता ! मुझे तुम ऊपर से ही मत देखो, मेरे भीतर का दुर्लभ रस भी...। आज हमारी पहली मुलाकात की रात है। इस खुशी में मैं तुम्हें एक भाव, एक कल्पना, एक विचार भेंट दे रही हूँ। मेरे प्राण ! तुम मेरी इस पूजा के फूल को भूलना मत। यदि तुमने इसे अपनी कविता में बाँध लिया तो सारी धरती, सारी मानवता तुम्हारी ऋणी हो जाएगी। यह तत्त्व मैंने आज तक किसी को नहीं बताया, यह पहली बार है।"

रानी मेरे कानों में कुछ कहती है—असीम मधुर, अद्भुत। सच, इसे पाकर धरती स्वर्ग से भी मधुर हो जाएगी। मेरी मूर्च्छना करवट बदलती है। देखता क्या हूँ कि वह रमणी रानी चम्पा के फूलों पर थिरकती हुई धरती से आकाश तक रहस्य-नृत्य कर रही है और खिलखिलाकर कहती है, "देख लिया न तुमने मुझे ! मैं ही चम्पा हूँ, तुम्हारी कल्पनाओं की रानी..." अरे ! मैं मरा। वह बूढ़ा चार बाँहों वाला ब्रह्मा मुझे बाहर क्यों खदेड़ रहा है ? और उफ्...वह मेरी प्रिया नाचते-नाचते मूर्च्छित हो गई ?

सिसक रही है, कह रही है, "पिताजी ! मेरा सब-कुछ ले लो, मेरा यह प्यार मत छीनो, मैं मर जाऊँगी।" बिचारा बूढ़ा विधाता भी रो पड़ता है, "बेटी ! मैंने किसी भी प्यार करने वाले के भाग्य में सुख नहीं लिखा, सुख नहीं दिया। तुम्हें कैसे दूँ ? यह बेईमानी कैसे करूँ ?" सुन्दरी तड़प उठती है, "ओ परदेशी ! रुक जा...मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ......हाँ, वह मेरी बात सुबह होने से पहले-पहल कविता में ढाल लेना नहीं तो उसके बाद नहीं ढाल सकोगे, मुझे नहीं पा सकोगे।"......अरे ! यह क्या ? सारा परदा

ही बदल गया। मैं जहाँ का तहाँ··· उफ··· सिरदर्द······।

प्रातः हो रहा है। किरणें कलियों को चूमने लगी हैं और हरसिंगार के फूल भरभराकर बरस रहे हैं मेरे चबूतरे पर।

अभी फूल बरस ही रहे हैं। मैं उन फूलों की ढेरी में छिपता जा रहा हूँ और धीरे-धीरे मैं चबूतरे पर फूलों की बड़ी-सी ढेरी में छिप गया। अब सारे फूल झर चुके हैं। मैं उठना चाहता हूँ, उन भावों को अपनी कविता में ढालने के लिए। किन्तु आलस्य, नहीं उठ पाता। अब मैं कहीं दिखाई नहीं दे रहा हूँ। बस, चबूतरे पर एक ऊँची फूलों की ढेरी मात्र दिखाई दे रही है।···और ··और···पलकें बन्द हो गई··मीठी-मीठी साँस, गहरी-गहरी नींद।"

पहर भर दिन निकल आया था। अभी तक पीथल चबूतरे पर सो रहा था और वह सचमुच ही हरसिंगार के झरे हुए फूलों में ढँका पड़ा था। महल में खलबली-सी मच गई थी। सभी पीथल को खोजने में चिंतातुर थे। लालसा और पीथल की भाभी उसी विनोद-कुंज में टहलते-टहलते परस्पर चिन्ता कर रही थीं। सहसा चबूतरे पर झरे हुए हरसिंगार के फूलों की ढेरी हिली और पीथल चौंककर उठता हुआ दिखाई दिया। लालसा इस जादू के देवता को सगबगाते हुए देखकर हँस पड़ी और गंगादे आश्चर्य से उसकी ओर चौंककर देखने लगी। जब पीथल की तन्द्रा भंग हुई तो उसने पूछा, "भाभी! सूरज निकल आया है?"

"एक पहर दिन चढ़ चुका है।"

"तो अब जीकर मैं क्या करूँगा?"

पीथल की यह बात सुनकर उसकी भाभी और भी चौंक गई। उन्हें सन्देह हुआ कि कहीं से पीथल को उसके भाई साहब के हृदय की कलुषित बातें ज्ञात हो गई हैं। क्षण-भर के लिए वह काँप उठी, किन्तु वह क्षत्राणी थी। सँभल गई और स्थिति को जानने के लिए नाटकीय ढंग से बोली, "पीथल! कैसी उल्टी-उल्टी बातें कह रहे हो? यदि तुम्हारे भैया आज यहाँ होते तो तुम्हारी यह बात सुनकर खाना-पीना छोड़ देते।"

"नहीं भाभी ! आज भैया खुश हो जाते······खुश हो जाते भाभी ! तुमने आज सूरज निकलने से पहले मुझे क्यों नहीं जगा दिया ?" सुनकर भाभी पुनः सन्न हो गईं। उनके मन में सन्देह पर सन्देह होने लगा। किन्तु साहस नहीं छोड़ा और पूछ बैठीं, "बात क्या है ? सुनूँ भी ?"

"बस, पूछो मत, कहो मत, मेरा सपना टूटकर बिखर गया। भाभी आज मैंने ऐसा सपना देखा कि उसमें मिले हुए भावों को सूर्योदय से पहले ही लिख सकता था। यदि मैं उसे अपनी कल्पना में बन्द कर देता तो उन भावों की खुशबू से यह सारी सृष्टि, सारा जगत और सारी मानवता सुर-भित हो जाती, धरती पर स्वर्ग उतर आता। किन्तु, अब क्या करूँ भाभी ! अब लिख नहीं सकता तो जीकर क्या करूँगा ? ऐसे भाव इस धरती पर पहले कभी उतरे नहीं और न कभी उतरेंगे। मैं स्वर्ग का स्वामी होते-होते नरक में गिर पड़ा। जब मैं वह भाव लिख ही नहीं सकता तो मुझे जीने का कोई अधिकार नहीं है।"

"वीर पुत्र ! हिम्मत न हारो। उसे अपनी कल्पनाओं में खोजो। चाहे तुम्हारा सारा जीवन ही उस भाव के खोजने में लग जाए तो क्या ? मेरे कलाकार ! उसे खोजो। लो, मैं चलती हूँ और तुम्हारी कल्पनाओं का राज तुम्हें लौटाती हूँ।······और लालसा ! तुम यहीं रहोगी। पीथल की मदद करोगी।" यह कहकर पीथल की भाभी बिजली की तरह तेज़ी से महल की ओर चल पड़ीं। आज उसे असीम सुख मिला था कि उसका देवर किसी बड़े रहस्यमय उच्च भाव को स्पर्श कर गया है और उस उच्च भाव को कविता में न ढाल लेने पर जीवित रहना भी उसे पसन्द नहीं। वह संसार के हित का इतना भारी प्रतीक है। उसका पाला हुआ पीथल इस धरती का देवता है।

उधर पीथल की दशा बड़ी विचित्र थी। स्वप्न में उसकी सरस्वती ने, उसकी चम्पा ने,क्या कहा था ? बस, उसी को वह बार-बार याद करना चाहता था, किन्तु अब उसकी बातें स्मृति से दूर हो गई थीं। उसे पश्चाताप था कि जब उसके जीवन का सबसे खूबसूरत क्षण आया तो वह सो गया।

उसकी दशा पागल-जैसी हो गई। वह विनोद-कुंज के वृक्ष, लता, पात, कली, कुसुम, शूल आदि सबसे गला मिला-मिलाकर रोने लगा। घंटों तक पत्तों से बातें करता रहा, कलियों से मनुहार करता रहा और चम्पा-जैसे रंगीन फूलों से तो बात करने में उसने दो-दो प्रहर लगा दिए। वह सबसे यही पूछता, "तुमने सुना है वह भाव, वह विचार जो मेरी चेतना की सरस्वती चम्पा ने रात को कहा था ? बता दो ! बता दो न !! मेरे प्राण ले लो, सारा जीवन ले लो। लो,मैं अपने करोड़ों जन्मों को तुम्हारे पास गिरवी रखता हूँ किन्तु परमात्मा के लिए मेरे सपने लौटा दो। मैं भूल गया हूँ। मैं वह हूँ जिसकी सोने-सी साधना थोड़ी-सी खूबसूरत नींद ने भ्रष्ट कर दी है।"

यों ही दिन पर दिन बीतते गए। पीथल उस एक स्वप्निल भावना के पीछे पागल होता गया। वह रोज़ाना उसी सपने वाले दिन की तरह चबूतरे पर आता। घंटों आकाश के तारों को निहारता। फूलों और कलियों की सुकोमल भावनाओं को छूता और सो जाता। हरसिंगार के फूल उसी तरह प्रातः झरते। उसी तरह वह उन फूलों की राशि में प्राय: दोपहर तक सोता। किन्तु दुर्भाग्यवश वह सपना नहीं आया। भला किसके सपने दुबारा लौटते हैं ? पीथल अपने उस सपने के वियोग में मोम की तरह गलता गया। महीनों बीत गए। शरीर सूख गया, हड्डियाँ निकल आईं। उपवास पर उपवास करता गया। अन्ततः एक दिन ऐसा भी आया जब वह निराश हो गया और आकंठ फूट-फूटकर रो पड़ा।

रोते-रोते वह विनोद-कुंज के फूलों और शूलों को मुट्ठी में दबाकर सहलाता। उसकी आत्मा भिन्न जाती और तब कंटकों पर उपवास से सूखे अपने शरीर को फेंक देता, रक्त बह पड़ता तब कहीं उसे कुछ शान्ति मिलती। उसकी दशा देखकर एक दिन लालसा की चीख निकल गई और वह गंगा-यमुना बहाती हुई फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी रुलाई सुनकर पीथल की तन्द्रा भंग हुई, वह एक क्षण उसकी ओर देखकर बोल उठा, "चुप रह, नहीं तो गला दबोच दूँगा। अभागी ! कम्बख्त कहीं की।"

……और सचमुच लालसा के आँसू जहाँ के तहाँ रुक गए। वह पत्थर की मूर्ति की तरह जहाँ की तहाँ अवाक् और शून्य रह गई। भाभी ने अवसर ठीक समझा और पीथल को अपनी गोद में बिठाकर उसकी उत्तेजना को शान्त करती हुई बोली—

"पीथल ! निराश न होओ। समान आहार-विहार से अपने मन को स्वस्थ करके चिन्तन करो।"

"नहीं भाभी ! अब वे भाव इस धरती पर नहीं उतर सकेंगे। पता नहीं, पिंड और अण्ड का वह कैसा संयोग था कि एक क्षण के लिए वे भाव आए और चले गए। अब तो निराशा से ही प्यार किया जा सकता है भाभी ! आशा रही ही नहीं।"

"पुरुष निराश नहीं होते पीथल ! उस महाचिति के उल्लास का कोई-न-कोई अंश तुम्हें मिलेगा अवश्य। मेरा मन ऐसा ही कहता है।"

"किन्तु भाभी ! वह रूप, वह रस और वह मादकता की गंगा कहाँ मिलेगी जिसे देखकर मैं मूर्च्छित हो गया था ? और उसकी उस अपूर्व वाणी और भावना का क्या कहना ? भाभी ! तुम स्वयं सोचो, जो छवि के बिछौने पर थिरकती हो, जिसके अधरों की रेखा से उषा लजाना सीखती हो और जो एक ऐसे दिव्य लोक की स्वामिनी हो जिसके सौन्दर्य और माधुर्य की कल्पना भी तुम नहीं कर सकतीं। सच कहता हूँ, भाभी, उस सुन्दरता की रानी ने मुझे प्रेम में मूर्च्छित देखकर बड़े ही प्यार से चूमा था और गद्गद् होकर उसने मुझे वे दिव्य भाव दिए थे।"

भाभी मन-ही-मन मुस्कराकर रह गई। कहना तो यह चाहा, "अच्छा ! तो यह बात है! प्यार के शिकार हो गए लल्ला।" किन्तु उन्होंने इस मजाक को रोक लिया क्योंकि उन्हें पीथल से भारी आशाएँ थीं। उन्होंने कहा, "तो पीथल ! तुम मुझे पूरा सपना तो सुनाते नहीं। फिर मैं तुम्हें क्या राय दे सकती हूँ ?"

"भाभी ! मेरी वाणी में वह सामर्थ्य कहाँ है जो कह सकूँ और अधूरा कहते हुए अपना जी नहीं भरता।"

"हाँ। तो तुम्हें उस दिव्य सुन्दरी का रूप तो स्मरण है न ?"

"हाँ।"

"फिर उसका चित्र ही क्यों नहीं बना लेते ? चित्र भी एक उच्च कला है। पीछे तुम सम्भवत: वह भी न बना सको। उसका चित्र बनाते-बनाते यह भी सम्भव है कि तुम पुन: अपनी कल्पना में उसके समीप पहुँच जाओ और तुम्हें वे भाव मिल जाएँ।"

पीथल को लगा जैसे उसके मन की बात भाभी ने कह दी हो। उसकी आँखें चमक उठीं और वह देखने लगा एकटक नीरव, निस्तब्ध शून्य में। तब तक भाभी ने मुस्कराकर चित्र-सामग्री प्रस्तुत कर दी···पीथल की तन्द्रा अभी भंग नहीं हुई,मानो उसके प्राणों का पंछी आकाश की असीमता में खोकर उड़ता ही चला जा रहा हो।

···और लालसा अपनी अतृप्त दृष्टि से देखने लगी पीथल को। पता नहीं उसे इस तरह देखने में क्या मिलता है······वह पीथल से एक क्षण भी तो अलग नहीं रहना चाहती।

अनजाने ही वह मन-ही-मन उसे अपने मन के मन्दिर में बिठाकर पूजती है, लेकिन फिर भी वह यह नहीं जानती कि अपना हृदय देती जा रही है। जब पीथल हँसता है तो वह हँसती है, जब रोता है तब रोती है और जब डाँट देता है तो चुप हो जाती है। वह सारे महल में अपनी तुनुक मिजाजी और अकड़पन के लिए प्रसिद्ध है किन्तु पता नहीं, वह पीथल के सामने भीगी बिल्ली क्यों हो जाती है ? ऐसी गलती तो कभी आपने भी की होगी, पूछिए न अपने दिल से। क्यों ? आप समझदार हैं। अपने दिल से पूछ सकते हैं।

लालसा अल्हड़ थी। सबकी प्यारी और सबके सिर चढ़ी हुई। उसने कभी अपने मन से यह प्रश्न नहीं पूछा। यदि पूछ लेती तो यह कहानी किसी दूसरे ही ढंग की होती। लेकिन होनी होकर ही रही। पीथल चित्र बनाने में खो गया; चित्र-पर-चित्र बनाते ही चला गया। चित्रों की राशि-राशि से महल भर गया। लालसा पीथल को घंटों तक टकटकी बाँधे देखती

चली गई। महीनों-पर-महीने बीतते चले गए। पीथल कल्पनाओं की चम्पा में इतना खो गया कि पास बैठी लालसा की सुधि तक न ली। लेकिन लालसा ने बुरा नहीं माना···उसकी आँखों में पीथल बसता ही चला गया।

उधर पीथल की भाभी को दूसरी ही धुन सवार थी। उसने अपने देवर के बनाये अनुपम चित्रों को भारत के कोने-कोने में पहुँचा दिया। किन्तु किसी को यह पता नहीं चल सका कि इन चित्रों का चित्रकार कहाँ है? कौन है? रूप की आग सबके सामने चारों ओर धधक उठी। किन्तु आग लगाने वाला सबकी आँखों से वैसे ही ओझल और अज्ञात रहा जैसे सारी दुनिया रूपी चित्र को बनाने वाला विधाता।

पंचम परिच्छेद

थका-थका चाँद, लुटी-लुटी चाँदनी, उदास-उदास सितारों की रोती-रोती रोशनी और आसमान के सीने से उखड़ी-उखड़ी ठंडी साँसें यमुना की बेचैन लहरों पर ग़मक़दे की शाम की तरह बिखर गई हैं। हवा में एक अजीव-सा दर्द है जो रायसिंह को लेकर आगरे के कोलाहल से यमुना के किनारे एकान्त में भाग आया है। यहाँ श्मशान-जैसी शान्ति है। मस्जिदों की बाँग कराहकर सो गई है और मन्दिरों के घंटे रोकर चुप हो गए हैं। अकबर का शाही महल यमुना-जल के हिंडोले में झूलता-झूलता निश्चिन्त होकर खामोश खर्राटे भर रहा है। और रंगीन ख्वाबों की खुमारी में बेखबर है। हसीन और गमगीन रात की गहराई में रायसिंह के दिल के परदे एक-एक करके खुल रहे हैं......"गंगा! मुझे प्यार करती हो?" "......यह भी पूछने की बात है महाराज! ......करूँगी! करूँगी!! करूँगी!!! जो भी आप कहेंगे।"......"तो पीथल को पान का एक बीड़ा ज़हर मिलाकर दे दो।"......"आह......", "बोलो क्या चाहती हो? आज्ञाकारिणी प्रिय पत्नी रहना या एक कलंकित भाभी......वेश्या! कुलटा!! ज़रा शीशे में मुँह तो देख? कितनी बदबू आ रही है तेरी लाश से......किन्तु इससे मुझे क्या? हाँ, तेरी माँग में सिन्दूर मैंने भरा था। आज मैं उसे पोंछकर जाना चाहता हूँ..।"...."सच! मेरे देवता! ! मेरे सुहाग! ! ! ज़रा मिटने वाले में जीने की तमन्ना तो देखो......ऐ कोटि-कोटि सीता-सावित्रियो! आज तुम स्वर्ग में बैठकर भी मेरे मृत्युलोक के इस खूबसूरत सौभाग्य पर ललचो, तरसो।"

मूर्च्छना करवट लेती है और रायसिंह यमुना की रेत पर धड़ाम से गिर पड़ते हैं। मौलश्री के वृक्ष से छोटे-छोटे गौरैया पंछी फड़फड़ाकर उड़

जाते हैं...उधर जहाँ सफेद रोंए वाले भेड़ों-जैसे बादलों के लाल होंठ स्याह पड़ गए हैं। भावों की टकराहट से रायसिंह अपनी आँखें खोलते हैं। सामने जमुना बह रही है खामोश, उदास, फीकी-फीकी। खामोश निगाहों की भाषा सच्ची होती है और रात की तनहाई में तो वह और ज्यादा साफ सुनाई देती है। रायसिंह की खामोश निगाहों से भी भाषा फूट पड़ती है, बादल बरस पड़ते हैं और मोती चूर-चूर होकर बिखर जाते हैं। आज छः महीने हो गए गंगा ने खोज-खबर भी न ली।

माना कि मैं नाराज़ होकर चला आया था। यह भी माना कि उसके दिल को दर्द दिया, चोट पहुँचाई थी, लेकिन उसके हाथ के एक छोटे-से कागज़ के पुरजे के लिए भी तो मैं ही तरस रहा हूँ। दो शब्द लिख भेजती तो उसकी क्या शान घट जाती······नहीं, नहीं···वह क्यों लिखे, पीथल को पाकर मुझे भूल गई है। छिः ऐसा तुम क्यों कहते हो ? वह तो साध्वी है, सीता है······नहीं···नहीं, वह धोखे की मूर्ति है, अविश्वास की प्रतिमा है, कुलटा है; वेश्या है···उँ हुँ······।"

"महाराज गुस्ताखी माफ हो।" यह सुनते ही रायसिंह चौंक उठे और जिज्ञासा भरी दृष्टि डाली। वह रायसिंह का दीवान था, बोला, "महाराज मानसिंहजी बड़ी देर से आपकी इन्तजार कर रहे हैं। बड़े उदास हैं, लम्बी-लम्बी ठंडी साँस ले रहे हैं।"

"क्या बात हैं?"

"कुछ कह नहीं सकता महाराज !"

खामोशी के पैर ढीले थे और उखड़ी-उखड़ी साँस थी। रायसिंह अपने दीवान के साथ मंद गति से आवास पहुँचे। मानसिंह और रायसिंह दोनों की सूनी-सूनी निगाहें परस्पर मिलीं, दोनों राजपूत गले मिले। सहानुभूति की आँच से दुःख का नवनीत पिघल जाता है। दोनों के दुःख पिघल गए और धरती पर चू पड़े। रायसिंह ने कठिनाई से पूछा, "महाराज इतने उदास क्यों हैं ?"

"पहले आप अपनी बताइए। रात-रात भर ग़मगीन सितारों के नीचे

यमुना के आँसुओं से आप क्या पूछते रहते हैं ?"

"भाई साहब ! कवि कब से बन गए ?"

"हाँ रायसिंह, पता नहीं और क्या-क्या बन जाऊँगा। इस उजड़ी-सी दुनिया में जी नहीं लगता।"

"कुछ सुनूँ भी।"

"रायसिंह ! मैंने कभी अपने दिल की कमजोरी जाहिर नहीं होने दी। लोग समझते हैं कि मानसिंह के पास पत्थर का दिल है, लोहे का दिमाग है, फौलाद का शरीर है और वज्र की जुबान है। लेकिन रायसिंह, यह सब नहीं है। लोग क्या जानें कि इस वज्र के नीचे भी एक ऐसी मुलायम गुलाब की पंखुड़ी छिपी पड़ी है कि उसकी याद आते ही मैं बेहोश-सा हो जाता हूँ। सारा चमन उजड़ा-उजड़ा-सा लगने लगता है। दिल पर ग़मगीनी छा जाती है। कहाँ तक कहूँ, रायसिंह ! लगता है जैसे मेरे प्राणों के पंछी को हाथ में लेकर अभी-अभी कोई उसका गला दबोच देगा। उसके पंख नोच देगा। तुम मेरे छोटे भाई के समान हो। इससे ज्यादा मैं तुम्हें क्या कह सकता हूँ।"

"छोटे भाई" शब्द सुनते ही रायसिंह के आगे पीथल की मूर्ति मुस्करा उठी। वे छटपटा गए। हृदय के आवेग को रोककर बोले, "भाई साहब ! आज्ञा दीजिए। आपकी खुशी के लिए यह सिर हाज़िर है।"

"साल भर पहले की बात है। मैं राणाप्रताप से सन्धि की निराशा लेकर लौटता हुआ मैसंणे में शक्तिसिंह से मिलने गया था। वहाँ देखता क्या हूँ कि कोई चम्पई रंग की अनिंद्य सुन्दरी माधवी-लता के नीचे चम्पा के फूलों से खेल रही है। वह खुशबू की रानी थी और खूबसूरती की मूर्ति। अधिक क्या कहूँ, रायसिंह, मैं जानता नहीं वह कौन थी ? लेकिन दिल उसे पहचानता है। मन उसे प्यार करता है और दिमाग उसका गुलाम हो चुका है।"

"यह मेरे ऊपर छोड़िए भाई साहब ! शक्तिसिंह मेरी पत्नी के फूफा होते है। मैं वहाँ जा सकता हूँ और पता लगा सकता हूँ।"

"यही तो बात है रायसिंह ! शक्तिसिंह मेरे बुलाने पर यहाँ आ गए हैं और राणाप्रताप के खिलाफ बादशाह से मिल गए हैं। कल बादशाह ने पूछा कि मैं आपकी दोस्ती का सबूत चाहता हूँ। इस पर वे अन्य राजाओं की तरह अपनी पुत्री की शादी बादशाह से करने पर राज़ी हो गए हैं। अगर कहीं वही सुन्दरी, जिसे मैंने देखा था, उनकी बेटी हुई और बादशाह को ब्याह दी गई तो गज़ब हो जाएगा रायसिंह ! तुम मुझे जीता नहीं देख सकोगे।"

"उनकी तो लड़की ही सिर्फ़ एक है चम्पा। पारसाल मेरी साली लालसा भी वहाँ गई हुई थी। पता नहीं, आपने किसे देखा है ?"

"आह ! क्या कहा ? चम्पा ? यही नाम हो सकता है उसका।"

"बड़ी अजीब सी बात है। आप इतने दिन यह दर्द छिपाये रहे और कहा नहीं।"

"तब तक यह दर्द अपनी हद में था। अब हद से गुज़र रहा है। मजबूर होकर कहना पड़ा है रायसिंह !"

"फिर भी कोई चिन्ता की बात नहीं है। मैं उन सबको पुष्कर स्नान के लिए या कहीं भी बुला सकता हूँ। या हम ही उधर किसी बहाने चल सकते हैं। इस तरह आप पहले पहचान कर लें कि वह कौन है ? इसी बीच अभी बादशाह से ब्याह तो होगा नहीं। यदि सचमुच चम्पा ही हुई तो शक्तिसिंह से कहकर मैं किसी अन्य लड़की का ब्याह बादशाह के लिए करा दूँगा। वे शक्ल से तो उनकी लड़की को पहचानते नहीं।"

"तुम तो पहचानते हो न ?"

"हुँह, यह भी क्या पूछने की बात है।"

"तो बताओ यह कौन है ?" कहते हुए मानसिंह ने एक बहुत बड़ा-सा चित्र रायसिंह के सम्मुख फैला दिया। आह, चित्र क्या था मानो विधाता की एक अनुपम सृष्टि थी। इस तस्वीर में कवि-कल्पना का सुन्दरता में और मधुरतम स्वप्न यथावत् अंकित हुआ था। रायसिंह उस सारे चित्र को देखते-देखते मंत्र-मुग्ध होकर चित्र लिखित से रह गए। साँस जहाँ की तहाँ

टँगी रह गई। तब बड़ी देर बाद उनके मुँह से निकला, "वाह ! चित्र क्या है बस भावों को साकार कर दिया है। जी चाहता है इसके चित्रकार का हाथ चूम लूं।"

"पहले यह तो बताओ यह चित्र किसका है ?" मानसिंह ने पूछा।

"चित्र तो चम्पा का ही है, लेकिन इसमें जिस सुनहरे देश, और पारदर्शी परियों की कल्पना की गई है उन्हें मैं नहीं जानता और न इस चित्र की अन्य बातों का ही कुछ मेल चम्पा से मिलता है।"

"बस, बस ! यह स्पष्ट हो गया कि मैंने चम्पा को ही देखा था। अब आगे के उपाय तुम सोचो।"

"आप निश्चिन्त रहें, सब हो जाएगा। किन्तु भाई साहब, यह चित्र आपने किससे बनवाया ? एक मेरे लिए भी ऐसा ही बनवा दें तो मैं उसे जागीर बख्श दूंगा।"

"देखो रायसिंह ! इस चित्र का राज़ खुलने न पावे। मुझे खुद को यह इल्म नहीं है कि इसका चित्रकार कौन है ? लेकिन यह सच है कि आज सारा भारत इस चित्र के रूप की आग में जल रहा है...वेश्याओं के वैभव-गृह से लेकर भक्तों के पवित्र मन्दिरों तक और गरीबों की झोंपड़ी से लेकर शाही महल तक इस चित्र के रूप की आग से धधक रहे हैं। भक्त इस रूप को देखकर अपनी राधा, सीता, शक्ति और पार्वती की मूर्तियाँ ऐसी ही गढ़वाने में दिन-रात लगे हुए हैं। वेश्याएँ प्रातः से सायं तक यही मनाती हैं कि इसी रूप और साज-सज्जा में वे नहा जाएँ।

गरीबों का ख्वाब है कि इस चित्र वाली परी की ही कहानी सुनें और अमीरों का स्वप्न है कि वे इसे किसी तरह पा जाएँ। खुद बादशाह सलामत बेचैन हैं कि किसी तरह यदि इस हूर का पता चल जाए तो अपनी बादशाहत तक उसकी नजर कर दें। देशी रजवाड़ों की बात तो पूछो मत। सभी राजकुमार इसी उम्मीद पर कुँआरे बैठे हुए हैं कि या तो वे शादी इससे ही करेंगे या उसके वियोग में ज़िन्दगी जला देंगे।"

"यही तो कला की सच्चाई है महाराज ! कुछ पता चला इसके कलाकार का ?"

"खोज चारों ओर जारी है कि चित्र किसका है और चित्रकार कौन है ? लेकिन अजीब-सी बात है, कुछ पता नहीं चल पाया।"

"किन्तु महाराज ! यह चित्र मैं तो आज पहली बार देख रहा हूँ।"

"वह भी मेरे दिखाने पर न।"

"हाँ !"

इसीसे तो मैंने समझा था कि तुम भी किसी गहरे दर्द में हो, क्योंकि जिसके अन्दर दर्द है वह बाहर देखता हुआ भी कुछ देखता नहीं। लेकिन तारीफ है तुम्हारी, कुछ बताया तक नहीं।"

"बताने लायक चीज ही नहीं है भाई साहब, कुछ घरेलू व्यथा है।"

"मैं कुछ योग दे सकता हूँ ?"

"हाँ ! आप चाहें तो पीथल को अपनी सेना में कोई पद दे सकते हैं।"

"वह तो अभी सत्रह वर्ष का बालक है।"

"तो क्या हुआ ? वह रचना तो आपने सुनी ही है—

बारह बरस लौं कूकर जीवें और तेरह लौं जियेंसियार।
बरिस अठारह क्षत्री जीयें, आगे जीवन को धिक्कार॥"

"हा···हा···हा···तो अब हम लोगों के जीने पर धिक्कार है। खैर, उसे बुला लो। मैं बादशाह से कहकर चार हजारी का पद दिला दूँगा।"

रायसिंह की आंखें चमक उठीं। लोहित भविष्य पर उनका राक्षस मुस्करा उठा। किन्तु उन्होंने मन की असली वेदना का रहस्य मानसिंह को नहीं दिया। दोनों खुश थे। नियति मुस्करा उठी थी। प्रातः हो रहा था। यह घटना सं० १६२३ के फाल्गुन मास की है। आगरा के पास ही मथुरा धर्म का केन्द्र था। संत-समागम हो रहा था। भगवान श्रीनाथजी भी गोवर्धन से उठकर मथुरा आ गए थे।

सारी नगरी आगन्तुकों के स्वागत में सजी हुई थी। सभी सम्प्रदायों के भक्त और संत आए हुए थे। सभी अपने-अपने राग में मस्त थे। किन्तु

सब में जो एकता थी, वह थी उस चित्र के रूप और भाव की एकता। सभी अपनी-अपनी पूजा की देवी को उसी चित्र के अनुरूप ढालकर मूर्ति प्रतिष्ठित किए हुए थे। चाहे राधा हो या सीता, शक्ति या पार्वती, सभी के रूप पत्थर की मूर्तियों में इसी चित्र से लिए गए थे। उनका पहनावा अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल अलग-अलग था, यह बात दूसरी है। इस तरह वह चित्र अनेक मूर्तियों में ढल चुका था फिर भी उसकी दिव्यता फीकी नहीं पड़ी थी, सभी मूर्तियों के ऊपर जगमगा रही थी।

संतों का ध्यान बरबस ही मूर्तियों से हटकर उस चित्र में लग जाता था, ठीक उसी प्रकार जैसे हम धरती की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को देखकर एक आह से कराह उठते हैं कि विधाता ने जिस सुन्दरता को अपना साँचा बनाकर इसे ढाला होगा, वह कैसी होगी? अकबर ऐसे समारोहों में न आवे, यह कैसे हो सकता था? उसका सहज कला-प्रेमी हृदय उसे यहाँ खींच लाया था। उसने सोचा था अपने चित्र की प्रतिष्ठा देखने शायद वह चित्रकार भी वहाँ आ गया हो! हो सकता है, वह रूपसी भी वहीं कहीं मिल जाए।

मानसिंह और रायसिंह भी साथ थे। हिन्दू राजाओं के परिवार तो मानो धर्म लूटने के लिए ही टूट पड़े थे। मनचले युवकों का तो पूछना ही क्या? इस मेले के अवसर की प्रतीक्षा में महीनों पहले ही से नये-नये कपड़े, सुगन्धित तेल और केशरी उबटन से अपने को सजाते रहे थे। बालों में छैलापन की काकपक्षी सजावट तो देखते ही बनती थी। नर्तकियों और गणिकाओं के रंगीन खेमों में जहाँ सुरा, सुन्दरी और संगीत तीनों का सदावर्त बँट रहा था, वहाँ ऐसे झरेला नवयुवकों की बस बहार आ गई थी। वे कानों में उँगली डाले रसिया, कजरी और बिरहा के गीतों में अपने दिल की सारी उमंगें उँडेल रहे थे।……और देहात की स्त्रियों की मस्ती तो पूछिये मत। मोटे जेवरों को खनखनाते हुए मटक-मटककर उनका नाचना शंकर की पार्वती को भी लज्जित कर देता था। उनके सुरीले कंठों का तो कहना ही क्या था?

बस, समझ लीजिए सारे ताल, सुर, और लय उनके आगे बेकार हो गए थे। उनकी इस ललकार पर ग्रामीण पुरुषों के डफ, मृदंग आर झाँझ झनक पड़े थे। रोकने से भी नहीं रुक सके। सचमुच भारत का मेला भी विधाता की सारी विविध चित्रकारी का एक छोटा-सा संक्षिप्त रूपान्तर है।

ऐसे विशाल मेले के प्रांगण में बीचोबीच वह विशाल दिव्य चित्र रखा गया था। सभी आयु, सभी वर्ग और सभी सम्प्रदाय के रसिक लोग नेत्र-लाभ कर रहे थे। सहसा एक युवक उस चित्र के रूप में झूमकर गिर पड़ा। सबकी दृष्टि वहाँ गढ़ गई। जल छिड़ककर उसे होश में लाया गया। उसके उन्नत गोरे ललाट पर पसीने की बूंदों के साथ-साथ घुँघराली लटें और काली काकपक्षी ज़ुल्फें उसके लाल कपोलों पर रस पी रही थीं। दिल भीगा हुआ था किन्तु अभी मसें नहीं भीगी थीं। ज़रा-ज़रा सी काली रेख मूँछ के स्थान पर उभर रही थी। रूप ने उसके हृदय का कपाट खोल दिया था। उसके मुँह से निकल पड़ा—

"अति अलबेली प्रिये, भूषित भूषन बिनु,
छिन छिन औरे और, बदन की जोति है।"[1]

लोगों ने समझा, इस पर भाव चढ़ आया है। किसी ने पूछा, "फिर आभूषण क्यों पहनाया गया है?" इसके उत्तर में वह झूमकर गा उठा—

"छबि के छिपाइबे को रस के बढ़ाइबे को,
अंग अंग भूषण बनाए हैं बनाइ कै।
देखे नासा पुट बेह प्रीतम भए विदेह,
याही हेत बेसर बनाइ धरि चाहि कै॥

---

१. यह अलबेली प्रिया तो बिना आभूषण पहने ही बहुत आभूषणों वाली खूबसूरती को पहने हुए सी मालूम पड़ रही है। इसके मुँह की खूबसूरती तो क्षण प्रति-क्षण और से और ही (अच्छी से अच्छी) होती जा रही है—"क्षणे क्षणेयन्नवतामुपैतीति तदेव रूपं रमणीयतायाः।"

रोम रोम जगमगै रूप को पानिप अति,
सकै न संभारि हँसि चितई सुभाइ कै।
कहै ध्रुव विवस लटकि जात छिन छिन,
यातें सखिसोभा सब राखी हैं दुराइ कै ॥[२]

यह सुनते ही एक बूढ़ा सूर बाबा सिहर उठा। वह व्याकुल होकर बोला, "अरे! ज़रा उसकी खूबसूरती का ढाँचा तो बताओ। आज परमात्मा ने मेरी आँखें दी होती तो···"

सूर बाबा की वाणी बड़ी कातर थी। युवक ने सूर बाबा का हाथ पकड़ लिया और गा उठा—

कुंजनि के आँगन में जहाँ जहाँ पग धरे,
छवि के बिछौने से बिछाए तहँ जात हैं।
··॥

सूर बाबा—आह! क्या कहा? जहाँ-जहाँ वह पैर रखती है, वहाँ-वहाँ छवि के, खूबसूरती के, बिछौने से बिछ जाते हैं?

युवक—हाँ बाबा! इससे आगे कुछ कहने की शक्ति मुझमें नहीं है।

सूर बाबा—तेरा नाम क्या है बेटा?

युवक—ध्रुवदास।

---

२. खूबसूरती को छिपाने के लिए और रस को उद्दीप्त करने के लिए इसके अंग-अंग में कलात्मक आभूषण पहनाये गए हैं। देखो, उसके नाकों की नुकीली खूबसूरती को देखते ही उसका प्रियतम बेहोश होकर गिर पड़ा ह। इसीसे तो उसके नाकों में बेसर पहना दी गई है। उसके रोएँ-रोएँ में खूबसूरती का पानी जगमगा रहा है। जब वह इशारा करके अपनी स्वाभाविक हँसी से हँसती है तो उस हँसी को उसका प्रियतम सँभाल नहीं पाता। ध्रुव कहता है कि क्षण-क्षण में उसका प्रियतम उसकी रूप-माधुरी पर मोहित होकर लटक जाता है। इसीसे तो सखियों ने उसकी सारी खूबसूरती को आभूषणों में छिपा दिया है।

सूर बाबा—अच्छा बेटा ध्रुव! ज़रा इस चित्र की कहानी तो कह दे।

युवक—बाबा क्या कहूँ—फूलों की सुरभित पँखुड़ियों पर पराग उड़ रहे हैं। कोपलों-सी नरम-नरम किरणों की दूधिया कलाइयाँ परागों के शराबी झूले को उड़ाए चली जा रही हैं चाँदनी की धार में। ऊपर सोने और मणियों की एक धरती है। सैकड़ों चाँद फूल की तरह खिल रहे हैं। वहाँ की रानी चम्पा फूलों पर थिरक रही है। तब तक झूले में से एक खूबसूरत जवान निकलता है और उसे देखकर मूर्च्छित हो जाता है। रानी उसे उठाकर चूमती है और उसके कानों में कुछ कहती है। तब तक चार बाँहों वाला ब्रह्मा, उसका पिता आता है, और दोनों को अलग कर देता है। उफ् दोनों चीख पड़े हैं—नीचे फूलों से ढका हुआ युवक का शव पड़ा है।

सूर बाबा—हाय! प्रीति के भाग्य में सुख नहीं···

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
अलिसुत प्रीति कियो जलसुत सों सपुट हाथ गह्यो।।

× × ×

हाँ जो प्रीति कर्‌यो माधव सों, चलत न कछू कह्यो।।

सूर बाबा और ध्रुव दोनों अभी उस वियोग की रसभग्नता में डूबे ही थे कि एक प्रौढ़ा सुन्दरी हाथ में करताल लिए उस दर्द को साकार करती हुई नाच उठी—

"हेरी मैं तो दरद दिवानी, मेरो दरद न जाने कोइ।"

इस गीत को सुनकर सारा मेला झूम उठा, बहुतों के नयन छलछला गए। किन्तु उनमें एक ऐसा पंडित भी था जो न हिला, न डुला, न कुछ सुना, न कहा, बस चित्र लिखित-सा रह गया। उसके अधर फुसफुसाकर रह गए। वह उस सुन्दरता की प्रतिमा में खोया खोया सोच रहा था, "छवि-गृह दीप-शिखा जनु बरई। सुन्दरता कहँ करई।।" तब उसे उसके पुरबिया साथी ने झकझोर कर पूछा—

"का हो तुलसी! का सोचते हो।"

"कुछ नहीं भइया ! देख रहा हूँ यह चित्र अनेक कलाकार पैदा करने जा रहा है। भारत का भाग्य उज्ज्वल है। पता नहीं,इसका चित्रकार कौन है ? मैं तो उसकी पूजा करना चाहता हूँ।"

"तो इस तसवीर को ही पूज दो। दोनों की पूजा हो जायगी।"

"ठीक कहते हो भाई ! मैं इसे जगज्जननी सीता बनाकर पूजूंगा। मुझे सीता का सौंदर्य, शील और विरह तीनों मिल गया।"

इसी तरह मेले में सबने अपनी-अपनी रुचि से उस चित्र को देखा, सराहा। तुलसी यह देखकर आत्म-विभोर हो गए। उन्होंने सोचा, जब राम जनकपुरी में गए होंगे तो इसी तरह वे सबको अलग-अलग भावों में सुन्दर लगे होंगे—

"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।"

दूसरी ओर अकबर की आँखों में एक अजीब प्यार, एक अजीव नशा, एक अजीब मस्ती और एक अजीव खुमारी भरी थी। वह सोच रहा था, अगर भाग्य से उसे वह रूप, वह बुत मिल जाए तो वह खुदा बन जाए। वह उस रूप के प्यार में कई बार बेहोश हुआ, कई बार मरा, कई बार जिया। उसकी दशा और अपने दिल के दर्द को पहचानकर सहसा मानसिंह ने एक ठंडी सांस लेते हुए रायसिंह से पूछा—

"आह ! अब क्या होगा रायसिंह ?"

षष्ठ परिच्छेद

"भाभी ! भाभी !! भाभी !!!" पीथल आज उल्लसित होकर चहकता हुआ भाभी के पास दौड़ा आया ! हाथ में उसका अन्तिम चित्र था। दिखाकर बोला, "भाभी ! इतने दिनों बाद यह चित्र मेरे मन-माफिक बना है। ज़रा देखो तो।"

"हाँ पीथल ! कला में हज़ार रेख खींचने पर तब कहीं एक रेख सटीक बनती है। यही तो कला है।"

"तुम्हारे देवर ने बनाया है इसे। खुश होओ भाभी ?"

"बहुत खुश हूँ—इतनी खुश कि अब कोई साध नहीं रह गई। लेकिन पीथल ! ध्यान रखो, कला किसी की निजी संपत्ति नहीं है। सबकी है। आज से तुम इसे अपनी न कहना।"

"अपनी सृष्टि को भी अपनी न कहूँ ?"

"हाँ, विधाता भी इतनी बड़ी सृष्टि का निर्माण करके मौन और अदृश्य है। तुम भी उसी के वंशधर हो। यही हमारी भारतीय संस्कृति है। हमारे यहाँ के किसी भी श्रेष्ठ कलाकार ने कला प्रस्तुत करके अपना व्यक्तिगत भौतिक परिचय नहीं दिया। जानते हो क्यों ? केवल इसी-लिए कि कला कलाकार की निजी संपत्ति नहीं है। और सभी लोगों की तरह तुम भी जहाँ कहीं इस चित्र को देखो, वहाँ प्रसन्न होओ, प्रेरणा लो, किन्तु यह न कहो कि यह मेरी कृति है। तुम तो उसमें स्वतः हो ही।"

"यह लोभ मैं कैसे संवरण कर सकूँगा ?"

"यह प्रतिष्ठा का लोभ तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा। वैसे भी लोभ त्याज्य है। देखो, तुमने लगभग पाँच सौ चित्र बनाए। किन्तु मैंने उसमें से एक भी

अपने पास नहीं रखा। तुम्हारी प्रतिभा का पहला फल था, समस्त भारत में बँटवा दिया। आज इस चित्र से सारे भारत में एक-रूप की ज्वाला-सी फैल गई है। सभी उसे प्यार करते हैं और तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं, जानना चाहते हैं। सम्भव है, तुम्हारी कला को देखकर अनेक सच्चे कलाकार भी पैदा हो जाएँ।"

"किन्तु यह सारा कार्य मैंने बड़े गुप्त ढंग से किया है। कोई यह नहीं जानता कि ये चित्र तुम्हारे बनाए हैं। और देखो, तुम्हारा यह सबसे सुन्दर और प्यारा चित्र भी मैं तुम्हें नहीं दूँगी। इसे मैं ले रही हूँ।"

"भाभी!"

"पीथल! लोभ को रोको, इस पर विजय पाओ। यश के भिखारी मत बनो। ऐसे दाता बनो जो देकर भी यह न कहता हो कि मैंने दिया है।"

पीथल यह सुनकर भाभी के चरणों में गिर पड़ा। बोला, "भाभी! तुम कितनी महान हो! हिमालय तुम्हारी समता कर सकेगा? आकाश भी तुम्हारी उदारता पर शायद तरस जाए। समुद्र की गहराई भी तुम्हारे हृदय की थाह शायद ही पा सके......"

"बस, बस पीथल! तुम कलाकार हो, चारण न बनो। अभी तुम्हें वह भाव खोजना है जिसे तुम्हारे स्वप्नों ने पाया था और जागरण ने गँवाया है।"

पीथल का सिर झुक गया। वह कल्पनाओं में ही भाभी की दिव्यता के गुण गा उठा। दिव्यता से ही मिलती है, वह अपने उस स्वप्न में दिव्य-भावों को खोजने में मग्न होकर उन्मन हो गया।

दिन बीते।

रातें बीतीं।

और समय की धार में चंदा-सूरज उगते-डूबते चले गए।

स्वप्न-भाव

इसी उधेड़बुन में अचानक एक दिन ऐसा भी आया जब अपने भाई

रायसिंह का संदेश पाकर जैसलमेर से आगरा के लिए पीथल को प्रस्थान करना पड़ा। यद्यपि उसकी भाभी यह नहीं चाहती थी कि उसका भोला पीथल पेचीदी राजनीति में आगरे जाए; क्योंकि उसे सन्देह था कि उसके पति रायसिंह पीथल की किसी-न-किसी बहाने कहीं हत्या करा देंगे। फिर भी पति की आज्ञा थी, स्वयं दीवानजी सवारों के साथ पीथल को स्वागत सहित लिवा लेने के लिए आए थे। वह मना नहीं कर सकी, किन्तु अपना दिल भी नहीं मना सकी। चलते समय पीथल को बुलाकर कहा—

"देखो पीथल ! तुम पहली बार मुझसे दूर जा रहे हो। तुम्हारी चिन्ता में मैं घुलती रहूँगी। जितनी जल्दी हो सके लौटना। और हाँ, ध्यान रहे, तुम्हारे बनाए हुए चित्र तुम्हें वहाँ भी देखने को मिलेंगे। सम्भव है, कोई उसके चित्रकार के रहस्य को भी पूछे। तुम रहस्य को रहस्य ही रहने देना। किसी को भी बताना नहीं।"

पीथल ने सिर हिला दिया। चलते समय सहज ही उसके घनश्याम-नयन भाभी के प्रेम की आँच से चू पड़े। उसके मुँह से कोई शब्द नहीं निकला। चुप-चुप ही उसने भाभी के पाँव छुए। भाभी ने भी चुप-चुप ही उसके सिर पर हाथ फेरा और दिल थामकर पीथल को बिदा कर दिया।

आगरे में रायसिंह ने पीथल को, आते ही, गले से लगा लिया और प्यार इतना उमड़ा कि उनके नेत्र छलछला गए। धोखा प्यार से ज्यादा खूबसूरत होता है। झूठ की कला कभी-कभी सच के सौन्दर्य को भी मात कर देती है और जब पाप होता है, तब पुण्य से भी अधिक प्यारा लगता है। रायसिंह की आँखें भी छलछला गई। पीथल उन आँसुओं में डूबकर गद्‌गद् हो गया और मचलकर बोला, "हाँ···भाई साहब, जब आप आये तो मुझसे मिले भी नहीं।"

"पीथल ! तू उस समय सो रहा था न ! मैंने तुम्हारी मीठी नींद को छीनना पसन्द नहीं किया।"

पीथल दुगने प्यार से अपने बड़े भाई की गोद में चिपक गया। प्यार की शीतलता से उसकी आँखें मुँद गई, मानो उसे संसार की सारी विभूति

मिल गई हो। इतने ही में किसी कोमल कण्ठ ने नमस्कार किया—दूधिया रंग, गोरा-गोरा छरहरा बदन, कमल-सी कलाई, मछली-सी बड़ी-बड़ी आँखें, मुस्कानों से भरा मुँह और उस पर लटके हुए गेसू।

रायसिंह ने परिचय कराया, यह हैं कुमारी खुरशीद। मेरे दोस्त नवाब साहब की भानजी हैं। और वह देखो—(घनी काली दाढ़ी, मूछों में भरा-भरा गोरा-गोरा चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, चालीस-पचास की अवस्था) नवाब साहब भी आ गए। खुरशीद ने कनखियों से पीथल की ओर देखा और पीथल ने आँखें झुकाकर अभिवादन किया। खुरशीद ने भी हाथ जोड़कर अभिवादन किया। पल-भर दोनों के नेत्र मिले। तब तक नवाब साहब ने मुस्कराकर पीथल की पीठ थपथपाई। पीथल ने संकोच में दबकर अपने दोनों हाथ अभिवादन के लिए जोड़ दिए। खुरशीद ने दुबारा अपनी कजरारी आँखों की रसभरी कनखियों से पीथल की ओर देखा।

पीथल की आँखें सहज सौम्यता से नीचे झुक गईं। पुनः सहज ऊपर उठीं। तब तक खुरशीद की आँखें खिले कमल की तरह पूर्णता से खुलीं। पलकें पंखुड़ियों की तरह फैलकर यथाशक्ति फहर उठीं। नील नयन के मध्य से काली पुतली थिरकती हुई उठी। दोनों कोनों की ओर तेज़ी से दो-चार बार नाची और तिरछे होकर अत्यन्त मन्द गति से तरल तारे की भाँति चू सी पड़ी; नीचे झुक गई। ऐसी कलापूर्ण तिरछी प्यार की रस-भरी चितवन पीथल के लिए सर्वथा नई थी। वह मन-ही-मन सोचने लगा, यह कैसी अजीब-सी मीठी चितवन है! इन खामोश निगाहों की ज़िन्दगी कितनी बेचैन है! पर क्यों? यह ऐसे कैसे देखती है? क्यों देखती है? भाभी तो इस तरह कभी नहीं देखती। इसकी उमर की लालसा है। रंग-रूप भी ऐसा ही है, बल्कि उसमें सौन्दर्य इससे ज्यादा ही है। वह भी ऐसे नहीं देखती। फिर यह माजरा क्या है?

सारे हिन्दुस्तान के बादशाह की यह राजधानी है। हो सकता है, यह महिला-शिष्टाचार हो। फिर हमें यह शिष्टाचार का स्वागत कैसे करना चाहिए? भाईसाहब से पूछूं। उसने जल्दी से अपनी दृष्टि रायसिंह की

ओर मोड़ी और पूछना चाहा। किन्तु पूछ नहीं सका। रायसिंह भाँप गए कि पीथल कुछ पूछना चाहता है। उन्होंने उसे अवसर दिया। अपनी ओर से पूछा भी, "क्यों पीथल ? मुझसे कुछ पूछना चाहते हो ?" पीथल ने सिर हिलाकर नहीं कर दिया। वह क्या पूछे ? कैसे पूछे ? अपने भाई से महिला के नेत्र-शिष्टाचार पर किस तरह बात करे ? सहसा उसके विचारों ने करवट बदली।

यह भी तो हो सकता है कि उसे नेत्रों की पुतली नचाने का शौक हो या रोग हो अथवा यह किसी प्रकार का नेत्र-व्यायाम तो नहीं है ? फिर मेरी ओर लक्ष्य करके यह ऐसा क्यों करती है ? नेत्र-व्यायाम अकेले में करना चाहिए, न कि मेरी ओर लक्ष्य करके ? कुछ भी हो, यह साफ जाहिर है कि उन खामोश निगाहों की उन खूबसूरत और बेकरार हरकतों का मुझसे सम्बन्ध अवश्य है। क्या सम्बन्ध हो सकता है ? वह बेचारी निहायत मासूम है। शायद कुछ कहना चाहती है। मुँह से नहीं कह पाती। आँखों से कह रही है, इशारा कर रही है। पर क्यों ? जान न पहचान, मियाँ बीबी सलाम ? फिर मेरा अंग-अंग क्यों ढीला होता जा रहा है ? मन क्यों अनायास ही काँपता जा रहा है ? आँखें उसे बार-बार क्यों देखना चाहती हैं। कुछ भी हो, मैं देखूँगा लेकिन सँभल के। कहीं गलती न हो जाए। तो न देखूँ ? बड़े लोग हैं। सभ्य और सुशिक्षित है। कहीं मुझे असभ्य न समझें।

पीथल का मन आगा-पीछा सोचता रहा लेकिन रुक नहीं सका। हृदय का उच्छ्वसित वेग विवेक को नहीं माना। उसने चोरी से कनखियों द्वारा उधर देखा। खुरशीद न जाने क्यों तब अत्यन्त सुन्दरी-सी लगी। परी-सी, तितली सी, शराबी आँखें, चाँदनी बिखेरते हुए लाल पतले होंठ, चाँद-सा मुँह, अधखुली बेपरवाह सीने की कली और बिखरी अलकें। रसभरी आँखों की बेचैन चितवन, खुमारी भरे नयन और तड़पती हुई पलकें। खुली हुई उसकी आँखें ऐसी लग रही थीं मानो सन्तरे की फांकें हों, उनका रस चूसने के लिए पीथल के अधर सहज ही फड़फड़ा उठे। तब तक खुरशीद ने पुनः

अपनी प्यास भरी चितवन चलाई।

पीथल तड़प उठा, रूप की मादकता से काँप उठा। तब चोरी-चोरी ही दोनों के नेत्र कई बार उठे, मिले, झुके, उलझे और कुछ कहते-सुनते रहे। सहसा नवाब साहब अट्टहास कर उठे और बोले, "पीथल! तुम बड़े अच्छे लड़के हो। हम तो तुम्हारा इन्तज़ार करते-करते बुड्ढे हो गए।"

"मैं तो दीवानजी के पहुँचते ही यहाँ के लिए चल पड़ा था।"

"खूब! बहुत खूब!! रास्ता दूरी का है। तकलीफ तो नहीं हुई?"

"जी, नहीं।"

"सुना है तुम शायर हो।"

"जी आपकी कृपा है। तुकबन्दी कर लेता हूँ।"

"तस्वीर भी बना लेते हो!"

"थोड़ा-थोड़ा।"

"वल्लाह? बड़े हुनर वाले हो। खुरशीद को भी इन चीज़ों का बड़ा शौक है। वह भी गीत, नृत्य और शायरी करती है।"

पीथल ने अपनी आँखें खुरशीद पर गड़ा दीं। खुरशीद ने आँखें झुका लीं। उसके पैर के नाखून धरती कुरेदने लगे। दाँतों में सहज ही उसकी साड़ी का कोना आ गया और अँगुलियाँ साड़ी से खेलने लगीं। उधर राय-सिंह और नवाब साहब के नेत्र मुस्करा उठे। तब नवाब साहब ने कहा, "खुरशीद! चलो, आज हमें बादशाह सलामत के पास भी तो चलना है।"

खुरशीद तन से उठी, मन से बैठी ही रही और सपनों से चल पड़ी। पीथल ने दोनों को अभिवादन किया। नवाब साहब ने पीथल की पीठ थपथपाई और सायंकालीन भोजन के लिए अपने घर आमन्त्रित किया। किन्तु खुरशीद न कुछ बोली, न सुनी, यन्त्र की भाँति चल पड़ी। पीथल से रहा न गया। उसने खुरशीद को दुबारा नमस्कार किया, तिबारा नमस्कार किया और फिर वह लज्जा के मारे चौथी बार नमस्कार नहीं कर सका। रायसिंह के साथ-साथ पीथल भी उन दोनों को पहुँचाने के लिए बाहर तक आया। चलते-चलते खुरशीद सहसा रुक गई मानो तन्द्रा भंग हुई हो। एक

बार उसके दृग-पलक कमल की पंखुड़ियों से सहज ही पीथल की ओर उठे, ठहरे और फूल से चू पड़े।

सायंकाल नवाब साहब के निवास पर पीथल का भोजन था। वहाँ नवाब साहब के सेवक-सेविकाओं के अतिरिक्त केवल खुरशीद ही थी। उनके परिवार का कोई अन्य व्यक्ति नहीं था। भोजन के बाद सुसज्जित कक्ष में खुरशीद ने एक बहुत ही खूबसूरत हाथी-दांत का खुशबूदार फूल पीथल को भेंट किया और अत्यन्त उल्लास एवं प्रफुल्लता के वातावरण में चहकते हुए कंठ से एक मादक गीत सुनाया। यह सब कुछ पीथल के लिए नया था। वह यह नहीं जानता था कि ऐसे अवसर पर कैसे क्या कहा जाए।

रायसिंह भाँप गए और बोले, "खुरशीद ! तुम्हारे गीत, उपहार और शिष्टता से पीथल बहुत खुश है। वह संकोच कर रहा है। मैं उसकी ओर से और अपनी ओर से तुम्हें धन्यवाद देता हूँ।" नवाब साहब ने शराफत की तस्वीर की तरह बड़ा लम्बा आदाब किया और "खुदा हाफिज़" कहते हुए विदाई दी। चलते समय सहसा पीथल के कदम न जाने क्यों रुक गए। न जाने क्यों उसकी व्याकुल आँखें पीछे मुड़ गई और न जाने क्यों उसकी काँपती नज़रें खुरशीद की घबराई आँखों से टकरा ही गई। वह काँप गया और अपने भाई रायसिंह से बोला, "भैया ! न जाने क्यों जी घबराया-घबराया-सा लग रहा है।"

"अच्छा ! चलो।" रायसिंह ने मुस्कराते हुए उसके कंधे पर हाथ रख दिया, किन्तु सहसा वह भी घबरा गए और उदासी के स्वरों में बोले, "पीथल ! तुझे तेज बुखार है, शरीर तवे-सा जल रहा है।"

"और भैया मेरे नस-नस में न जाने कैसी कँपकँपी-सी हो रही है। आँखों में एक अजीब तरह की जलन और बेचैनी है। पाँव कहीं रख रहा हूँ, पड़ कहीं रहा है।"

"हाँ पीथल! तुम्हारे पाँव डगमगा रहे हैं। खैर, हम अपने निवास स्थान पर आ गए।"

रायसिंह का निवास स्थान नवाब साहब के निवास स्थान से लगभग

मिला ही हुआ था। नवाब साहब को पीथल की अस्वस्थता का समाचार मिला और वे खुरशीद को साथ लेकर वहाँ आ गए। खुरशीद को पीथल की देखरेख का अवसर मिल गया। किन्तु पीथल ज्वर में बेहोश पड़ा था। दूसरी ओर नवाब साहब रायसिंह के कानों में कुछ कह रहे थे।

बाहर उद्यान में मधु बरसाती सुकुमार चाँदनी के नीचे रात की रानी महक उठी थी। फूलों की छाया में लताएँ पत्तों की पायल बजाकर थिरक उठी थीं। तितलियाँ भवरों के भावुक गीत में अलसा गई थीं। धरती आकाश के कानों में चुपचुप कुछ कह रही थी। सुदूर, पता नहीं यमुना की धार थी या चकवा-चकवी की मजबूरी के कजरारे आँसू।

इसी तरह पीथल के दिन सपनों के देश में कटने लगे। धीरे-धीरे वह खुरशीद के सपनों की खुमारी में इतना बेखबर हो गया कि न जाने कब उसे सम्राट् के दरबार में चार हजारी का पद मिला, कब उसकी भाभी की चिट्ठी आई, लालसा ने क्या-क्या लिखा—उसे पता नहीं, उसने पढ़ा तक नहीं। इसी खुमारी में पीथल के कई महीने बीत गए। उसके तन-मन में खुरशीद के प्यार का ज़हर चढ़ता चला गया।

सप्तम परिच्छेद

रोती हुई सुबह, सिसकती हुई वायु, सूनी-सूनी धरती, उदास-उदास अम्बर। लालसा की आँखें अनायास ही आज बरस पड़ती हैं। वैसे तो वह महीनों से उदास है। जी उचटा हुआ है, लेकिन आज तो बस पूछिए मत। क्षण भर भी उसे चैन नहीं। सभी अंगों से आँखें बहुत दुखारी हैं। न जाने वे क्या सोचती हैं, विसूरती हैं। रह-रहकर जी चाहता है कि बस रोये और खूब रोये। आँखें बड़हर के फूल की तरह सूजकर लाल हो गई हैं। वह सोचती है—एक मैं हूँ जो पीथल की याद में रोज़ाना रोती हूँ, तड़पती हूँ और एक पीथल है कि उसे मेरी परवाह ही नहीं।

हाँ…उसे मेरी परवाह हो भी क्यों? मैं उसकी हूँ भी कौन? उसे कौनसा सुख दिया है मैंने, जो मेरी याद करे। जब तक वह यहाँ था, उसे चिढ़ाती रहती थी…हाय! होली के दिन कितना चिढ़ाया था मैंने!… "मुँह देखा है शीशे में? मैं पानी डालूँगी और इन पर? काले बन्दर जैसा तो चेहरा है। काले तवे से भी ज्यादा… बड़े खूबसूरत हैं?" स्मृति ने करवट बदली, "मेरी गुड़िया की शादी है। उस पर एक सुन्दर कविता लिख दो! शादी में बराती बनकर तुम भी आना…मेरी झबरी कुतिया का चित्र बना दो न पीथल! मेरे नाखूनों पर एक कविता लिख दो…।" और लालसा बिसूरकर बरस पड़ी। दिल-दिमाग पर जो व्यथा जमकर बैठ गई थी, वह आँसुओं में पिघल-पिघलकर बहने लगी।…सामने धुँधला-सा एक चेहरा आ गया पीथल का।

"अब कभी न चिढ़ाऊँगी पीथल!"

"धत् पगली। यूँ ही रोये जा रही है। लो मैं आ गया।…गिलहरी

कहीं की।"

"जाओ मैं नहीं बोलूँगी तुम से! तुमने मेरी चिट्ठी का जवाब तक नहीं दिया।"

"........."

"बड़े खराब हो। दिन-रात रुलाते रहते हो। मुझे रुलाने में तुम्हें लड्डू मिलते हैं क्या?"

"........."

लालसा चौंक पड़ी। "ऐं? मैं यह शिकायत किससे कर रही हूँ? यहाँ तो कोई नहीं है। बड़ा शैतान है पीथल। वह मेरी आहों में खुश होकर आता है। दिल की आँखों के सामने धुँधला-धुँधला-सा खड़ा हो जाता है। मैं पगली अपने भावों के सपने में उससे न जाने क्या-क्या शिकायतें करने लग जाती हूँ। वह भला क्यों आने लगा यहाँ? वहाँ शाही राजधानी में मौज उड़ा रहा होगा। चार हजारी का पद पा गया है। सिर आसमान पर चढ़ गया है। बादशाह को लच्छेदार भाषा में गा-गाकर प्यार की कविता सुना रहा होगा···लालसा को कौन पूछे? अच्छा, मत पूछो। चिट्ठी भी मत लिखो। यहाँ कोई फालतू नहीं है जो तुम्हारे लिए तड़पता रहे। दिन-रात चिट्ठियाँ लिखता रहे··· हुँह···बड़े आए कहीं के···।"

तब तक सूरज आग के लाल गोले की तरह सामने निकल आया था। लालसा को अच्छा नहीं लगा। समय काटने से भी नहीं कटा। वह घबड़ाकर अपनी जीजी के पास आई। खाँसी, खुशी और उदासी छिपाए नहीं छिपती। रोआँ-रोआँ कहने लग जाता है। गंगादे ने जब लालसा की ऐसी गहरी उदासी देखी तो चिन्ता में पड़ गई। पूछा, "यह चाँद आज राहु-ग्रसित क्यों है?"

लालसा—कुछ नहीं जीजी, कुछ नहीं।

गंगादे—यही "कुछ नहीं" तो सब कुछ है।

लालसा—पता नहीं जीजी! आखिर हम क्यों जी रहे हैं?

गंगादे—क्या?

लालसा—यही कि हम क्यों जी रहे हैं ? इतने लम्बे समय से हम मानव इस धरती पर हैं। पर क्यों ? भूख के लिए खाना, खाने के लिए भूख, जागने के लिए सोना, सोने के लिए जागना, सुबह के लिए शाम, शाम के लिए सुबह। आखिर यह भी कोई उद्देश्य है ? फिर हम इतने लम्बे समय से इस तरह निरुद्देश्य खामख्वाह यूँ ही फालतू क्यों जीते चले जा रहे हैं ?

गंगादे—जीते हैं मरने के लिए, मरते हैं जीने के लिए। यही तो है तुम्हारे इस तर्क का प्रतिपाद्य।

लालसा—क्या अर्थ ?

गंगादे—यही कि जो मरना जानता है वही जीवित रह सकता है। अर्थात् वही अमर रहेगा; जो मिटने से नहीं डरेगा।

लालसा—ठीक कहती हो जीजी, मुझे अपने प्रश्न का समाधान हो गया।

गंगादे—लेकिन ठहरो, इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई असह्य विपत्ति से आत्म-हत्या कर ले। आत्म-हत्या से बढ़कर जघन्य अपराध कोई नहीं।

लालसा—ऐं ?

लालसा की आँखों में बरबस आँसू छलक आए। उसके सामने प्रतीक्षा एवं गहरी निराशा की काली रेखाएँ उभर आईं। शून्य में अंधेरा और झंझावात भर गया। वह अपने को रोक न सकी और दौड़कर गंगादे के आँचल में मुँह छिपा लिया, फफक पड़ी। गंगादे भी अपने को न रोक सकी। दोनों के अश्रुकण एक ही स्थान पर चू पड़े।

"आगरे से सवार वापिस आ गया है।" दासी ने निवेदन किया। गंगादे और लालसा की आँसू भरी आँखें मुस्करा उठीं। आज्ञा पाकर सवार को उपस्थित किया गया। गंगादे ने पूछा, "पीथल सकुशल है ?"

लालसा मुस्कराकर पूछ बैठी, "जीजाजी प्रसन्न तो हैं ?"

"बड़े सरकार तो खूब प्रसन्न और स्वस्थ हैं। उन्होंने पत्र का उत्तर दिया है," कहते हुए सवार ने पत्र लालसा की ओर बढ़ा दिया। "किन्तु छोटे सरकार को मैं नहीं समझ पाया। मैंने दोनों पत्र उन्हें दिये। उन्होंने

उन पत्रों को पढ़ा तक नहीं। एक ओर रख दिया और पड़ोस में नवाब साहब के घर चले गए।"

गंगादे—यहाँ वापिस आते समय तुमने उससे उत्तर माँगा ?

सवार—माँगा था और छै-सात दिन तक पत्र की प्रतीक्षा में मैं वहीं रहा भी।...लेकिन...लेकिन...।

गंगादे—हाँ-हाँ...साफ कहो, डरो मत।

सवार—छोटे सरकार से जितनी भी बार मैंने उत्तर के लिए निवेदन किया उतनी ही बार उन्होंने यह उत्तर दिया कि अभी पत्रों को पढ़ने का समय नहीं मिला। पढ़कर उत्तर दूँगा। अन्तिम बार चलते समय भी मैंने कहा कि वापिस जाने के लिए बड़े सरकार ने हुक्म दे दिया है। उत्तर तैयार हो तो दे दें। तब उन्होंने कहा कि तुम जाओ, मैं फुरसत से पढ़कर अपने सवार से पत्र भेजूँगा। इस पर मैंने निवेदन किया कि पहले भी उन्होंने कई बार ऐसा ही कहा,किन्तु पत्र नहीं भेजा। इस पर छोटे सरकार शरमाकर मुस्करा दिए थे।

गंगादे—बहुत व्यस्त थे क्या ?

सवार—ऐसी कोई बात मैंने नहीं देखी कि कह सकूँ उन्हें काम से फुरसत ही नहीं थी। बल्कि एक दिन के अलावा मैंने रोजाना उन्हें घर पर ही देखा।

गंगादे—कविता या चित्र बनाने में अधिक व्यस्त होंगे।

सवार—सुना तो कुछ ऐसा ही है, लेकिन निश्चय पूर्वक मैं कुछ नहीं कह सकता। उनका ज्यादा समय या तो नवाब साहब के घर पर लगता था या नवाब साहब की......

गंगादे—संकोच क्यों करते हो ? जैसा भी तुमने अनुभव किया हो, वैसा ही कहो। तुम्हें इसी लिए भेजा था कि उसकी पूरी दिनचर्या का मुझे पता चल सके।

सवार—तो जो कुछ मैंने देखा, सुना और समझा है उसका निचोड़ यह है कि छोटे सरकार का सारा समय नवाब साहब की भानजी के साथ

बीतता है। या तो वे नवाब साहब के घर चले जाते हैं या वह उनके पास आ जाती हैं। सुना है, दोनों को कविता, संगीत और चित्रकारी से रुचि है। इसलिए दोनों एक-दूसरे से कुछ-न-कुछ सीखने में लगे रहते हैं। और ···और अगर दूसरी कोई बात हो तो वह मुझे मालूम नहीं हो सकी।

गंगादे—क्या नाम है नवाब साहब की भानजी का ?

सवार—खुरशीद।

गंगादे—और कोई विशेष समाचार ?

सवार—कोई नया नहीं।

गंगादे—अच्छा, अब तुम जा सकते हो।

लालसा इसके बाद कोशिश करके भी वहाँ न रुक सकी। तेज़ी से अपने शयन-कक्ष की ओर मुड़ी और बिस्तरे में अपना मुँह छिपा लिया। ठीक वैसे ही जैसे शुतुरमुर्ग अपने निकट शिकारी को देखकर मुँह छिपा लेता है और समझ लेता है कि शिकारी चला गया, आफत टल गई।

अष्टम परिच्छेद

एक दिन खुरशीद ने पूछा, "पीथल ! तुम मुझे इतना प्यार करते हो, इसका अंजाम क्या होगा ?"

"मुझे तो यह भी पता नहीं कि मैं तुम्हें प्यार कर रहा हूँ या कुछ और ?"

"क्या मतलब ?"

"यह कि मैंने पढ़ा और सुना है कि प्यार असीम तृप्ति, आनन्द और शांति का नाम है जहाँ दो प्राणी निश्छल एवं पवित्र भाव से एक दूसरे के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। लेकिन यहाँ तो मुझे तड़पाने में तुम्हें सुख मिलता है और तुम्हें मैं अपने लिए तड़पता हुआ देखकर खुश होता हूँ। यह क्या है ?"

"ऐसा न कहो पीथल ! मैं पागल हो जाऊंगी। मैं तुम्हारी ही हूँ पीथल ! यह तड़पना और तड़पाना तो आनन्द का अचार या मुरब्बा है। बोलो, तुम हो न मेरे ?"

"मैं झूठ नहीं कहूँगा। मुझे पता नहीं, मैं तुम्हारा हूँ या नहीं। लेकिन इतना जरूर है कि मैं अपना नहीं हूँ, अपने में नहीं। पता ही नहीं, मुझे क्या हो गया है ? मैं आसमान से टूटे हुए तारे की तरह उद्भ्रान्त हूँ।"

सुनते ही खुरशीद की आँखों में क्रोध की लाल रेखाएँ खिच गईं। वह झटकती हुई बोली, "तुम नीच हो, निर्मोही हो। खबरदार कभी इधर देखा तो करोड़ों जन्मों तक जख्म नहीं मिटेगा। धोखेबा……" कहते-कहते फूट पड़ी।

पीथल क्षणभर अवाक् रहा। फिर सहसा उठकर उसे आलिंगन में

भरते हुए चूम कर कहा—

"खुरशीद ! मैं तुम्हारा हूँ लेकिन तुम्हें अपने प्यार और अपनी साधना में विश्वास होना चाहिए। प्रेमी के मुँह से अपने लिए प्यार कहलवाना तो छिछलापन है।"

"लेकिन अज्ञात हृदय के प्रति अनजाने ही मूक प्यार की साधना करते जाना भी तो मूर्खता ही है।" एक साँस में ही रुँधे गले से खुरशीद कह गई।

"तुम बड़ी भोली हो। प्रेम तो मूक भी होता है और मूर्ख भी। ऐसा मैंने सुना है।"

"अच्छा बाबा ! लो, मैं अब कबूतरी ही बनी रहूँगी। तुम गला घोट देना। मैं कुछ न कहूँगी।"

"तो रूठती क्यों हो ? मुस्कराओ न !"

"हाँ, रुलाते जाओ और कहते जाओ कि मुस्कराओ न !"

पीथल ने हँसकर चूम लिया। चुम्बन प्यार की मुहर है। खुरशीद खुश हो गई और पीथल की आँखों में टेढ़ी नजरों से रस और मुस्कराहट की पिचकारी मारती हुई भाग गई। पीथल तड़प उठा—दुगना, चौगुना, हजार गुना। और ग़म ग़लत करने के लिए बनाने लगा एक चित्र—खुरशीद का।

दूसरी ओर जब खुरशीद अपने घर पहुँची तो नवाब साहब के पास रायसिंह और मानसिंह घुट-घुटकर बातें कर रहे थे। उसने बराबर वाले कमरे में दिवाल से अपना कान लगा दिया—

"भाई मानसिंह ! आप घबड़ाएँ नहीं। भाग्यवश इस वर्ष सोमवती अमावस्या है। मैं पीथल को जैसलमेर भेजता हूँ। वह अपनी भाभी को पुष्कर-स्नान के लिए ले आवेगा। साथ में चम्पा जरूर आएगी क्योंकि आज-कल वह वहाँ आई हुई है।"

"लेकिन रायसिंह ! यह तो सोचो, पुष्कर में वह मुझे कैसे मिलेगी ? और कहीं इसी बीच बादशाह को यह मालूम हो गया कि वह चित्र चम्पा

का है तो क्या होगा ? वह तो उसके लिए दीवाने हो रहे हैं।"

"ऐसी बातों में नवाब साहब की अकल अच्छी चलती है। मैं तो सिर्फ तलवार चलाना जानता हूँ।"

"तो नवाब साहब ! आप ही नाव पार लगाओ न !"

"वल्लाह ! यह तो मैं आनन-फानन में कर दूँगा। मुझे तो सिर्फ मुरगी नज़र आनी चाहिए। हलाल तो यूँ करूँगा'''यूँ, चुटकियों में। हाँ, क्या हुआ यार तस्वीर बनाने वाले का ?"

"अभी तक कहीं कुछ पता नहीं चला।"

खुरशीद सन्न रह गई। "हुँ उँ उँ उँ'''तो यह बात है !" मन-ही-मन कहती हुई उठ गई। उससे आगे कुछ भी सुनना उसके लिए बेकार था। और शृंगार करने चली गई। शृंगार के बाद भी कई घण्टे तक नवाब साहब, रायसिंह और मानसिंह की बातचीत चल ही रही थी। उनकी बातें लम्बी होती हुई देखकर वह पीथल के पास चल दी। वहाँ वह सिर पर हाथ रखे सो रहा था। खुरशीद ने जगाया, किन्तु उसकी नींद नहीं खुली। "जो सोया सो खोया" कहावत शायद ठीक ही है। खुरशीद की नजर सामने की तस्वीर पर पड़ी जिसे पीथल बनाते-बनाते सो गया था। अभी तस्वीर का रंग गीला ही था। उसे देखकर खुरशीद के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

वह मन-ही-मन बोली, "तो यह बात है। यह हज़रत हैं वह चित्रकार जिसे सारी बादशाहत नहीं तलाश सकी।" उसने झट तसवीर उठाई। तस्वीर के नीचे लिखा था, "खुरशीद या चम्पा।" सच तो यह है कि पीथल खुरशीद का चित्र बनाना चाह रहा था किन्तु संस्कारवश या अभ्यासवश चित्र बन गया था चम्पा का। उसने अपनी इसी विवशता पर खीझकर नीचे लिख दिया था, "खुरशीद या चम्पा।"

खुरशीद ने आगे-पीछे देखा। रायसिंह के आवास-प्रहरी खुरशीद को शक की नजर से नहीं देखते थे, क्योंकि वह दिन में कई बार आती-जाती थी। खुरशीद चित्र लेकर तेजी से बाहर निकल गई।

पीथल की जब नींद खुली तो रात हो चुकी थी। सबसे पहले उसकी दृष्टि चित्र की ओर गई। चित्र को वहाँ न देखकर वह सन्न रह गया। काटो तो खून नहीं। हड़बड़ाकर उठा। चारों तरफ देखा। चित्र कहीं न पाकर वह एकदम खुरशीद के घर चल दिया। वहाँ उस पर पहरियों की रोक-टोक नहीं थी। सभी उसे परिवार का एक अंग समझते थे। वह सीधे खुरशीद के कक्ष में बेधड़क चला गया। दासी उसे रोकने का या तो साहस नहीं कर सकी या असावधान हो गई। वहाँ उसने जो कुछ देखा, सुना, वह उसके लिए संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य था—हीरे-मोतियों में लदी-फदी खुरशीद प्रकाश में जगमगाते हुए विशाल आइने के सामने नवाब साहब के आलिंगन में कसमसी होकर सी-सी कर रही थी और नवाब साहब मद-होशी में एक साथ चुम्बनों की बौछार करते जा रहे थे। पीथल को मानो लकवा मार गया। उसने हथेली से अपनी आँखें बन्द कर लीं। तब तक लड़खड़ाते स्वरों में सुनाई दिया, "मेरी जान! तुम्हारी खूबसूरती पर तो एक बार खुदा भी फिदा हो जाए। वह दहक़ानी पीथल भला किस खेत की गाजर-मूली है?"

हैरत और परेशानी में पीथल पसीने-पसीने हो गया। वह आँख-कान बन्द करता हुआ तेज़ी से बाहर भागा। किन्तु दरवाज़े से टकराकर वह सहसा लड़खड़ा गया। उसका सिर चकरा गया, वह गिर पड़ा। अब खुरशीद और नवाब दोनों की नज़र उस पर पड़ी। नवाब की बुद्धि सचमुच कमाल की निकली। वह झट बाहर निकलकर रायसिंह के पास गया। दूसरी ओर खुरशीद पीथल को अपने बाहुओं में कसकर बोली, "पागल मत बनो! मामूजान ने आज पहली बार मेरी पाकीज़गी पर डाका डाला है। अब मैं इस बदतमीज़ के घर एक क्षण भी नहीं रुक सकती। चलो, हम दोनों कहीं भाग चलें।"

"मैं तुम्हारा विश्वास कैसे करूँ?"

"इसलिए कि विश्वास न करना हीनता है।"

"किन्तु प्रत्येक पर विश्वास करना भी मूर्खता है।"

"न करना चाहो तो मत करो। अब मेरे लिए सिर्फ एक ही रास्ता है और वह यह है।" कहती हुई खुरशीद ने कटार निकालकर अपने सीने पर लगाना चाही। पीथल चीख उठा, "नहीं, नहीं, यह मत करो। मैं विश्वास करता हूँ, तुम मेरी हो।" कहते हुए पीथल ने उससे कटार छीन ली और उसे बाँहों में लेकर उसकी धड़कती हुई छाती पर हाथ रखकर करार दे दिया। खुरशीद पीथल से सट गई। मद के आवेश में उसकी आँखें सहज ही मुँद गईं। पीथल के लिए इतना गर्म और उतावला प्यार पहला था। वह खो गया और खुरशीद की सचाई और पवित्रता का गुणगान वह मन-ही-मन कर उठा।

तब तक नवाब साहब रायसिंह को लेकर उस कमरे में आ गए। दोनों ने पीथल पर एक घृणा की दृष्टि डाली और बाहर निकल आए। पीथल यह तमाशा देखकर नवाब साहब पर आगबबूला हो गया। वह समझ गया कि नवाब साहब मुझे कलंकित कराने के लिए ही भाई साहब को लाए हैं। खुरशीद की भी आँखों में अंगारे से बरसने लगे। वह बोली, "डरते क्यों हो? चलो, मैं भंडा फोड़ करती हूँ।"

पीथल का हाथ अपने हाथों में लेकर वह बाहर निकली और रायसिंह के सामने गरज कर बोली, "यह आपका मक्कार दोस्त मेरा मामू है। बद-तमीज है। इसने आज मेरी अस्मत पर डाका डाला है। दूसरी ओर अपने घृणित मुँह को साफ-पाक बनाने के लिए यहाँ आपको बुला लाया है। मान कि पीथल और हम प्यार करते हैं, लेकिन इससे क्या हुआ? क्या प्यार करना कोई गुनाह है? मैं अब इसके घर एक क्षण भी नहीं रुक सकती। चलो पीथल, हम दोनों भीख माँगकर खाएँगे लेकिन यहाँ नहीं रहेंगे।"

नवाब साहब ने यह देख सुनकर सिर झुका लिया। रायसिंह खड़े हो गए और खुरशीद की पीठ पर स्नेह का हाथ फेरते हुए बोले, "तुम्हारी पवित्रता पर मुझे गर्व है लेकिन मेरी प्रार्थना मानो, कहीं बाहर न जाओ। घर की इज्जत घर में रखो। राज-को-राज ही रहने दो। पीथल मेरा भाई है! कुल का सबसे प्यारा दीपक है। उसके सौ गुनाह और हजार खून मैं

माफ़ करूँगा। अगर वह तुम्हें चाहेगा तो मुझे कोई ऐतराज़ नहीं होगा। लेकिन सोचने के लिए उसे और मुझे कुछ समय दो। नवाब साहब मेरे दोस्त हैं, मैं उनकी ओर से तुम्हें भरोसा देता हूँ कि अब वे हरगिज ऐसा नहीं करेंगे।"

खुरशीद की आँखें पीथल से मिलीं। पीथल ने सिर झुका लिया। खुरशीद मान गई। पीथल अपने भाई का इतना बड़ा हृदय देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा। रायसिंह ने उसे उठाया और बड़े स्नेह से कहा, "घर जाओ पीथल, स्वस्थ होओ!" पीथल अपने भाई की महानता से दबकर सिर नीचा किये हुए बाहर निकला तो लपककर खुरशीद ने उसके कानों में कहा, "तुम्हारे भाई साहब तो बड़े गज़ब के आदमी हैं। उनके दिल का ऊँचाई को तो हिमालय की बुलन्दी भी नहीं छू सकती।" पीथल शरमाकर मुस्करा दिया। खुरशीद ने फिर कहा, "हाँ, तुम्हारी तस्वीर मैंने फाड़ दी है। अब तुम मेरी तस्वीर बनाओ, चम्पा की नहीं।"

"लेकिन तुमने किसी को चित्र और चित्रकार का रहस्य तो नहीं बता दिया?"

"मैं ऐसी कच्ची नहीं हूँ। सारा राज़ जानती हूँ। तुम्हारी वह तस्वीर आज हिन्दुस्तान के कोने-कोने में सबका सपना बनी हुई है। तुम्हारी तलाश अब तक बादशाहत भी नहीं कर सकी है। इसीलिए तो मैंने वह तस्वीर फाड़ दी थी...मैंने तुरन्त सोच लिया था कि इसमें कोई गहरा राज़ जरूर है।"

"यह तो मुझे पता नहीं कि क्या राज़ है लेकिन मेरी भाभी यह नहीं चाहतीं कि उस चित्र के चित्रकार को कोई जान सके। और मैं उनकी हर बात को ईश्वर की आज्ञा मानता हूँ।"

"तो क्या तुम्हारे भाई साहब भी इस बात से अनजान हैं कि तुम्हीं वह चित्रकार हो।"

"जी, हाँ।"

"खुरशीद ने आँखें नचाकर कहा, "खूब! वाह! खूब! फिर तो

यह राज मुझे भी छिपाकर ही रखना होगा।"

पीथल ने गर्दन हिला दी।

फिर दोनों की आँखें मिलीं। नजरों ने एक दूसरे को विश्वास दिया।

मुस्कराते हुए पीथल के मन्द चरण अपने आवास की ओर बढ़े। खुरशीद खोई-खोई-सी उसके चरणों की ओर उस समय तक देखती रही जब तक वे दृष्टि से ओझल नहीं हो गए। सहसा उसकी तन्द्रा भंग हुई। उसने एक दृष्टि पुन: पीथल के निवास की ओर डाली और अपने आवास की ओर तेज़ी से मुड़ी।

कक्ष में मुड़ते ही नवाब साहब ने उसे अपनी बगल में दबोचकर उसी तरह बिठा लिया जिस तरह बाज़ कबूतरी को।

दोनों हँस पड़े। रायसिंह की हँसी भी रोकने से नहीं रुकी। तीनों खुश थे। अपनी-अपनी तारीफ में तीनों ही फूले नहीं समा रहे थे। तीनों ही अपनी-अपनी कला में सफल उतरे थे। खुशी में खुरशीद ने जमकर दोनों को मदिरा पिलाई। झूमकर गीत गाया। थिरककर नृत्य किया और स्वयं ही नवाब के आलिंगन में आबद्ध हो गई। किन्तु नवाब साहब और रायसिंह जब सुबह उठे तो खुरशीद गायब थी। उसके कमरे की कई चीजें भी गायब थीं। वे तेज़ी से पीथल के पास पहुँचे। पीथल अभी तक सो रहा था। खुरशीद का कहीं पता नहीं चला।

उधर खुरशीद ने बादशाह को एकान्त मुलाकात में 'खुरशीद या चम्पा' वाली तस्वीर भेंट की और सिर झुकाकर बोली, "खता मुआफ हो! जिसे शाहंशाह की सारी बादशाहत नहीं ढूंढ़ सकी, उसे कनीज़ ढूंढ़ लाई है।" बादशाह खुशी के मारे उछल पड़ा और अपने गले का मुक्तामाल उतार कर उसके गले में डालते हुए बोला, "अब तुम कनीज नहीं, मीना बाज़ार की रानी हो।"

खुरशीद की ज़िन्दगी का एक महत्त्वपूर्ण स्वप्न पूरा हुआ। उसने बादशाह को रायसिंह, नवाब साहब, मानसिंह और पीथल सबका रहस्य सही-सही खोल दिया। मानसिंह के दिल में चम्पा के प्रति प्रेम वाली बात सुनकर

बादशाह सहम गया। वह किसी भी तरह मानसिंह के दिल पर धक्का नहीं पहुँचाना चाहता था। मानसिंह शाही तख्त का स्तम्भ था। बादशाह विचारों में डूब गया, लेकिन वह क़द्रदान था।

खुरशीद के आश्चर्यजनक कार्य से वह गद्‌गद् हो गया। अपनी हीरे की अँगूठी उतारी और उसे पहना दी। फिर दुबारा मिलने के लिए वादा देकर उसे सम्मान सहित किले में स्थित मीना बाज़ार तक पहुँचवा दिया। ज्यों-ज्यों उसकी नज़र से खुरशीद ओझल होती गई त्यों-त्यों बादशाह को वह दिन याद आने लगा, जब खुरशीद बारह वर्ष की कली थी और उसे काश्मीर-नरेश ने भेंट-स्वरूप देते हुए कहा था, "जब यह कली खिले और अपनी खुशबू से आपका दिलो-दिमाग तर कर दे तो मेरी दोस्ती की खुशी के लिए खामोश दरिया के दिल पर घी के पाँच दीपक जलवा दीजिएगा।"

आज उस कली की पहली खुशबू ही में अकबर बेख़बर हो गया। मान-सिंह और रायसिंह का भेद जानने के लिए वह किस तरह उनके मित्र नवाब साहब की प्रेयसी बनी। पीथल के सामने उनकी भानजी बनी। खामोश प्यार का जहर पीथल की आँखों में भर दिया और फिर सबका दिल व राज़ लेकर अपना काम पूरा होते ही ग़ायब हो गई। रायसिंह और मानसिंह के मंसूबे को भी क़ैद कर लाई। भेजा था एक काम के लिए, वह कई अत्याशित कार्य कर आई। बादशाह यह सोचता-सोचता मुस्करा उठा। यमुना की लहरों में घी के पाँच दीपक हँस पड़े। लहरों पर हँसकर चलने वाले दीपकों पर जब खुरशीद की नज़र पड़ी तो वह खामोश हो गई, खो गई।

उसके अधरों पर फीकी मुस्कान रेंग गई। नयनों से मोती चूर-चूर होकर बिखर पड़े और दर्द का एक सर्द झोंका उसके दिल की कली को सिहरा गया, वह काँप गई। उसे लगा जैसे पीथल को प्यार का धोखा देकर उसने ठीक नहीं किया। उसके सम्मुख पीथल की निर्विकार सहज मद-भरी आँखें झूम गईं। वह तड़प उठी। माना कि उसने अभिनय किया था, पीथल को ठगा था, किन्तु ठगते-ठगते भी वह अछूती नहीं रह गई थी।

प्यार का दाग उसके दिल में भी अनजाने ही कब लग गया था, उसे पता नहीं।

शायद ठगने से ज्यादा वह ठगी गई थी। नवाब साहब को धोखा देकर वह जितनी खुश थी, पीथल को धोखा देकर वह उतनी ही दुःखी थी। क्यों ? ठग को ठगकर खुशी हो सकती है, किन्तु जो स्वयं ठगाने आया हो उसे ठगकर कोई खुश नहीं हो सकता। खुरशीद यह सोचते-सोचते सिसक उठी। ठीक इसी समय मीना बाज़ार के किसी सुकोमल कण्ठ ने अभिवादन किया, "मीना रानी को बधाई है।" खुरशीद का मुँह स्वाभिमान से खिल उठा। यमुना के उस पार सुदूर कोई रो उठा। शायद पीथल था।

सम्राट् अकबर ठीक इसी समय मानसिंह और शक्तिसिंह के साथ गुप्त मंत्रणा कर रहा था। अकबर ने निश्चय किया कि सोमवती अमावस्या के पर्व पर, जब सभी देशी रजवाड़े पुष्कर स्नान के लिए आवें, उस समय पहले से ही मानसिंह पुष्कर के पास अपनी सेना सहित मौजूद रहें और मेरा आदेश पाते ही महाराणा प्रताप पर अचानक धावा बोल दें। मानसिंह को मनचाही बात मिल गई। वे किसी भी बहाने उस पर्व पर पुष्कर जाना चाहते थे। वे सम्राट् के दिल की गहराई को नहीं भाँप सके। वह एक साथ ही कई शिकार खेलना चाहता था। शक्तिसिंह ने सम्राट् से पूछा, "और हमारा सम्बन्ध ?"

सम्राट् ने मुस्कराकर मानसिंह की ओर देखा। मानसिंह का चेहरा उतर गया। किन्तु अपने को तुरन्त सँभालकर उन्होंने कहा, "वैसे तो सम्बन्ध अभी हो जाना चाहिए लेकिन मेरा ख्याल है कि महाराणा प्रताप को परास्त करके और शक्तिसिंह को उनकी जगह गद्दी पर बैठाकर सम्बन्ध करना ज्यादा ठीक रहेगा। सम्राट् के गौरव के अनुकूल शादी भी हो सकेगी। जल्दी-जल्दी में मज़ा भी नहीं रहेगा। वैसे राजपूत की बात तो पत्थर की लकीर है ही।"

बादशाह ने कहा, "ख्याल नेक है। इस वक्त युद्ध और शादी दोनों में

से कोई एक ही सम्भव है। महाराणा का सिर नीचा करना ज़्यादा ज़रूरी है।"

शक्तिसिंह मौन रहे। बात टल गई। अकबर मानसिंह की बातों पर मुस्करा उठा। वह जानता था कि यदि चम्पा से उसने पहले शादी कर ली तो मानसिंह का दिल टूट जाएगा। वह महाराणा के सामने युद्ध में नहीं टिक सकेगा। भाग्य से शक्तिसिंह फूटकर आ मिला है, ऐसा अवसर दुबारा नहीं मिलेगा। महाराणा को पराजित करके उसके सामने ही उसकी भतीजी से शादी करना उसने बेहतर समझा। उसने अपने दिल में योजना तैयार कर ली थी। बस, क्रियान्वित करने की देरी थी। हाँ, उसकी आँखों में पीथल ख़ार की तरह खटक रहा था।

मानसिंह शक्तिसिंह को लेकर युद्ध की तैयारी पर विचार करते हुए रायसिंह के पास आये। सोचते-सोचते न जाने कब प्रेम-नीति या रण-नीति की गहराई में डूब गए। उधर पीथल की एक ज़िन्दगी उजड़ गई थी। वह स्वर्ग पाते-पाते नरक में गिर पड़ा था। वह खुरशीद का पता नहीं लगा सका।

महीनों बीत गए और बीतने लगे। किन्तु खुरशीद की याद भुलाने से भी नहीं भूली, नहीं भूली। पीथल धीरे-धीरे खिन्न, उन्मन और उदास होता चला गया। उसे अब बारम्बार भाभी की याद आने लगी। तब उसने भाभी के सभी पत्रों को बार-बार पढ़ा। दो-चार पत्र लालसा के थे, जिन्हें पढ़ते-पढ़ते वह थरथरा गया। आँखें छलछला गईं। उसकी फूल-सी भोली करुण मूर्ति सहज ही उसकी आँखों के समक्ष छा गई। पीथल सपने की उन आवाज़ों की दुनिया से घबड़ा गया। बीती बातों को लेकर लालसा की मूर्ति उसके दिल में साँप की तरह चिपक गई।

सपनों में अतीत का दर्द भर गया। मूर्च्छना ने करवट ली…"कल मैं अपने इन लम्बे नाख़ूनों पर मेंहदी रचाऊँगी। मेरी सारी सहेलियाँ आएँगी। तुम भी आना और नाख़ून पर अच्छी कविता बना लाना। सबको सुनाना। बड़ा मज़ा आवेगा।…नहीं,नहीं, जिज्जी। इन्होंने मारा नहीं है। मैं गालों

पर हथेली लगाये तभी से बैठी हूँ। मेरी ही अँगुलियों की छाप पड़ गई होगी।...न जाने क्यों तुम्हें तंग करने में मुझे बड़ा मजा आता है। सच ना पीथल ! मैं बड़ी कम्बख्त हूँ न ?"

पीथल के दिल के घाव की पट्टी फट गई। वह रो पड़ा...उसकी बेचैन जिन्दगी छटपटा उठी। वह बार-बार यही सोचता—क्या अर्थ था लालसा के इन शब्दों का ? और सोचते-सोचते लालसा की मूर्ति खुरशीद में बदल जाती। खिलखिलाकर हँस पड़ती और पूछती, "सच ना पीथल ! मैं बड़ी कम्बख्त हूँ न !"

वह व्याकुल हो उठा जैसलमेर जाने के लिए। रायसिंह को पीथल की इस स्थिति से और भी गहरा धक्का पहुँचा। वह ज्यों-ज्यों उनके सामने भाभी की याद करता, त्यों-त्यों उनके दिल पर सौ-सौ मन के हथौड़े चोट करते। अब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि पीथल का सम्बन्ध उसकी भाभी से निश्चय ही कलंकमय है तभी वह उसकी बहुत याद करता है।...जब तक खुरशीद थी, तब तक उसने भाभी की याद कभी नहीं की थी। यह बात और भी खटक गई। फलतः एक दिन रायसिंह ने मानसिंह और नवाब साहब से कोई गहरी बात तय करके पीथल को जैसलमेर जाने की सुविधा दे दी। और छः-सात महीने के बाद सोमवती अमावस्या के पर्व पर पुष्कर मेले में भाभी-सहित आने का आदेश दे दिया।

नवम परिच्छेद

सोई-सोई पर्वत-श्रेणियाँ, खोया-खोया चाँद, बिदाई माँगते हुए तारे। हरी धरती और नीला आसमान। सभी चुप। सभी अलसित। सुप्त। जैसलमेर राजमहल में प्रात। अमृतवेला। धीरे-धीरे सुवासित दीपों की लौ मंद हुई। नई चटकी हुई कलियों की सुगंधि से कक्ष भर गया। शीतल समीर भी परागों की रेशमी डोर पर चढ़कर आ गया और राजकुमारी लालसा के अलसाये हुए अछूते यौवन को छूने के लिए आकुल हो उठा। इतने ही में कोकिल कूक उठी। वह चोर की भाँति सहम गया।

सहसा वहाँ पीथल की दृष्टि पड़ी। देखता क्या है कि मकड़ी के जाले-जैसे झीने अस्त-व्यस्त श्वेत रेशमी वस्त्र से लालसा की लाल कमल-सी जवानी फूट रही है। मानो चिकनी दूधिया चाँदनी में भड़कते हुए ज्वालामुखी की लपट उठ रही हो। इसी बीच वह रेशमी वस्त्र मुख की ओर से सरका, मानो श्वेत बदली को फाड़कर उषा मुस्करा दी। धीरे-धीरे वह फिसलकर कमर तक आ गया।

खिला हुआ वक्ष मानो फूटता हुआ ज्वालामुखी हो। उसने लालसा को कभी इतने नज़दीक से नहीं देखा था···शायद देखकर भी नहीं देखा था। इस दृष्टि से देखने की भूख तो खुरशीद के सम्पर्क ने ही जगाई थी।

पीथल के लिए लालसा अब एक नई दुनिया थी। वह खो गया। सोचने लगा—यह क्या है? क्या सौंदर्य? नहीं, यह तो उषा की लाली है। नहीं, भड़कता हुआ ज्वालामुखी है। नहीं, नहीं, कुछ नहीं। केवल···।

सहसा सुरभित मलयवायु का एक सरस झोंका लगा। कली खिली, हिली और पीथल थरथरा गया। शीतल-शीतल हलकी हवा के स्पर्श से

लालसा को ऐसा लगा जैसे दो बरस के बालक ने अपने कपोलों को उसके कपोलों पर रख दिया हो। रोम-रोम रस और हर्ष से गनगना उठे। पलक खुले, मानो कमल की पँखुड़ियाँ खुलीं। अँगड़ाई ली, मानो छवि के फूल छमछमा उठे। सुदूर कोई सुरीले कंठ से गा रही थी—

"साँवरिया वर पायो रे!"

लालसा के होंठ मुस्कराकर हिल गए। वह गीतों की रानी थी। मग्न होकर गा उठी···"साँवरिया बर पायो रे।" उसे क्या पता कि कोई बड़ी देर से चुप-चुप उसके रूप, रस और संगीत का पान कर रहा है। कुछ देर बाद ज्यों ही उसने गीत की अन्तिम कड़ी पूरी की और "साँवरिया वर पायो रे" का बोल मिलाया, त्यों ही उसने सुना—

"सच ?"

वह हड़बड़ाकर उठी। अपने अस्त-व्यस्त झीने वस्त्रों को ठीक किया। मुस्कराई और किंचित् आश्चर्य से बोली—

"अरे! पीथल तुम? कब आये?"

"सीधे तुम्हारे पास ही आ रहा हूँ।"

"लेकिन तुम हो बड़े वैसे।"

"कैसे?"

"वैसे ही। न जाने कब से चुप-चुप खड़े हो। सब कुछ देख-सुन रहे हो और···"

"अच्छा तो तुम्हें मेरा आना बुरा लगा? जाता हूँ।"

"चले कैसे जाओगे? कोई मुफ्त में थोड़े ही आए हो? बड़ी-बड़ी मिन्नतें कराए हो। लम्बी-लम्बी प्रतीक्षा कराए हो। तब कहीं आए हो।" अपनी मछली सरीखी बड़ी-बड़ी आँखों को चमकाकर लालसा ने कहा। पीथल हँस पड़ा और रूठने का-सा मुँह बनाकर बोला—

"अच्छा जी, आने भी नहीं देंगी। जाने भी नहीं देंगी। मतलब क्या है? आखिर तुम मेरी लगती कौन हो जो इतना अधिकार जताती हो?"

"अच्छा, मै कुछ नहीं हूँ तुम्हारी।"

तेजी से कहकर लालसा ने अपनी छलछलाई आँखों को फहराकर मुँह फेर लिया। ऐसी थी बच्चों की साँस-जैसी भोली लालसा। सहज ही उसके नेत्रों से मोती टपक पड़े; दूसरी ओर ताकने लगी। पीथल समझ गया और मनाने का अवसर ठीक देखकर उसका आँचल खींच लिया तथा ठोड़ी ऊपर उठाते हुए उसकी आँखों में आँखें डालकर विनोद पूर्वक पूछा, "बस, इसी दम पर ? देखो, मैं सम्बन्ध बताता हूँ, सुनो।"

"हूँ···उ···ऊँ। सुनाओ।" लालसा के रुँधे हुए गले से आवाज़ काँप रही थी, वह थरथरा रही थी।

"चूँकि तुम्हारी बड़ी बहिन और मेरे बड़े भाई साहब आपस में कुछ घनिष्ठ सम्बन्धी हैं। और······भाभी अर्थात् तुम्हारी बड़ी बहिन से तुम छोटी हो, भैया से मैं छोटा हूँ। इसलिए गणित की दृष्टि से हम दोनों भी अवश्य वही कुछ घनिष्ठ सम्बन्धी हैं। स्वयं सिद्ध है, इसमें रूठना कैसा ?"

इस तर्कपूर्ण विचित्र सम्बन्ध को सुनते ही लालसा लज्जा से लाल होकर हँसती-हँसती लोटपोट हो गई। पीथल भी ठहाका मारकर हँस पड़ा।

हँसते-हँसते पीथल पीथल न रहा, लालसा लालसा न रही। किन्तु फिर भी दोनों अभी तक मजाक को मजाक ही समझते रहे। उसकी गहराई को नहीं सोच रहे थे। उन्हें मज़ाक और हँसी से मतलब था। सहसा लालसा की सहज शरारती अँगड़ाइयों से उसका आँचल खिसक गया और उसके उछलते हुए दोनों रक्ताभ वक्षों पर पीथल की दृष्टि पड़ी। वह फिसलकर वहीं कहीं छवि-संधि में खो गया। लालसा भी जान-बूझकर अनजान बनी रही। अपना खिसका हुआ आँचल उठाया नहीं, बल्कि कुछ और अधिक सरक जाने दिया।

मानो पंछी ने पंख फैला दिए। पीथल की आँखें सौंदर्य की मदिरा पीती गई। उसे लगा जैसे वह उसके मसृण कोमल पंखों पर हाथ फेर रहा है। मादक शीतलता से उसकी आँखें सहज मुँद गईं। वह मन-ही-मन मनुहार करने लगा, "पंछी ! तनिक अपना रहस्य खोल दे, मैं तनिक अपना रहस्य

तुम्हारे रहस्य से मिला लूँ, तुम्हारे शीतल मलयकोष में अपना भड़कता हुआ ज्वालामुखी शान्त कर लूँ। कुछ ले लूँ, कुछ दे लूँ।"

इतने ही में उसकी कल्पना ने करवट ली। नेत्र ऊपर उठे। लालसा के नेत्रों से सहज मिले। फिर झुके। फिर उठे और फिर···अचानक उसे खुरशीद के उतावले प्रेम, आलिंगन और गर्म-गर्म चुम्बनों की याद आ गई। वह अधीर, चंचल और बेचैन हो उठा।

उसके मन पर धीरे-धीरे नशा-सा छाने लगा। उसने न जाने क्यों लालसा को अपनी दोनों बलिष्ठ भुजाओं में मसल डालना चाहा। शायद मुस्कराते फूल को मसल डालने में ही उसकी सार्थकता है। उसके तन-मन काँप उठे, जैसे बिजली छू गई हो। लालसा की भी वही दशा थी। जी में आया कि वह दौड़कर पीथल की छाती से सट जाय और अपने खौलते खून को ठंडा कर ले। अपनी उस आग को बुझा ले, जो न जाने कब से पीथल को पाने के लिए धधक रही है। दोनों खोये-खोये से खड़े थे। बीच में एक विचित्र रहस्य का परदा था जिसे न देखकर भी वे देखते रहे। शायद लाज का परदा इसे ही कहते हैं।

सहसा दासी ने निवेदन किया, "शृंगार-सामग्री तैयार है।" लालसा ने मुस्कराकर अपना मणि-माल उतारा और दासी के कंठ में डाल दिया। आज उसका तन-मन आनन्द में नाच रहा था, वह आज अपना सब-कुछ लुटा देना चाहती थी। प्यार परमात्मा है। उसका भार जड़ शरीर नहीं सह पाता। उसके आते ही अंग-अंग से दान और समर्पण फूट-फूटकर बह निकलता है। उसने दासी से कहा, "चलो, हला, मैं अभी आती हूँ।"

दूसरी ओर पीथल लालसा को भूखी निगाहों से देखता ही जा रहा था—एक टक। लालसा इसके लिए अभ्यस्त न थी। वह बोल पड़ी, "ऐं? पीथल! ऐसे कैसे देख रहो हो? वहाँ जाकर यह कैसी बीमारी अपनी आँखों में भर लाए हो?"

इससे पीथल की तन्द्रा टूटी। सहसा उसे खुरशीद की सारी घटना याद आ गई। उसने एक लम्बी साँस ली और मन का नशा उतर गया।

अब उसे अपनी मूर्खता का भान हुआ। अचकचाकर पूछा, "भाभी किधर है ?" उसकी आवाज काँप रही थी। लालसा को बड़ा अजीब-सा लग रहा था। वह सोच रही थी—पीथल की दृष्टि पहले कितनी निर्विकार थी। वह पीथल से कुछ बोल न सकी। मुँह पर ताला-सा लग गया था। उसने सामने के कक्ष की ओर इशारा कर दिया। पीथल चुपचाप उधर बढ़ा। उसके पैर अभी तक काँप रहे थे। बड़ी कठिनाई से मन पर काबू पाया। वह सोच रहा था—धोखा हो गया। तब तक वह सामने के उस कक्ष में पहुँच गया था। दासी ने कब अभिवादन किया, कब कक्ष खोला, कब बाहर निकल गई, इन बातों का उसे कुछ भी ध्यान न रहा।

उसने देखा, सामने रेशमी पीले परदे की आड़ में एक दुग्ध-धवल सुकोमल शय्या फूलों से लदी-फदी बिछी है। जिसके बीच चमचमाते हुए राजसी रत्नाभरणों में जगमगाती कोई सुकुमार दूधिया काया गहरी नींद में निमग्न पड़ी है। नीलाम्बर शाल से सुडौल गर्दन और सुकुमार स्कंध ढका हुआ है। चिकनी-चिकनी सुगंधित केश-राशि कमर तक लहरा रही है। मुख झरोखे की ओर दूसरी दिशा में है। केवल मुस्कराते हुए चाँद-जैसा आर-पार झलकने वाला उसका चम्पई रंग का चिपका कपोल छहरे हुए केशों के बीच दिखाई दे रहा है, मानो श्याम मेघों के बीच चम्पई बिजली मुस्करा रही हो।

वह अनुमान नहीं लगा सका कि भाभी है या कोई अन्य। किन्तु उनके कक्ष में दूसरी कोई रमणी हो ही कैसे सकती है ? वह आश्वस्त हो गया। उसने सोचा—भाभी जब मुझे सहसा इस समय यहाँ देखेंगी तो आनन्द से चकित रह जाएँगी। फिर उसे विनोद और शरारत सूझी। झट अपनी धोती के एक कोने को ऐंठकर उसके इधर वाले कान में घुमा दिया तथा स्वयं पलंग के नीचे छिप गया। रमणी कान खुजलाती हुई हड़बड़ाकर उठी और चारों ओर देखने लगी। वहाँ उसे कोई दिखाई नहीं दिया। तब पीथल पलंग के नीचे से चिढ़ाते हुए बोला, "कुक्कू" और जोर से हँसता हुआ सामने निकल आया।

किन्तु, अरे! यह क्या? हँसते-हँसते ही उसका मुँह सहसा फक् हो गया।···पसीने छूट गये। वह बुरी तरह काँपने लगा। वह भाभी न थी। कोई अन्य अनिंद्य सुन्दरी थी, जिसे उसने पहले कभी देखा न था। लेकिन फिर भी उसे लगा मानो वह उसे जन्म-जन्मान्तरों से जानता हो। उसका दिल धड़ककर रह गया। यह वही मूर्ति थी जिसका चित्र उसने उतारा था। जिसे अपने मधुरतम स्वप्न में पाया था और जिसके लिए पागल-सा हो गया था। वह अपने भाग्य को सराहकर सहम गया। भला, इतना कौन भाग्य-शाली है, जिसकी ज़िन्दगी का सबसे मीठा सपना सचमुच उसके सामने साकार होकर खड़ा हो गया हो? वह खो-सा गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि अब कैसे अपनी गलती पर क्षमा माँगे। किन स्वरों में, किन शब्दों में एक ऐसी सुन्दर क्षमा-याचना करे कि वह सुन्दरी अपनी नाराज़गी को भूल जाए।

दोनों एक-दूसरे को अवाक् और आश्चर्य सहित देखने लगे। विचित्र घटना हो गई थी। ऐसी घटना उसने न तो कहीं देखी थी और न सुनी थी। दूसरी ओर रमणी का और भी बुरा हाल था। वह सोच नहीं पाती थी कि सुबह-सुबह यह क्या हो गया? यह कौन है? आदमी तो अनजाना है, लेकिन लगता है जैसे वह उसे जन्म-जन्मान्तरों से जानती है। पता नहीं, सत्य है या स्वप्न है? उसे बड़ी मीठी-मीठी-सी बड़ी खीझ आई, किन्तु पीथल के स्वस्थ और निर्विकार मुख को लज्जा और भय से सफेद होते देखकर मुस्करा उठी। वह भाँप गई कि उन्हें धोखा हुआ है।

तब तक पीथल ने अत्यन्त विनीत और काँपते हुए स्वरों में कहा, "मुझे क्षमा कर दीजिये! धोखा हो गया। मैंने समझा, भाभी सो रही हैं।" पीथल ने इतना कहा ही था कि द्वार की ओर से आवाज़ आई, "नहीं चम्पा! इन्हें क्षमा मत करना। यह भी कैसी सभ्य शरारत है कि चाहे जिस लड़की को छेड़ लो और फिर धोखे के बहाने क्षमा माँगकर सुसभ्य बन जाओ। वाह, भई, वाह!" यह आवाज़ भाभी की थी। तीनों हँस पड़े। पीछे पीथल ने भाभी से पुनः कहा, "सच भाभी! धोखा हो गया। मैंने

समझा तुम सो रही हो। लालसा से पूछ लो, उसी ने बताया था।"

"हाँ, देवरजी ! सफाई देना तुम्हें खूब आता है। गवाही पहले से ही तैयार रखते हो। लेकिन बिना पूछे ही यह सफाई और गवाही क्यों दे रहे हो ? बोलो, मजाक कैसा उल्टा पड़ा ? मैं तो बराबर वाले कक्ष में थी। तुम्हारी सुपरिचित 'कुक्कू' की आवाज़ सुनकर दौड़ी आई कि तुमने ज़रूर कहीं धोखा खाया है। अच्छा, बोलो, कब तक धोखा खाते रहोगे ?"

"भाभी ! अधिक लज्जित मत करो।" पीथल ने खेदपूर्वक कहा। भाभी और चम्पा दोनों ही पीथल के भोलेपन पर खिलखिलाकर हँस पड़ीं। पीछे पीथल ने परिचय पूछा। प्यार भी क्या बुरी चीज़ है कि पानी पीकर पीछे जाति पूछता है। परिचय होते ही चम्पा ने एक चम्पा का फूल पीथल के हाथों में दे दिया और बोली, "हमारा परिचय हमेशा इसी फूल की तरह खुश और खुशबूदार रहे।" पीथल उसके शिष्टाचार पर मुग्ध हो गया। अब एक चम्पा का फूल उसके हाथों में था और एक चम्पा का फूल उसके सामने मुस्करा रहा था। दोनों की खुशबू से उसका दिमाग तर हो गया। परन्तु यह क्या ? हाथ का फूल हाथ से छूट गया। सामने का फूल उसकी साँस-साँस में समा गया। देखता क्या है कि सामने एक ऐसी सुन्दरता और सौम्यता की मूर्ति खड़ी है जो उसकी कल्पना से परे थी।

अंग-अंग से फूटती हुई भीनी-भीनी चम्पई सुगन्ध। चम्पा की पंखुड़ी की तरह ही चिकनी, सुन्दर, सुकुमार और शीशे की तरह सस्मित। उसके हँसने में चम्पा के फूल···और गालों के फूल ऐसे मानो चम्पा की कली में लाल गुलाब की पँखुड़ियाँ खिल आई हों। और यौवन ? ···क्या कहें ?··· उरोजों के उभार से फटती हुई वह लाल कंचुकी है या धधकती हुई आग, जिसमें भड़कता यौवन बन्धन तोड़कर भाग जाना चाहता है उस पार··· उस पार जहाँ सुन्दरता सुर्ख होकर नग्न पड़ी है···आह ! उसके उरोजों के बीच ऊपर की ओर बस इतना ही सा स्थान रिक्त रह गया है कि एक भाग्यशाली फूल खड़ा रखा जा सके।

भूमि तक लहराते हुए चिकने काले केश, मानो असंख्य नागिनें फन

फैलाए खड़ी हों। कान्ति और दीप्ति की जगमगाती सजीव प्रतिमा है। अधखुले मृदुल अंगों से वरबस रस बरस रहा है। फूल-जैसी कलाई में खिली हुई पाँचों अँगुलियाँ क्या हैं, मानो कामदेव के पाँचों बाण। सहसा एक बिजली-सी कौंध गई। वह रंगीन कल्पनाओं में उड़ने लगा। वह रूप का उपासक था। कवि था। कलाकार था। सोचने लगा—इस रमणी का भी तो किसी से विवाह होगा और विवाह तो मुझे भी···। तो···क्या ?··· और लालसा ? उसका रूप कितना मादक है।

अजीब नशा-सा चढ़ जाता है मुझ पर। मैं आत्म-विस्मृत हो जाता हूँ। वाणी बन्द हो जाती है। मुँह पर ताला लग जाता है। कितनी चुल-बुली, सहज और भावुक है वह ! और चम्पा ! तुम कितनी आकर्षक हो : कह नहीं सकता। केवल इतना जानता हूँ कि तुम्हारे रूप में एक अजीब चुम्बक है, जिसके सम्मुख मैं ठहर नहीं पाता। स्वयं खिंचकर चला आता हूँ। तुम सरल, सौम्य और दिव्य हो। तुम्हारा मौन आमन्त्रण कितना मुखर है ! तुम्हारे यौवन में कितनी ललकार है ! भला, कौन बच सकता है तुमसे ?

खूबसूरती भी अजीब चीज है, भले आदमियों की भी नीयत बिगड़ जाती है। पीथल इसका अपवाद नहीं बन सका। वह जवान था। जवानी के पंख बड़े रँगीले होते हैं। वह बड़ी तेज उड़ती है। उसे किसी को चीन्हने या पहचानने की परवाह नहीं होती। शराबी कुछ सोच सकता है, लेकिन जवानी कुछ भी नहीं सोच सकती। वह तो रस-भरी सुराही है। उसे ढुल-कना है और ढुलकती है—केवल पात्र चाहिए, जिसे वह अपनी आँखों के लुभावनेपन की कसौटी पर ही परखती है। यदि कहीं जवानी में सुन्दरता और भावुकता के साथ भोलापन भी मिल गया तो उस पंछी का ईश्वर ही मालिक है।

पीथल ऐसा ही भोला पंछी था। रूप और रस का उपासक था। उसने कविताओं में पढ़ा था कि चम्पा के फूल पर जाकर भँवरा जीवित नहीं लौट पाता। रस और मधु का पान करते-करते आनन्द के अतिरेक में वहीं मर

जाता है। उस सुन्दरी का नाम भी तो चम्पा ही था। पीथल इस प्रसंग में अपने को भँवरे के समान समझकर कल्पना के आनन्द में डूब गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—कितना मधुर होगा वह क्षण !

थोड़ी देर में महल के अन्तःपुर का छत सज गया और लालसा ने पीथल को वहाँ जलपान के लिए बुला लिया। उस समय भाभी छत के पूर्वी भाग की ओर स्नान के पश्चात् केश सुखा रही थी और उनसे भी पूरब की ओर वाले छज्जे पर चम्पा केश सुखा रही थी। पीथल की दृष्टि कुछ देर तक उधर ही रही। सहसा लालसा के अंगों से उड़ती हुई खुशबू उसकी साँसों को छू गई। रूप की शराब आँखों में चढ़ने लगी और वासना का ज़हर उसकी नस-नस को तानने लगा। मादकता के बोझ से आँखें दब गईं।

वह खोया-खोया-सा दिखाई दे रहा था। लालसा को यह उदासी अच्छी नहीं लगी। उसने कहा, "यहाँ आते ही किस चिन्ता में पड़ गए ?" पीथल कुछ बोला नहीं, मुस्कराकर रह गया। लालसा समझ गई कि पीथल कुछ छिपा रहा है। कोई-न-कोई बात अवश्य है। उसने विनोद करते हुए पूछा, "बुलाऊँ तुम्हारी भाभी को ? वही तुम्हारी खबर लेना जानती हैं।" पीथल ने भी इस विनोद में साथ दिया, "बुलाती तो हो नहीं। बस, बात-ही-बात करती हो।" लालसा हँस पड़ी। उसका संकेत पाते ही दासी भाभी को बुलाने चल पड़ी।

पीथल ने दासी को रोकते हुए कहा, "यह भी कैसा बनावटी जीवन है। हर बात में दासी को ही कष्ट दिया जाता है। लो, देखो, मैं भाभी को कैसे बुलाता हूँ।" कहते-कहते खड़ा हो गया और जोर से 'कुक्कू' की आवाज़ दी। सुनते ही दूर खड़ी भाभी और चम्पा दोनों हँस पड़ीं और इधर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगीं। भाभी देवर की इस चंचलता पर पुलकित हो रही थीं। इतने ही में पीथल ने अपने हाथों के इशारे से उन्हें बुलाया, किन्तु तब तक वह अपने केशों को फटकारने में लग गईं। उन्होंने संकेत नहीं देखा।

दूसरी ओर चम्पा अभी देख रही थी। उसने पीथल के इशारे को अपने लिए समझा। 'कुक्कू' की ध्वनि उसके कानों में गूँजने लगी। सुबह वाली सारी घटना ताज़ी हो गई। वह विचारी सिहर गई, मानो किसी ने उसके भावों को चूमकर यौवन की खिलती कली को सहला दिया हो। उसने शरमाते हुए अपने हाथों को हिलाकर 'नहीं' का इशारा कर दिया और लज्जा के मारे दूसरी ओर झाँकने लगी। पीथल ने यह तमाशा देखकर अपने सिर को दोनों हाथों से पीट लिया।

लालसा उसके पीछे ही खड़ी थी। खिलखिलाकर हँस पड़ी। "फिर धोखा हो गया।" कहते हुए पीथल ने अँगड़ाई ली और उसके उठे हाथों से पीछे की ओर लालसा का सुकोमल वक्ष छू गया। उस विचारी का तन-मन गनगना उठा। वह बोली, "कितनी बार धोखा हुआ तुम्हें? आगे धोखा, पीछे धोखा, हर जगह, हर समय धोखा ही धोखा।"

पीथल अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। उसकी आँखें मुँद गईं। उसके कानों में भाभी के वे शब्द गूँजने लगे, "तुमने ज़रूर धोखा खाया है। अच्छा बोलो, कब तक धोखा खाते रहोगे?" पीथल ने भयभीत होकर आँखें खोल दीं, किन्तु वहाँ भाभी न थीं। चम्पा अभी तक लज्जा से लाल होकर दूसरी ओर झाँक रही थी और लालसा स्पर्श के आनन्द में खड़ी-खड़ी मन-ही-मन मुस्करा रही थी। पर क्यों?...और पीथल? वह तो लाज के मारे वहीं ढेर हो गया। रुक नहीं सका। तेज़ी से नीचे जाकर अपने कमरे में लेट गया।

दूसरी ओर लालसा का बुरा हाल था। पर क्यों? वह नहीं जान सकी। वह तो केवल इतना जानती थी कि मज़ाक इसी तरह किया जाता है। किन्तु, एक विचित्र बात आज हो गई थी। दिल में भारी कुतूहल था। प्रश्न पर प्रश्न उठते जा रहे थे। खास प्रश्न यह था, "आज पीथल के स्पर्श से इतना आनन्द और इतनी मादकता क्यों आ गई? लड़कियों से तो ऐसा स्पर्श कई बार हुआ है, किन्तु कभी ऐसा आनन्द नहीं आया।" वह हँसते-हँसते प्रश्न की गहराई में डूब गई।

तब तक चम्पा ने आकर लालसा को झकझोर दिया और व्यंग कर बैठी, "क्यों ? यह बात है ? अब जल्दी से मिठाई खिलाओ।" लालसा कुछ देर तो लाज के मारे बोल न सकी। किसी तरह मुँह से शब्द निकले, "देखो, यह है पीथल। मैं कहती थी न कि उसके आते ही बस मजा आ जायगा।" चम्पा मुँह बिचकाकर बोली, "अय हाय ! मजा आ जायगा। काला-सा तो है।"

लालसा—वैसे काले तो भगवान् राम भी थे और कृष्ण भी। लेकिन अभी तुमने उसकी खूबसूरती देखी कहाँ है ? जरा दिल की आँख से तो देख। "मन-ही-मन भावे, ऊपर-ऊपर मूँड हिलावै।" है न यही बात ?

चम्पा—बड़ा शरारती है। ऊपर-ऊपर सभ्य बनता है।

लालसा—तुम्हारे सारे चित्र तो उसी ने बनाए हैं। कहता है, मेरी सरस्वती के चित्र हैं। देखो, कितना नालायक है ?

चम्पा—अच्छा ! यही है वह पीथल। वैसे मुझे जाना-पहचाना-सा लगता है।

लालसा—और उसने बिना जाने-पहचाने तुम्हारा चित्र कैसे उतार दिया ?

चम्पा—कुछ समझ में नहीं आता।

लालसा—जीजी तो कह रही थी कि पिछले जन्म में चम्पा और पीथल बड़े घनिष्ठ सम्बन्धी रहे होंगे।

चम्पा—हाँ जी। मियाँ-बीवी रहे होंगे।

दोनों हँस पड़ीं। लालसा ने कहा, "अभी कहती हूँ पीथल से कि तुम मियाँ हो और चम्पा तुम्हारी बीवी…"

चम्पा ने झट लालसा के मुँह पर हाथ रख दिया, "हाय ! ऐसा न कहना।" वह फिर लज्जा के मारे लाल हो गई। मानो कह रही थी, "बड़े अच्छे हैं वे।" मन-ही-मन मना रही थी, "मेरे देवता ! अब दिल में आ गए हो। मुझसे कभी रूठना मत।"

वैसे लालसा चम्पा से साल-भर बड़ी थी। शिक्षा-दीक्षा में भी बढ़ी-

चढ़ी थी। लेकिन थी बड़ी भोली और अनजान। चम्पा छोटी होते हुए भी संसार की बातें जानती थी। वह समझ गई थी कि लालसा कोरी है। वह प्यार का अर्थ नहीं समझती। नारी की स्वाभाविक लाज उसमें है। इससे आगे वह कुछ नहीं जानती थी कि वह पीथल से प्यार भी कर रही है या नहीं। उसे तो बस पीथल अच्छा लगता है, क्योंकि वह खूब हँसता है। शरारतें करता है। चित्र बनाता है। कविता करता है। कभी-कभी गम्भीर भी हो जाता है। बस।

दशम परिच्छेद

दूसरे दिन पीथल विनोद-कुंज में प्रभाती गा रहा था। प्रातः का समय खिले हुए फूलों से मुस्कराती कुंज-वीथिका, चहचहाते पंछी और उड़ती हुई तितलियाँ संगीत-सागर में तैरते हुए प्रतीत होते थे। कंठ इतना सुरीला था कि चम्पा अपने को न रोक सकी और कुंज के एक कोने में खड़ी होकर सुनने लगी। संगीत के लय पर उसके अंग-अंग फड़कने लगे। आत्मा आह्लाद से भर गई। सचमुच संगीत आत्मा का मधुमय भोजन है। इतने ही में पीछे से चम्पा के कन्धों पर किसी ने हाथ रख दिया। वह चौंकी और हँस पड़ी। वह पीथल की भाभी गंगादे थीं। सर्वदा मुस्कराते रहना और हँसी-मज़ाक के लिए अपने मन का खज़ाना खोले रखना उनका स्वाभाव था। उन्होंने कटाक्ष के साथ हँसते हुए पूछा —

"क्या हो रहा है चम्पा ?"

"कुछ नहीं जीजी, यहाँ काँटा उलझ गया है। इसलिए खड़ी हो गई थी।"

"ओह, तो यह बात है। रगड़ दो, निकल जायगा।"

"नहीं निकलता।" चम्पा ने साड़ी को हाथों से रगड़ते हुए कहा।

"तो झाड़ दो, निकल जायगा।"

"कहाँ निकलता है, देखो न ?" कहते हुए चम्पा ने अपनी साड़ी को खूब ज़ोरों से झाड़ दिया।

"हूँ, तो काँटा उलझा नहीं है, गहरा चुभ गया है। खैर, कोई बात नहीं। खाँस दो, जोर से खाँस दो, निकल जायगा।"

चम्पा ने ज़ोर-ज़ोर से खाँसना शुरू किया और बड़ी देर तक खाँसने का अभिनय करती रही।

"बस, रहने दो। कितना खाँसती हो। अब तो निकल गया होगा।"

"नहीं जिज्जी, इससे तो और अन्दर तक चुभ गया। अब क्या करूँ?"

चम्पा की नाटकीयतापूर्ण बातें सुनकर गंगादे ने उसके पीठ पर प्यार से हाथ थपथपाया और हँसकर बोलीं, "मेरी छोटी जिज्जी रानी! अब इस काँटे को मत निकालो। इसे अब प्यार पिलाकर अपनी आत्मा से एक कर लो। इतना एक कर लो कि यह काँटा और तुम्हारी आत्मा दो न रहजाएँ।"

चम्पा इस गम्भीर मजाक को सुनकर लाल हो गई, फिर सहसा दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं। इस खिलखिलाहट से पीथल की तन्मयता भंग हुई। वह गाना बन्द करके वहाँ पहुँचा और हँस कर पूछा, "यह सुबह-सुबह क्या झगड़ा है?"

गंगादे—कुछ नहीं, चम्पा को काँटा चुभ गया था।

पीथल—और...काँटा चुभने से हँसी आती है? क्यों?

चम्पा—हाँ, वह काँटा ही ऐसा है।

पीथल—क्या कहें, भगवान भी बड़ा पक्षपाती है। ऐसा काँटा मुझे भी...।

चम्पा—श्रीमान्! काँटे को काँटा क्या चुभेगा?

चम्पा की यह बात सुनते ही गंगादे का अट्टहास नहीं रुक सका। पीथल और चम्पा भी हँस पड़े।

"सच भाभी!" पीथल ने भाभी से पूछा।

"हाँ, भई तुम दूर-दूर ही रहो। काँटो का दूर रहना ही अच्छा है।"

"काँटा क्यों दूर रहे? जिसे चुभने का भय हो, वह दूर रहे।"

"नहीं पगले! काँटों को भी दूर रहना चाहिए। याद रख, काँटों को काँटे तो नहीं चुभते लेकिन उन्हें चम्पा जैसे सुकोमल फूल बड़ी जल्दी चुभ जाते हैं।" गंगादे ने पीथल की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा। तीनों फिर हँस पड़े। अब पीथल को शरारत सूझी और नाटकीय ढंग से चम्पा के पास जाकर खड़ा हो गया तथा अपनी भाभी से पूछा—

"भाभी! मुझे तो फूल नहीं चुभ रहा। या तो मैं काँटा नहीं या यह

फूल······" अभी इतना ही कह पाया था कि चम्पा चौंककर डर के मारे 'उई' कहती हुई पीथल की छाती से चिपक गई। सामने साँप फन फैलाए खड़ा था। गंगादे भी डर गई और पीथल को उसकी ओर संकेत किया। भाग्यवश चम्पा का स्पर्श पाकर पीथल उसे जल्दी तो नहीं छोड़ना चाहता था किन्तु मर्यादा का ध्यान रखकर बड़े प्यार से उसने चम्पा को छुड़ाया और अपने कमर में लटकती हुई तलवार को नंगी करके सर्प की ओर बढ़ा। जब तक वह सर्प पर चोट करे तब तक सर्प भाग गया। चम्पा बहुत डर गई थी। अभी उसका बचपन हाल ही में बीता था। किशोरी थी। सहसा डर जाना स्वाभाविक ही था।

पीथल उसे लेकर उसके कक्ष तक पहुँचाने गया। जब वह वहाँ से लौटने लगा तो चम्पा ने अत्यन्त मन्द स्वर में कहा—

"मुझे भी संगीत सिखा दीजिए न!"

पीथल—अरे! आप संगीत नहीं जानतीं? राजस्थान की तो हर राजकुमारी शस्त्र, शास्त्र और संगीत तीनों में कुशल होती है।

चम्पा—"········"

पीथल—आपने क्यों नहीं सीखा अब तक? कुछ कहती तो हैं नहीं आप।

चम्पा—"········"

पीथल—भला इस तरह मौन साधने से कैसे काम चलेगा?

चम्पा—देखिये, आप मुझे तुम कहिये, आप नहीं।

पीथल—क्यों? आप कहने से सम्मान कम होता है या दूरी अधिक बढ़ जाती है?

चम्पा—देखिये, मैं नारी हूँ। खुलना मेरा स्वभाव नहीं है। आप अपनी ओर से कुछ भी अर्थ लगा सकते हैं।

पीथल चक्कर में पड़ गया। आज पहली बार उसे नारी-मन को पढ़ने के लिए प्रेरणा मिली। चम्पा ज्यों-ज्यों मौन होती गई, रहस्य बनती गई। और पीथल के बोलने की सीमा ही नहीं रही। न जाने क्या-क्या कहता चला गया। बेतुकी बातें, उलट-सुलट, अपने सम्बन्ध की निरर्थक घटनाएँ

और न जाने क्या-क्या। दूसरों के लिए उसकी सारी निरर्थक बातें, निरर्थक चेष्टाएँ बड़ी ही सार्थक थीं। वह बड़ी बारीकी से उसके हर रंग को पढ़ रही थी। तब तक पीथल ने पूछा—

"तो अब सीखने की इच्छा क्यों हो रही है?"

चम्पा—मैं···मैं···किन्तु···किन्तु···मैं कुछ नहीं जानती। न जाने क्यों अब सब कुछ जानने की प्रेरणा तुम्हीं से मिल रही है।

पीथल—फिर तो कोई रहस्य है।

चम्पा का मुँह उतर गया। वह चुप हो गई। फिर पीथल की ओर कातर भाव से देखती हुई बोली, "पीथल! न जाने क्यों तुममें इतना विश्वास पा रही हूँ कि कुछ छिपाना नहीं चाहती। तुम तो कलाकार हो। पूर्ण मानव हो। तुमसे अनिष्ट की आशंका नहीं है। पीथल! जैसा तुम मुझे बाहर से देख रहे हो, वैसी अन्दर से नहीं हूँ। मैं बड़ी अभागिन हूँ। जन्म के बाद माँ का साया उठ गया। कुछ समझदार हुई तो पिता से घृणा हो गई। मेरे पिता अपने ही भाई राणा प्रताप और मातृ-भूमि मेवाड़ को मिट्टी में मिला देने के लिए मन्सूबे बाँध रहे हैं। अकबर से मिलकर मेरे प्यारे देश को उजाड़ देना चाहते हैं। और उस शत्रु को मित्र बनाने के लिए शायद···मुझे ···मुझे···मुझे उसके पैरों में डाल देना चाहते हैं।

"तुम्हीं सोचो, पीथल! मेरा क्या अस्तित्व है। मैं बिना मुँह की गाय के समान एक निरीह नारी हूँ। चाहे वे किसी कसाई के हाथ दे दें या चाहे किसी भी खूँटे से बाँध दें; मैं कुछ कह नहीं सकती। कितना अच्छा होता यदि मैं किसी निर्जन वन की एक अचेतन कली होती, तब तो अकबर के उस मवेशी खाने में मैं नहीं बाँधी जाती जिसमें हजारों मेरी ही जैसी स्त्रियाँ बाँध दी गई हैं।" कहते-कहते चम्पा की हिरणी सरीखी आँखें आँसुओं से भर गई। पीथल का हाथ फड़ककर उसकी तलवार तक आ गया।

चम्पा कुछ आश्वस्त हुई। संयत हुई और बोली, "पीथल! तुम आश्वासन क्यों देते हो? तुम भी तो इसी निर्दय युग के एक पुरुष हो। अकबर ही ऐसा हो, ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे राजपूत राजाओं का तो और भी

बुरा हाल है। हर महल निरीह नारियों की चीख पर मुस्करा रहा है। प्रत्येक राजा अधिक से अधिक स्त्रियों को अपने महल में रोटी देकर उन पर पशुवत् अत्याचार करना अपना बड़प्पन समझता है। मुझसे तो पशु भी अच्छे हैं पीथल! वे अपने हत्यारे को रिझाने के लिए नाचते तो नहीं। किन्तु यहाँ तो कुरूप को रिझाने के लिए रूप को नाचना पड़ेगा। पशु को प्रसन्न करने के लिए सरस्वती को संगीत अलापना पड़ेगा। फिर भी तुम मुझसे पूछते हो कि मैंने क्यों नहीं संगीत सीखा? क्यों नहीं शस्त्र-शास्त्र की शिक्षा ली? यह सब कुछ सीखकर क्या होगा? सुबह का संयोग न पाने वाली काली रात में दीप जलकर क्या होगा?

"पीथल! ···किन्तु···किन्तु···आज न जाने क्या हो रहा है। अब मैं सब कुछ सीखना चाहती हूँ। कौन जाने, डूबने पर ही कहीं किनारा मिल जाय।"

पीथल के हृदय पर चम्पा के ये शब्द पत्थर की लकीर की तरह खिंच गए। वह करुणा की चोट से संवेदित होकर बोला, "देवी! आपको मेरा प्राण अर्पण है। मुझे आज्ञा दें। मैं आपकी सेवा कैसे कर सकता हूँ?" चम्पा व्यंग के साथ मुस्कराकर बोली, "पहली सेवा तो यह है कि मुझे संगीत, शास्त्र और शस्त्र का ज्ञान करा दो। दूसरी सेवा के लिए वचन दो। मैं जब जो कुछ चाहूँगी, माँग लूंगी।" पीथल बड़ा प्रसन्न हुआ जैसे मुँह-माँगा वरदान मिल गया हो। रूप के रसिक को रूपसी की हर आज्ञा में अपनी मनोकामना पूर्ण होती हुई ही दिखाई देती है। आँखों ही आँखों में मुस्करा कर कहा, "आपके दोनों वरदानों से मैं कृतार्थ हुआ।" दोनों हँस पड़े। उदासी की रेखा फट गई। यह बात दूसरी है कि दोनों के हँसने का आधार एक न था।

एकादश परिच्छेद

"जीजी! पीथल ऐसा क्यों देखता है?"

"क्या मतलब ?"

"यूँ ही। कैसा अजीब-अजीब-सा देखता है। उसकी निगाहों में न जाने कैसी अजीव तीक्ष्णता आ गई है। पहले वाली वह चिकनाई, वह प्यारापन उसकी आँखों में नहीं है।"

"क्या अजीब ? कैसी तीक्ष्णता ?? कैसी चिकनाई ??? क्या पहेली बुझा रही हो तुम ?"

"तुम्हें नहीं दिखाई देता ?...और मैं कुछ समझती तो तुमसे पूछती ही क्यों ?"

"देखो लालसा ! यह छोटी बात नहीं है। तुम बहुत बड़ी बात पूछ रही हो। साफ-साफ बताओ। बात क्या है ?"

गंगादे यह पूछने में तो पूछ बैठीं किन्तु स्वयं तिलमिला गई। उन्होंने भी अच्छी तरह देखा था कि पीथल की निगाहों की वह सहज सरसता, भोली जिज्ञासा और पवित्रता की दूधियारी चमक नहीं है। वहाँ एक विचित्र कृत्रिमता और टेढ़ी तीक्ष्णता ने घर कर लिया है। मनुष्य सब कुछ छिपा सकता है किन्तु हृदय का प्रतिबिम्ब जो नेत्रों में रहता है उसे धूमिल कर देने की शक्ति किसी में भी नहीं है।

गंगादे का विस्तृत अनुभव इस सच्चाई को पहचानता था। और वह मन में प्रश्नवाचक चिह्न बनकर बैठ गया था। किन्तु वह पीथल से कुछ पूछना नहीं चाहती थीं। उनका ख्याल था कि पीथल जब स्वतः कुछ बताना नहीं चाहता, छिपा रहा है, तब अपनी ओर से क्यों पूछा जाय।

किन्तु, जब लालसा ने इस प्रश्न को उठाया तो गंगादे को अँधेरे में कोई सूत्र मिलता-सा दिखाई दिया। इसीलिए उन्होंने उससे साफ-साफ बात कहने को कहा। परन्तु लालसा क्या बताती! वह बार-बार यही दुहराती रही कि बस, अजीब-सा लगता है उसका देखना। पहले वह इस तरह नहीं देखता था।

तारीफ की बात तो यह थी लालसा यह भी नहीं जानती थी कि उसके इस प्रश्न का उत्तर कोई गंभीर तत्त्व होगा। उसे तो बच्चों की तरह एक कुतूहल मात्र था। वह समझती थी कि पीथल की आँखों में कोई बीमारी हो गई है या कहीं-न-कहीं उसके शरीर में कोई रोग है जिससे उसकी निगाहों का प्यारापन लुप्त हो गया है। आखिर में उसने अपनी जीजी से कह ही तो दिया, "जीजी! मेरा प्रश्न जरूर ही बड़ा है। पीथल की आँखों में या शरीर में कोई-न-कोई ऐसी बीमारी अवश्य लग गई है, जिससे उसकी निगाहों का वह प्यारापन चला गया है। तुम जरूर-से-जरूर उसका कोई इलाज कराओ।"

गंगादे लालसा की भोली बात सुनकर हँस पड़ी। अँधेरे में मिली हुई चमक भी लुप्त हो गई। वह भावों की गहराई में डूब-सी गई। लालसा उनको इस तरह चिन्ता में डूबती हुई देखकर एक समस्या में उलझ गई—यह क्या बात है? पीथल से भी जब मैंने यह प्रश्न किया था तो वह भी इसी तरह खो गया था, उसका दिमाग कहीं उलझ गया था। आज जीजी से पूछा तो वह भी न जाने किस दुनिया में चली गईं। उससे नहीं रहा गया। वह गंगादे का ध्यान तोड़ती हुई फिर बोली, "जीजी! जब मैंने यह प्रश्न पीथल से किया था, तब वह एक लम्बी-सी साँस भरकर न जाने किस दुनिया में खो-सा गया था और आज जब तुम से पूछा तो तुम भी न जाने कहाँ चली गईं। बाबा! अब हम नहीं पूछेंगे। तुम दुःख क्यों मानते हो?"

गंगादे के अधरों पर एक फीकी मुस्कराहट रेंग गई। उन्होंने लालसा के गालों पर हाथ फेरते हुए अपने पास बैठा लिया और बड़ी देर तक सहलाती रहीं। बड़ी देर तक हाथ फेरती रहीं···कभी उसकी पीठ पर,

कभी सिर पर, कभी कहीं, कभी कहीं। दूसरी ओर उनके मन में कई विचार फिर रहे थे। लालसा ने कहा, "जीजी ! उदास क्यों हो ? खोई-खोई-सी क्यों हो ? क्या मेरी बात से कुछ बुरा मान गई ?

गंगादे—नहीं रे ! तू तो निरी बच्ची है, पागल है।

लालसा—तो बात क्या है ? बताती क्यों नहीं।

गंगादे—छोड़ इस बात को ! बता, तुझसे एक बात पूछूँ ?

लालसा—पूछो, एक नहीं दो पूछो।

गंगादे—सच बता लालसा ! तू किसी का प्यार करती है ?

लालसा यह सुनते ही बड़े जोर से हँसी और हँसती-हँसती लोट-पोट हो गई। फिर बोली, "जीजी ! यह प्यार कौनसी नई बला है ? वह क्या होता है ? वैसे प्यार तो मैं अपने सबको करती हूँ। तुम्हें करती हूँ। पीथल को करती हूँ। पिताजी को···।"

इसी बीच गंगादे उठकर चली गई। वह जानती थीं कि लालसा अन-जाने ही पीथल को दिल की गहराई से प्यार करती है। उसे इसका भान तब होगा जब पीथल किसी दूसरे का हो जाएगा—शायद किसी दूसरे का आगरे जाकर हो भी गया है। उसकी आँखों के विकार इसके साक्षी हैं। किन्तु क्या पीथल किसी का हो सकता है ? उसे कोई छल भले ही ले, धोखे में फाँस भले ही ले, किन्तु वह चम्पा के अतिरिक्त अन्य किसी का हो नहीं सकता।

वह उसकी साँस-साँस, रोम-रोम और जन्म-जन्मान्तर की प्रिया है, जिसका चित्र उसने सहज ही, उसे बिना देखे ही, उतार दिया था। फिर लालसा का क्या होगा ? चाहे लालसा हो या कोई भी लड़की, उसकी आत्मा में चम्पा के अतिरिक्त कोई भी रम नहीं सकती। अगर पीथल के कच्चे दिल को कोई लड़की छलना में बहका लेती है तो क्षणभर के लिए बहका ले, स्थायित्व उसमें नहीं होगा।

फिर भी यह पीथल के लिए कम दुर्भाग्य की बात नहीं होगी। पता नहीं, आगरे में यह लड़का कैसे अपना दिल गँवा आया है ? कहीं उसकी

नजर की सादगी, पवित्रता और सौम्यता चुराने वाली वही नवाब के घर की लड़की तो नहीं है? क्या नाम उसका?···शायद खुरशीद। हाँ, सम्भव है। किन्तु, यहाँ आते ही वह किस अचानक मजाक में चम्पा के हाथ पड़ा है। वाह! खूब! प्रभु, तुम जन्म-जन्मान्तर के प्रेमियों को कितने आश्चर्य से मिलाते हो, कुछ कह नहीं सकती। क्या रहस्य है भविष्य का! गंगादे सोचते-सोचते सो गई और उनके सपनों में नाचने लगे चार चित्र···पीथल, चम्पा, लालसा और खुरशीद।

जब गंगादे सोकर उठीं तो भगवान भास्कर पश्चिम की ओर झुक रहे थे! आकाश में उलझे हुए बादल उनके स्वागत के लिए खड़े थे। बाहर की ओर पीथल और चम्पा तर्क-वितर्क में अपनी सारी बुद्धि खर्च कर रहे थे। गंगादे उनके बीच नहीं गई। दूर से ही दोनों के वार्तालाप का आनन्द लेना उन्हें अधिक प्रिय लगा। न जाने क्यों, तब गंगादे के अधरो पर मुस्कराहट रँग गई थी। वह सुन रही थीं—

पीथल—क्या प्रेम करना पाप है?

चम्पा—हाँ, अविहित प्रेम पाप से भी बढ़कर है।

पीथल—भूलती हो। प्रेम के लिए विहित या अविहित विशेषण नहीं लग सकता। सौन्दर्य-प्रेम प्राणी-मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे प्रेम को यदि तुम नियमों में बाँधती हो, तो समझ लो, यह मानवता की हत्या और प्राणी-मात्र के स्वाभाविक एवं जन्म-सिद्ध अधिकार का हनन होगा।

चम्पा—तात्पर्य यह है कि तुम स्वाभाविकता के नाम की ओट में, प्रेम का आखेट खेलकर, समाज को भ्रष्ट करना चाहते हो?

पीथल—प्रेम, प्रेम है राजकुमारी! आखेट नहीं। प्रेम ऊपर से नहीं किया जाता, अथवा विहित करके परवशता की शृंखला में आबद्ध सुन्दरी का बलपूर्वक सौन्दर्य लूटना भी प्रेम नहीं है; वह तो नीचता है, आकर्षण-मात्र है। प्रेम तो आकर्षण को स्थायित्व प्रदान करता है।

चम्पा—विहित प्रेम से मेरा अभिप्राय विवाह से है। उसे तुम नीचता कहते हो?

पीथल—निस्सन्देह! विवाह एक निष्कंटक वेश्यावृत्ति है। जो प्रेम से सर्वथा भिन्न है। यह क्यों भूल जाती हो कि प्रेम और विवाह दो भिन्न वस्तुएँ हैं।

चम्पा—फिर तुम्हारा प्रेम कौनसा जादू है?

पीथल—प्रेम एक जादू ही है, एक असीम आकर्षण है। और भी स्पष्ट सुनो, यह जीवन में केवल एक ही बार केवल एक के प्रति ही होता है, स्वार्थ की दुर्गन्ध से दूर।

चम्पा—तो फिर मृत्यु की अपेक्षा तुम मुझसे जीवन-दान माँग लो, जिससे तुम जीवन भर निःस्वार्थ प्रेम कर सको।

पीथल—याचना, नीचतापूर्ण साक्षात् मृत्यु है। यह तो मैं इन्द्रपुरी की राज्य-प्राप्ति के लिए भी नहीं करूँगा। प्रेम का मूल्य बलिदान है। जीवन-बलिदान मैं दे रहा हूँ।

चम्पा—ओह, तुम बड़े चतुर छलिया हो।

पीथल—(मुस्कराकर) तो पुरस्कार का चुम्बन दो।

चम्पा—चुम्बन माँगा नहीं जाता, लिया···! किन्तु रुको, तुम विवाह तो चाहते ही नहीं। केवल एकनिष्ठ प्रेम चाहते हो। फिर तुम्हें क्या अधिकार है कि एक नारी का सतीत्व लूटो?

पीथल—मूलतः तुमने अभी तक प्रेम का अर्थ ही नहीं समझा।

चम्पा—क्यों नहीं समझी? तुम्हारी व्याख्या के अनुसार ही प्रेम चाहे जितने स्थलों पर किया जा सकता है। आज तुमको चुम्बन लेने दूँ, कल किसी को, परसों किसी अन्य को? फिर तो प्रेम क्या हुआ, एक चने की बोरी हो गई? चाहे जिसे, जहाँ, जितना बाँटती फिरूँ?

पीथल—निस्सन्देह राजकुमारी! प्रेम एक चने की बोरी है; किन्तु ध्यान रहे, उस बोरी में एक ही चना है। वही तुम मुझे समर्पित करने जा रही हो। सम्यग् समझ लो।

चम्पा—वह चना आपको समर्पित कर दूँ और विवाह किसी अन्य से करूँ। क्यों ?

पीथल—हाँ,यदि वेश्यावृत्ति चाहो; मैं पहले ही कह चुका हूँ कि विहित प्रेम वाला विवाह एक विहित वेश्यावृत्ति है।

चम्पा—अर्थात् मैं विवाह किसी से भी न करूँ और प्रेम आपसे आजीवन करती रहूँ ?

पीथल—प्रेम होने पर, विवाह किया नहीं जाता। वह हो जाता है। विवाह हो जाने और करने में अन्तर है। ध्यान रहे, प्रेम विवाह के लिए नहीं है, प्रत्युत विवाह प्रेम के लिए है। वह प्रेम के चरणों पर स्वतः झुक जाता है।

चम्पा—किन्तु मैं तो अपने गुरुजनों से यही सुनती आई हूँ कि विवाह प्रकृति और पुरुष का पवित्र बन्धन है। जहाँ दो प्राणी सदैव के लिए एक हो जाते हैं। साधना साध्य को पालती है। भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं।

पीथल—यह तो अक्षरशः सत्य है। यहाँ स्पष्ट ही विवाह को दो प्राणियों का प्रेम-सूत्र में शाश्वत बन्धन स्वीकार किया गया है। मूलतः तुम्हारी भूल यह है कि तुम प्रेम को विवाह का परिणाम मानती हो और मैं विवाह को प्रेम का परिणाम। मेरी दृष्टि में जो प्रेम विवाह का परिणाम है, वहाँ निश्चय ही वेश्यावृत्ति है। परवशता का रुदन है। किन्तु जो प्रेम स्वतः है, उसके संस्कार रूप में हुआ विवाह अमरता का वरदान है। स्तुत्य है।

चम्पा—किन्तु सत्य तो यह है कि विवाह से पूर्व प्रेम न होने पर भी दम्पति में सन्तानोत्पत्ति होते ही दोनों का केन्द्र एक हो जाता है। जिससे प्रेम बिना बुलाये ही उस केन्द्र, उस सन्तान में दौड़ा चला जाता है।

पीथल—वह प्रेम नहीं आता राजकुमारी ! वह तो विवशता के व्यंग का उपहास आता है।

इसी बीच गंगादे ज़ोरों से हँस पड़ी। पीथल और चम्पा शरमाकर

मुस्करा उठे। गंगादे ने पूछा, "बड़ा गम्भीर शास्त्रार्थ चल रहा है ?"

पीथल—नहीं भाभी, यह चम्पा प्रेम और विवाह को एक मानती है। कितनी भ्रांत धारणा है इसकी !

चम्पा—और जीजी ! ये तो बस पूछो मत, ऐसी ऊटपटाँग हाँकते हैं कि सारा धर्मशास्त्र एक तरफ और इनकी डेढ़ टाँग एक तरफ···।

तब तक लालसा भी दौड़ आई थी। वह पूछ बैठी, "पहले यह तो बताओ कि यह प्यार है क्या ? आज जीजी मुझसे पूछ रही थीं कि तुम किससे प्यार करती हो। मैं किससे बताऊँ और किससे नहीं बताऊँ। सच न पीथल ! तुम तो जानते होगे। मैंने अगर किसी से अलग कोई प्यार किया होगा तो तुम्हें अवश्य बतलाया होगा। मैं भुलक्कड़ हूँ, शायद भूल गई होऊँ। इसीलिए तुमसे पूछ रही हूँ। वैसे तो मैं माँ, पिताजी, जीजी वगैरह सबको प्यार करती हूँ। वह मेरी झबरी कुतिया तो मुझे बेहद प्यारी है। सुनते ही सब ठहठहाकर हँस पड़े। तब चम्पा गाल फुलाकर और आँखें नचाकर बड़ी गम्भीर मुद्रा बनाती हुई बोली—

"हाँ, मैं जानती हूँ, जिसे तुम प्यार करती हो, बोलो, बताऊँ ?"

लालसा—हाँ, हाँ, बताओ न। नेकी और पूछ-पूछ।

चम्पा खिसककर उसके पास पहुँची और कानों में धीरे-से बोली, "अपने पिया से, पीथल से।"

लालसा ने "धत्तेरे की" बोलते हुए ज़ोर से उसकी चोटी पकड़ ली। दोनों हँसते-हँसते लाल हो गईं। फिर चम्पा बोली, "फिर पूछोगी कि प्यार का क्या मतलब है ?"

लालसा—ना बाबा, तुम लोग बड़े खराब हो। अब ना पूछूँगी।

गंगादे यह सब तमाशा देख रही थीं। मग्न हो रही थीं और सोच रही थीं—यह भी कैसी मस्त उमर है, जिसमें सभी अनजाने जानकार बनने की कोशिश करते हैं। इन्हें क्या पता कि यह प्यार का मन्द मलयानिल अचानक ही हृदय की कली की खुशबू को छेड़ जाता है और अनजाने में ही सब-कुछ हो जाता है। जब आँख खुलती है तब पता चलता है कि

यह तो प्यार हो गया।

समझदारी आते-आते नासमझी बाज़ी मार ले जाती है। गंगादे सोच ही रही थीं कि पीथल ने पूछा, "भाभी! तुमने अभी हमारा फैसला नहीं किया।"

गंगादे—मैंने तुम दोनों का शास्त्रार्थ लगभग पूरा-पूरा सुन लिया है। चम्पा प्रेम को विवाह का परिणाम मानती है, जो स्पष्ट ही भ्रमात्मक है; जैसा कि तुमने अपने तर्क से काट दिया है। लेकिन तुम्हारा सिद्धान्त भी ठीक नहीं। क्योंकि तुम विवाह को प्रेम का परिणाम मानते हो। लेकिन देखा यह गया है कि प्रेम-विवाह बहुधा असफल हुए हैं।

चम्पा—फिर तो जीजी! जिससे प्यार करें उससे भूलकर भी शादी न करें। क्यों?

पीथल—लेकिन ऐसा होता क्यों है भाभी?···और···।

गंगादे—मेरा ख्याल है कि प्यार परमात्मा है। असीम है। वह परिणाम का बन्दी नहीं। जब लोग उसे विवाह की सीमा में बन्द करते हैं तो वह क्रुद्ध होकर सीमा तोड़ देता है और विवाह के सीमित बन्धन को असफल कर देता है। भला असीम को सीमित कैसे किया जा सकता है?

लालसा—यह ठीक है। लेकिन क्या दोनों को एक साथ समानान्तर चलाने का कोई उपाय नहीं है?

गंगादे—प्रयत्न तो यही होना चाहिए लेकिन······

पीथल—लेकिन दोनों को एक साथ चलाने के लिए सोचना यह पड़ेगा कि दोनों में त्रुटि कहाँ है? प्रेम में या विवाह में?

गंगादे—यह तो साफ ज़ाहिर है कि प्यार परमात्मा है। उसमें त्रुटि या विकार सम्भव नहीं। वह दिव्य है; सृष्टि के जड़-चेतन में है। त्रुटि निश्चय ही कहीं विवाह-संस्था में है। पर कहाँ है? यह खोज करने, सोचने और समझने की चीज़ है। जब तक यह खोज नहीं हो जाती तब तक मानव की सभ्यता अधूरी रहेगी।

लालसा—क्यों ?

गंगादे—क्योंकि यह मानव-जीवन का आधार है : मेरुदण्ड है। सृष्टि का विकास इसी से हुआ है। यह विषय हजारों वर्षों से विद्वानों के अध्ययन का रहा है लेकिन आज तक कोई उचित समाधान नहीं निकल सका है।

पीथल—ठीक कहती हो भाभी ! जब तक इसका उचित समाधान नहीं निकलता तब तक मानव-सभ्यता खतरे में रहेगी। मानव की सर्व प्रधान और अनिवार्य समस्या यही है।

चम्पा—फिर तो मैं अकबर और अन्य राजाओं को व्यर्थ ही दोष दे रही थी कि उनके महलों में हजारों नारियाँ प्रेम-विवाह के नाम पर पशुओं की तरह क़ैदी हैं।

गंगादे—इसमें शक नहीं। उनका क्या दोष ? वे प्यार करते हैं। विवाह करते हैं। दूसरे दिन उनका प्यार खत्म हो जाता है। तीसरे दिन कोई दूसरी रमणी ब्याह कर रख ली जाती है। और इस तरह हजारों विवाह करके भी कोई प्यार का स्वाद नहीं ले पाता।

चम्पा—किन्तु क्या यह पुरुषों का स्त्रियों पर अत्याचार नहीं है ?

गंगादे—है भी, नहीं भी। क्योंकि यह जुए का पासा है। कभी स्त्रियाँ अनेक पति रखती थीं। आज वे निर्बल हैं तो अब पुरुष अनेक स्त्रियाँ रखते हैं। यह तो इतिहास का क्रम है। प्रयोग है। परीक्षण है।

लालसा—फिर यह सती-प्रथा क्या है ?

गंगादे—प्रेम और विवाह को एक कर देने का यह भी एक प्रयोग है। किन्तु इसकी सफलता में भी सन्देह है। क्योंकि सती होना ऊपर से लादा नहीं जाना चाहिए। हृदय के अन्दर से पति के लिए उतना प्यार होना चाहिए। लेकिन आज यह लादा जा रहा है। अबला असहाय है, मूक है। वह लोक-लाज और प्रथा निभाने के लिए अपनी आहुति दे देती है।

पीथल—एक बात पूछूँ ?

गंगादे—क्या ?

पीथल—क्या बता सकती हो कि कभी कोई पुरुष भी सती की तरह 'सता' हुआ है ?

सभी हँस पड़े। इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण नहीं है। पीथल के हृदय को यह बात तीर की तरह बेध गई। वह सोचने लगा कि यह कितना अमानुषिक एवं दानवी कार्य है। पत्नी मर जाती है तो पति हँस-खेल कर एक नहीं, अनेक विवाह कर डालता है। लेकिन पति मर जाता है तो पत्नी को भी निर्दयतापूर्वक जल जाना चाहिए। यह कौन-सा न्याय है ? यह तो प्रेम नहीं है। मौत का लगाव है। वह जोर से बोल उठा, "भाभी ! विवाह तो प्यार नहीं, मौत का लगाव है। बेहयाई का सामूहिक नमूना है।"

चम्पा—लेकिन जीजी ! इसका समाधान तो राम ने खोज लिया था। बाली के मरने पर तारा को सती नहीं होने दिया। रावण के मरने पर मन्दोदरी को सती नहीं होने दिया। फिर भी ये दोनों भारत की श्रेष्ठतम पाँच नारियों (पंच कन्याओं) में से हैं।

गंगादे—और द्रोपदी के पाँच पति थे, फिर भी वह भारत की श्रेष्ठ पंचकन्याओं में से एक है। जिसके लिए कहा गया है कि प्रातः उसका नाम लेने मात्र से ही सारे पाप दूर हो जाते हैं।

लालसा—और स्वयं सीता, राम के जीवित रहते ही धरती में समा गई या सती हो गई थी।

गंगादे—लेकिन सती होना विधवा बने रहने से कहीं अच्छा है, क्योंकि सती होते समय नारी केवल एक बार मरती है लेकिन विधवा बने रहने पर उसे जीते जिन्दगी हज़ार बार मरना पड़ता है। वह दुबारा विवाह करके भी शायद सुखी नहीं रह सकती, जबकि पुरुष दुबारा विवाह करके सुखी हो सकता है, क्योंकि दोनों की प्रकृति में अन्तर है।

पीथल—हाँ भाभी ! यह झमेला क्या है ? तुम्हीं बताओ न !

गंगादे—कोई झमेला नहीं है। प्रेम हो तो मृत्यु की यातना भी मीठी लगती है। सती होते समय भी आनन्द आता है और प्रेम न हो तो विवाह

यमराज की यातना से भी घृणित व्यापार है। बात असल यह है कि प्रेम सर्वोपरि है—असीम है। विवाह उससे सर्वथा भिन्न है, वह ज़िन्दगी का संकल्प है, समझौता है। और संकल्प निभाना पुण्य कर्त्तव्य है। प्रेम और कर्त्तव्य में भी प्रेम श्रेष्ठ है। कितना अच्छा होता, यदि प्रेम और कर्त्तव्य रूपी विवाह दोनों एक साथ हो जाते। इसी स्वप्न के प्रयोग में विवाह-संस्था ने अनेक प्रयोग किये हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश कोई आज तक पूर्ण सफल नहीं हुआ है।

पीथल—इसका समाधान ढूँढ़कर रहूँगा। जब मैं इस अन्धकार में पैदा हुआ हूँ, तो उजाला लाकर रहूँगा। नहीं तो मैं विवाह ही नहीं'''।

गंगादे—ठहरो! इस प्रतिज्ञा को अधूरी ही रहने दो पागल। जाओ, हँसो, खेलो। किस फालतू झमेले में डाल दिया मैंने।

यह कहते हुए गंगादे ने पीथल की पीठ पर प्यार से हाथ फेरा और अपने कक्ष की ओर उदास होकर चल पड़ी।

पीथल खड़ा-खड़ा अपनी भाभी की ओर देखता रहा। उसे लगा मानो ये चरण नहीं चल रहे हैं बल्कि प्रेम और कर्त्तव्य एक होकर संगीत अलाप रहे हैं। दूसरी ओर लालसा ने चम्पा को खींचकर चुपके से पूछा, "यह तो बता, जब कोई लड़की किसी लड़की से प्यार करती है तो कोई शर्म नहीं आती और न कोई उस पर उँगली ही उठाता है और जब किसी लड़के से प्यार करती है तो शर्म क्यों आती है? लोग उस पर ताना क्यों कसने लग जाते हैं?"

चम्पा हँस पड़ी। लालसा खीझ उठी।

"खीझती क्यों हो? तुमतो ज़्यादा पढ़ी लिखी हो, तुम्हीं बताओ न कि एक लड़की किसी लड़की के लिए अपना जीवन क्यों अर्पित नहीं कर पाती? क्यों आत्म-बलिदान नहीं कर पाती?" चम्पा ने पूछा।

लालसा—हाँ, यह भी सच है। आज तक हज़ारों उदाहरण मिलेंगे जहाँ, नारी ने पुरुष के लिए और पुरुष ने नारी के लिए सब कुछ बलिदान किया है लेकिन कहीं नारी ने नारी के लिए या पुरुष ने पुरुष के लिए अपना

जीवन नहीं दिया है।

चम्पा——तो फिर ऐसा क्यों होता है? क्यों स्त्री-पुरुष के बीच का प्यार इतना होता है कि परमात्मा की बराबरी तक पहुँच जाता है? प्रेम परमात्मा हो जाता है? जबकि स्त्री स्त्री का प्यार या पुरुष पुरुष का प्यार इतनी ऊँचाई को नहीं छू पाता?

लालसा—यही तो मैं पूछ रही हूँ। तुमने उल्टे मुझसे ही पूछना शुरू कर दिया।

दोनों में से कोई किसी का समाधान नहीं कर सकी। किन्तु ये शंकाएँ उनके दिल-दिमाग में गहराई से बैठ गई। दोनों के मन में बार-बार यह बात आने लगी कि कोई-न-कोई रहस्य अवश्य है।

द्वादश परिच्छेद

सचमुच चम्पा में अद्वितीय प्रतिभा थी। उसने महारावल गंगादे से कह-कर राजकीय कलावंतों से संगीत और कला का ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। समय समय पर पीथल से भी सहायता लेने लगी। पीथल से सीखने में उसे विशेष सुख मिलता था। पर क्यों? इसे वह नहीं जान पाती थी। उसने गंगादे और लालादे से भी अपने ज्ञान-वर्द्धन में सहायता लेनी प्रारम्भ कर दी। वह दोनों से छोटी थी। इसलिए बड़े प्यार से दोनों ने सिखाने में योग दिया। लालादे उसे शस्त्र और घुड़सवारी की शिक्षा देने लगी। इतना होने पर भी चम्पा अपने ऊपर पीथल का निरीक्षण अन्तिम रूप से मानती थी।

जैसे जैसे पीथल उसे बताता वैसे वैसे ही वह आगे बढ़ती जाती। विशेष कठिनाई उसे अश्वारोहण में आई। कई दिन लगाने पर भी लालसा उसे घोड़े पर चढ़ना नहीं सिखा सकी। जब लालसा ने पीथल को यह बताया तो वह लालसा के साथ ही चम्पा को घुड़सवारी सिखाने चल दिया। उसने चम्पा को घोड़े से एक हाथ की दूरी पर बाई ओर खड़ा कर दिया और अपनी हथेली को घोड़े के पास ऊँचा करते हुए कहा, "इस पर पहले बायाँ पैर रखो और बाएँ हाथ से मेरे कंधे का सहारा लेकर दाहिने पैर को आगे की ओर से घोड़े के उस पार फेंक दो।"

चम्पा सकुच गई। भला उसकी हथेली पर वह अपना पैर कैसे रखती? साथ ही उसकी हथेली उसका भार संभाल सकेगी या नहीं? लेकिन पीथल के बार-बार आग्रह करने पर उसे एक अद्भुत-सा आनन्द आया। उसने कुछ ही क्षणों में वैसा ही कर दिया। अब वह घोड़े पर सवार हो गई।

पीथल ने आठ-दस बार उसी प्रकार थोड़ी-थोड़ी सहायता देकर अभ्यास कराया। जब चम्पा बिना किसी मदद के स्वयं घोड़े पर दस-बीस बार चढ़ी उतरी तो उसे पूरा अभ्यास हो गया। फिर उसे घोड़े पर चढ़ाकर लगाम की कला सिखाने के लिए पीथल उसके पीछे बैठ गया।

मानव कितना असहाय है! वह घोड़े की लगाम खींच सकता है, मन की लगाम नहीं। स्पर्श से दोनों सिहर उठे। पीथल ने चम्पा के दोनों हाथों में लगाम पकड़ा दिया और लगाम को संतुलित रखने के लिए उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में दाब लिया। चम्पा की साँस बढ़ गई। वह गनगना उठी। इतने ही में पीथल ने कहा, "चम्पा हाथ आगे बढ़ाओ और लगाम ढीली करके देखो कि सरपट कैसे दौड़ते हैं।" चम्पा ने हाथ आगे सरका दिया। इधर घोड़े की लगाम ढीली हो गई, उधर दोनों सवार बेलगाम हो गए। तीनों अपने-अपने ढंग से खूब सरपट दौड़ चले।

चम्पा के हाथ पीथल के हाथों में थे ही। साथ ही उसके हाथ पीछे की ओर से चम्पा की कांख के नीचे से होकर आ रहे थे। इसलिए अब लगातार उसकी भुजाओं से चम्पा के वक्ष रह-रहकर रगड़ खाने लगे। वह गुदगुदी के मारे लाल हो गई। किन्तु उसने मना नहीं किया। वह सोचती थी कि ऐसे अवसरों पर जानकर भी अनजान रह जाना अधिक अच्छा होता है। किन्तु, सच्चाई तो यह थी कि उसे भी रस मिल रहा था। ऐसा आनन्द और ऐसी गुदगुदी जीवन में उसे पहली बार मिली थी। अपने मन से वह उसका पूरा-पूरा रस ले रही थी। साथ ही उसका संस्कार उसे इस रस से दूर भागने के लिए कह रहा था।

वह मन के संघर्ष में खो गई अथवा अचेतन मन ने चेतन बुद्धि पर विजय पा ली : कुछ कहा नहीं जा सकता। भीतर-भीतर दोनों चुपचुप रस और आनन्द का भोग कर रहे थे तथा ऊपर से कला के सीखने और सिखाने का अभिनय कर रहे थे। ऐसे गुरु-शिष्या बड़े भाग्य से मिलते हैं किन्तु समाज के लिए सबसे बड़े दुर्भाग्य भी वे ही होते हैं। फिर भी चम्पा के मन में पीथल के चरित्र के प्रति विश्वास था। इसीलिए वह उसे मना न कर सकी।

विश्वास के गर्भ से ही तो धोखे का जन्म हुआ है। वह यह नहीं जानती थी। अथवा रस की मस्ती में जानकर भी अनजान होती जा रही थी। कुछ कह नहीं सकते। उधर पीथल चम्पा के सुकोमल अंगों के स्पर्श तथा गुदगुदी से थरथरा गया था जैसे बिजली छू गई हो। वह प्रयत्न करके भी अपने को काबू में नहीं रख सका और न जाने कब उसे अपने दोनों भुजाओं के बन्धन में बड़े जोर से दबा लिया। चम्पा को वह दबाव बड़ा सुखकर लगा। अब वह स्वयं ही दबती चली गई। शायद एक तन हो जाने के लिए छटपटा उठी।

उधर पीथल अतिशय उत्तेजित हो चुका था। सब कुछ वश में होता है किन्तु चढ़ती जवानी वश में नहीं होती। जवानी शराबी से सौ गुनी मस्त होती है। उसे पथ-कुपथ नहीं सूझते। शायद इसी कारण पीथल की धृष्टता को चम्पा दुत्कार नहीं सकी। अथवा अब उससे दूर हटने की शक्ति भी उसमें नहीं रह गई थी। यह देखकर लालसा की छाती पर साँप लोट गया।

अचानक पीथल की दृष्टि उससे मिली। वह ताड़ गया और तुरन्त घोड़े पर से चम्पा को गोद लिए हुए ही कूद पड़ा। उस समय चम्पा रस की मस्ती में अलसाकर लाल हो गई थी। सारे अंग काँप रहे थे। यौवन की भूख जाग गई थी।

नारी में यौवन की भूख पुरुष से सौगुनी होती है। एक बार भूख की आग में गर्म हो जाने पर वह जल्दी ठंडी नहीं हो सकती। गर्म होने में भी उसे उतनी ही देर लगती है। अब चम्पा गर्म हो गई थी। वह तृप्ति के लिए चिपक रही थी और भूख के लिए अलसा रही थी। इस तरह वह भूख और तृप्ति दोनों के आग-पानी में भाप बन कर उड़ रही थी। उसे होश नहीं था। ऐसे कुसमय में पीथल ने चतुराई से स्थिति को संभाला और लालसा को बुलाकर घबड़ाए हुए स्वरों में बोला, "पानी जल्दी मँगाओ, जल्दी मँगाओ। चम्पा थककर बेहोश हो गई है।"

जब चम्पा के कानों में ये स्वर पड़े तो वह और भी बेहोशी का बहाना

कर बैठी और पीथल की गोद में अलसाकर पड़ गई। अब लालसा का भ्रम दूर हो गया। संदेह का शैतान मर गया। वह चम्पा के पास बैठ गई और प्यार पूर्वक अपने आंचल से हवा करने लगी। तब तक पानी आ गया। पीथल ने चम्पा का मुँह अपने हाथों से धोया और धोता रहा। उसे उसमें भी एक विचित्र सुख मिल रहा था। जब चम्पा ताजी होकर उठी तब उसका नाटक देखने लायक था। वह दौड़कर लालसा से चिपट गई और बोली, "जीजी! अब मैं नहीं सीखूँगी। पता नहीं, कब मैं थककर बेहोश हो गई थी। यदि ये न होते तो मैं सीधे घोड़े की टाप के नीचे आगई होती।" यह सुनते ही सुकोमल हृदय वाली लालसा की चीख निकल गई—

"अरे! बाप रे! हे भगवान! अच्छा बचाया तुमने! नहीं तो मैं पिताजी को क्या उत्तर देती?"

तत्पश्चात् लालसा चम्पा को बड़े प्यार से अपने साथ अन्तःपुर में लाई। पीथल भी साथ-साथ था। जब वह रास्ते में से अपने कक्ष की ओर मुड़ने लगा तो सहसा चम्पा रुक गई। दोनों के नयन मिल गए। दोनों ही दोनों की कला पर आँखों ही आँखों में मुस्कराकर चल दिए। इसी समय बाहर की ओर चम्पा का घोड़ा हिनहिना उठा। शायद यह बात उसके गले नहीं उतर रही थी...."तीर कहीं, निशाने कहीं, चोट कहीं। हाय री बेहया ज़िन्दगी! तू कितनी मासूम है! कृत्रिम और छलना को प्रसन्न करने के लिए तेरे दिव्य और पवित्र को चोरी और धोखे का नाटक खेलना पड़ता है।"

बिचारी लालसा अपना भाग्य मना रही थी और भगवान को लाख-लाख दुआएँ दे रही थी कि चम्पा का अनिष्ट नहीं हुआ। उसके पीथल ने उसकी चम्पा को बचा लिया।

त्रयोदश परिच्छेद

रेगिस्तान में शरद पूनम की चाँदनी रात का मजा ही कुछ और है···चाँदी-सी धरती और चाँदी-सा अंबर। साथ ही यदि चाँदी जैसे श्वेत रेशमी वस्त्र में मुस्कराती चन्द्रमुखी प्रेयसी हो तो फिर पूछना ही क्या? भीनी-भीनी सुगंध से भरी चम्पई रंग की चम्पा और उसकी नरम-नरम, शीतल-शीतल, कोमल-कोमल कलाई को अपने हाथ में दबाए हुए पीथल के काँपते हाथ! वह धन्य हो गया। प्राणों के पंछी झूमकर रह गए। रस का सागर उलटते-उलटते बचा। देवता भी ललच गए। तपसी तरस गए।

इतने ही में चाँदी के चमचमाते पात्र में सुगंधित तसमई (खीर) आ पहुँची जिसमें ऊपर का चंदा मक्खन के लौंदे की तरह तैर रहा था। देखते ही मुँह में पानी भर आया। ऐसे सुसमय में खिलखिलाकर चम्पा ने उस द्विमुखी पात्र को पीथल के अधरों से लगा दिया। पात्र का एक मुख पीथल के अधरों पर, दूसरा मुख चम्पा के अधरों पर और पात्र को थामे हुए दोनों के सटे हुए दाहिने हाथ। बगल में झगड़ते हुए दोनों के बाएँ हाथ रस और प्यास को बढ़ा रहे थे। धीरे-धीरे चुसकियों से पात्र खाली हुआ किन्तु उनकी प्यास बढ़ने लगी। फिर प्यास, फिर तृप्ति। घी पड़ता गया, आग भड़कती गई। यहाँ तक कि तृप्ति भी प्यास बन गई। फिर प्यास! प्यास!! और मस्ती!!!······उन्माद···और न जाने क्या-क्या, और···और। बस, कुछ न पूछिए, हद हो गई।

इन दो क्षणों के सुख, आत्म-विस्मृति और रस पर पीथल ने अपने करोड़ों जन्मों को निछावर कर दिया। हर्ष के अतिरेक में उसकी आँखें मुदीं, खुलीं, मुदीं और खुलती रहीं। स्वर सो गए, दोनों खो गए, कुछ कहने

के लिए वाणी असमर्थ हो गई। ऐसे सुख में सनकर, मस्ती में भीगकर लड़खड़ाते स्वरों में पीथल ने पूछा—

"चम्पा!"

"ऊँ-ऊँ-ऊँ।"

"कैसा लग रहा है?"

"बस पूछो मत, कहो मत।"

"आज तुम कितनी सुन्दर कितनी प्यारी और कितनी मधुर लग रही हो, कह नहीं सकता। काश, यदि भावों को वाणी मिली होती।"

"हटो, बस बातें ही बनाते हो। कवि हो न!"

"देख रही हो? ऊपर वाला चाँद कितने रस में है।"

"चलो, तुम कौन-सी कसर छोड़ रहे हो। मुझे तो लगता है कि वे भी तुम्हारे रस पर शरमा गए हैं, ललचा गए हैं।"

यह सुनते ही पीथल की आग और भड़क उठी और उसने चम्पा को चुम्बनों की बौछार से चुप कर दिया। दोनों चुप, धरती चुप, अंबर चुप और सभी सृष्टि चुप। रस मौन की असीम गहराई के मानसरोवर का ही तो नाम है। वह वाणी, बुद्धि और ज्ञान से परे है। वहाँ केवल हृदय और वाणी ही नहीं भीगते, बुद्धि भी भीग जाती है। विवेक तो भीगकर वहीं मर जाता है। धीरे-धीरे दोनों की आँखें खुलीं, पलक उठे, अधर हिले—

"पीथल!"

"चम्पा!"

"जिन्दगी का बसंत क्या है?"

"यौवन।"

"और वह सार्थक कैसे होता है?"

"प्रेम पाकर।"

"उसमें क्या मिलता है?"

"रस। और···रस ही ब्रह्म है, मोक्ष है, परम है। उससे आगे कुछ नहीं है, चम्पा।"

"तो रस का लक्षण क्या है ?"

"आत्म-विस्मृति, मस्ती, मुस्कान···।"

"तो, तुम वही मेरी मुस्कान हो पीथल !"

"और तुम मेरी मस्ती। आत्म-विस्मृति !"

इतना कहते हुए पीथल ने चम्पा को आलिंगन-पाश में भर लिया।

"किन्तु यह क्या पीथल ? यह क्या कर रहे हो ?"

"क्यों ?"

"यह क्या है ? काम या प्रेम ?"

"समझने की कोशिश करो चम्पा ! यदि तुमने काम और प्रेम का अन्तर समझ लिया तो समझ लो बंधन और मुक्ति से ऊपर उठ गई, कुछ और समझने को शेष नहीं रह गया।"

"यही तो प्रश्न है ? समझूँ कैसे ?"

"प्यार की भाषा तो बड़ी सरल है चम्पा। उसे पशु-पक्षी तक समझते हैं। फिर तुम तो मानवी हो महान हो।"

"किन्तु इस महान मानवी का अभिशाप भी तो यही है पीथल ! वह शंकालु होती है।"

"किन्तु प्रत्येक पर अविश्वास करना भी तो हीनता है।"

"सच पीथल !"

"हाँ, बिल्कुल सच। विश्वास की अगाध धारा को अबाध बहने दो, मत रोको उसे। उसमें बाहर का छल, कपट, धोखा आता है तो आने दो। वे सब उसमें तिनके की तरह सड़ गलकर अलग हो जाएँगे।"

"हाँ पीथल ! तुम ठीक कहते हो। ऐसा ही होने दो। बहने दो विश्वास और प्रेम की अजस्र धारा। बनने दो इस धरती को स्वर्ग। मुझे अब लग रहा है जैसे किसी ने मेरे अन्तर का द्वार खोल दिया हो, मैं ऊपर उठती जा रही हूँ पीथल ! आओ न ! और भी निकट आ जाओ पीथल ! प्यारे !! प्रियतम !!!"

चम्पा ने चुम्बनों की बौछार से पीथल को भर दिया और सहज

शिथिल होकर लता की तरह लिपट गई। अंग-अंग के मधुर स्पर्श और पूर्ण समर्पण से पीथल के रोम-रोम रस में डूब गये, उसकी आँखें सहज मुँद गई। द्वैत स्वतः उड़ गया। धड़कती हुई साँसें, उछलते हुए वक्ष और तड़पते हुए मन को मंज़िल मिली। कली का कोष खुल गया। सुगंधि बिखर गई। खुशबू में इतराती हुई चम्पा बोली, "बस ! पीथल, अब छोड़ दो।"

"......" पीथल कुछ बोल न सका। नारी तब बहुत वाचाल होती है जब पुरुष मौन होता है। चम्पा फिर सिसकती हुई बोली, "बस, पीथल, बस।"

"क्यों ?"

"कुछ नहीं। बस, बड़ा अजीब-अजीब-सा लग रहा है। मेरी चेतना शून्य-सी हुई जा रही है।"

यही तो आत्म-विस्मृति की पहली सीढ़ी है। इसके बाद बस वही है रस...अनन्त...ब्रह्म... मोक्ष या जो चाहे सो कह लो जिसके आगे कुछ नहीं है।"

"किन्तु मुझे तो ये सब नहीं चाहिए, मैं केवल तुम्हें चाहती हूँ।"

"तो ले लो मुझे" पीथल ने मुस्कराकर कहा।

"कैसे लूँ ? क्या देकर लूँ तुम्हें ?"

"यदि सचमुच ही लेना है तो सब-कुछ देना सीखो, और इतना सीखो कि लेना भूल जाए।"

"सो तो मेरा सब कुछ तुम्हारा है ही, किन्तु न जाने क्यों केवल इतने से ही संतोष नहीं होता।"

"बस, तो समझ लो, मैं तुम्हारे हाथों में बिक चुका। मेरा मुझ में कुछ है ही नहीं। मैं तुम्हारा हूँ चम्पा।"

"सच ?"

"हाँ।"

"किन्तु पीथल ! याद रखना ! ये चाँद तारे, धरती, गगन और यह सुहावनी शरद चन्द्रिका साक्षी हैं, यदि तुमने दगा की तो सच कहती हूँ

पीथल ! करोड़ों जन्मों तक जलन नहीं मिटेगी।"

"तुम अपनी कहो चम्पा ! क्योंकि रूप ही दगाबाज़ होता है, रसिक नहीं। मैं तो एक रसिक हूँ, उसका सिर कट जाएगा, दी हुई बात नहीं कटेगी।"

"तो सुन लो, जब तक ये चाद, तारे, धरती और अंबर रहेंगे तब तक मैं तुम्हारी, और केवल तुम्हारी ही रहूँगी।"

"परन्तु मैं तो, जिस दिन ये सब नहीं रहेंगे उस दिन भी, तुम्हारा केवल तुम्हारा रहूँगा। शायद जब तुम भी मेरी न रहो, तब भी मैं तुम्हारा ही रहूँगा चम्पा।"

"शायद तुम भी मेरी न रहो" ऐसा क्यों कहते हो पीथल ! "क्या तुम्हें मुझ पर......"

"नहीं नहीं चम्पा ! केवल तुम्हारी बात नहीं है किन्तु यह सच है कि इसी चाँदी-जैसी धरती और चाँदी-जैसे अम्बर के नीचे न जाने कितनी चन्द्रमुखियों ने विश्वास देकर कितने ही भोले पुरुषों को लूटा है। अनजाने कितनी बार ऐसे ही प्रेम की शपथें खाई गई हैं। कितनी ही बार प्रणय-व्यापार हुआ है। न जाने कितनी ही बार वे कभी न टूटने वाले प्रेम के बन्धन टूटे हैं..."

"बस, बस पीथल ! आगे मत कहो। दिल धड़क रहा है। मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ ? पीथल ! नारी और प्रेम पर्यायवाची हैं। उसमें भी राजपूतानी का तो कहना ही क्या ? इसका प्रेम केवल एक ही होता है, उसके बाद तो वह केवल आग की लपटों से ही प्यार करती है।"

"ऐसा न कहो चम्पा ! मेरा रोम-रोम तुम्हारा है और इसीलिए मेरा प्रेम तुम्हें सर्वदा प्रसन्न देखना चाहता है। मेरे बाद भी..."

"बस करो पीथल ! मेरा हृदय कुरेदने में तुम्हें मजा आता है क्या ?"

कहती हुई चम्पा ने पीथल के मुख पर अपना हाथ रख दिया। पीथल आगे कुछ न कह सका। चन्दा ने मन्त्र पढ़े, चांदनी ने भाँवर दी, अम्बर ने शृंगार दिया, धरती ने जयमाल दी...और दोनों सर्वदा-सर्वदा के लिए

एक हो गए। सृष्टि मुस्करा दी। तारिकाओं के आँसू छलक पड़े। उस असीम गहरी शांति को चीर कर झींगुर की झनकार उठी मानो शहनाई बज उठी हो। प्रगाढ़ आलिंगन में रस बरसाती सुकुमार चाँदनी और काँपता हुआ चन्दा दोनों ही सो गए। रस के दोनों देवता अब सुख-दुःख, तृप्ति-प्यास, मोक्ष-बन्धन आदि सारे द्वन्द्वों से ऊपर थे।

ऐसी सरस विभावरी की चिकनी गोद में जहाँ रूप और रसिक, चन्दा और चाँदनी, प्रेयसी और प्रियतम दृढ़ आलिंगन में निर्द्वन्द्व सो रहे थे, वहाँ एक पंछी ऐसा भी था जो अपनी हूक, तड़प और कसक में विक्षिप्त होकर कविता में अपना मन बहला रहा था। अथवा अपनी कसक को कविताओं में ढाल रहा था—

"मैंने अपनी नींद बेच दी,
बड़भागी उन रसिक जनों को।"

सहसा किसीने अपनी सुकुमार हथेली से उसके नेत्र मूँद दिए और उसकी कविता की शेष पंक्तियाँ पूरी कर दीं—

"जो सोते हैं आलिंगन भर,
धरे अधर पर मधु अधरों को।"

दोनों हँस पड़े। ये थे पीथल और चम्पा के अन्तरंग सेवक-सेविका। इन्हीं की कुशल व्यवस्था से आज की रात में चम्पा और पीथल सुख पूर्वक मिले थे। उन्हें परस्पर आलिंगनबद्ध एवं रस में बेहोश होते देखकर क्यों इन दोनों का हृदय गुदगुदाया न होगा? क्या ये किसी सहज भूख से न तड़प उठे होंगे? कौन जाने? किन्तु यह सच है कि अपनी नींद बेचकर ही दूसरों की नींद की रखवाली की जा सकती है।

चतुर्दश परिच्छेद

परमात्मा जब देता है तब छप्पर फाड़कर देता है। यह कहावत झूठी नहीं है। आज सुबह जब पीथल सोकर उठा तो उसका मुँह खुरशीद के पत्र से ढका हुआ मिला। यह पत्र छप्पर फाड़कर ही आया होगा क्योंकि पहरेदारों के बीच जहाँ कोई पंछी तक नहीं फटक सकता वहाँ पीथल की ख़ुशियों का खज़ाना झर पड़े, यह मामूली बात नहीं है।

पत्र के अक्षरों को देखते ही पीथल फड़क उठा। रग-रग में खुशी की लहर बिजली की तरह दौड़ गई, आँखों में चमक आ गई, रोम-रोम मुस्करा उठा। पत्र पढ़ने से पहले उसने न जाने कितनी बार उसे चूमा, कितनी बार उसे सिर, आँखों और दिल से लगाया। एक लम्बी-सी मीठी साँस ली, अंगड़ाई भरी और चुटकी बजाकर गुनगुना उठा। आगरे की सुखद स्मृतियों के चित्र मन के परदे पर एक-एक करके सभी नाच उठे। तब तक पत्र मानो अपने आप खुल गया और आँखों के सामने अक्षरों में मुस्करा उठा—

"मन के मीत,

तुम क्या जानो, मेरे सीने में कितनी आग है। ज्वालामुखी है ज्वालामुखी। पल-पल में लाख बार तड़पती हूँ तुम्हें पाने के लिए। और एक तुम हो जो कानों में तेल डाले पड़े हो, मौज उड़ा रहे हो। तुम्हारे लिए मुझे दर-दर की भिखारिन बनना पड़ा, फाँसी से जूझना पड़ा, महीनों भूखों मरना पड़ा। सच कहती हूँ, पीथल, मैं मर जाऊंगी लेकिन मेरे प्यार की हर साँस तुम्हारी आत्मा से चिपकी रहेगी। तुम्हारे भाई और मामूजान सबने मिलकर मुझे दोज़ख से भी ज्यादा ज़लील किया, दुःख दिया। वे दिल से कतई

नहीं चाहते थे कि मैं तुमसे प्यार करूँ। उस रात उन लोगों ने मुझे बोरी में बन्द करके दरिया में फेंकवा दिया और क्या-क्या किया···क्या कहूँ, कैसे कहूँ, एक लम्बी दास्तान है। जब तुम मिलोगे, सुनाऊँगी। पता नहीं, इस जिन्दगी में तुम मिलोगे भी या नहीं···! मैं तुम्हारी कनीज़ हूँ। मेरी यह दरख्वास्त मत ठुकराना मेरे खुदा! मरने से पहले मैं एक बार तुम्हें देख तो लूँ और बस, एक हिचकी, एक साँस। यही आखिरी ख्वाहिश है।

शायद तुम पुष्कर मेले पर आओगे। तुम्हारे हिन्दुओं का त्यौहार है। मैं तुम्हें वहाँ एक पगली की तरह ढूँढ़ती मिलूँगी।

तुम्हारी कनीज़,
खुरशीद।"

पीथल पढ़ता गया और उसकी साँस-साँस में सन्तोष का जहरीला दर्द भरता गया, मीठा-मीठा-सा। प्रेमी को प्रेमिका की तड़प जितना सन्तोष दे सकती है, उतना शायद त्रिलोक का कोई सुख नहीं दे सकता। पीथल अपवाद नहीं था। उसे क्षणभर को अपने भाई तथा नवाब साहब पर क्रोध आया किन्तु दूसरे ही क्षण खुरशीद के प्यार की सच्चाई का अनुमान करके गहरी शांति मिली। उसे लगा, कब पुष्कर मेला हो और कब वह उससे मिले···सब की राज़ी-नाराज़ी तोड़कर। वह दिखा दे कि वह भी खुरशीद को, कम-से-कम, उतना ही प्यार करता है जितना वह उसे करती है।

पीथल में प्यार का एक उन्माद-सा भर गया। उसे अपनी ज़िन्दगी सफलताओं से हरी-भरी नजर आने लगी। उसे अपने पर गर्व-सा आ गया, "खुरशीद मेरी ही रही, चम्पा मेरे ही लिए अपना सुर-दुर्लभ यौवन-सौंदर्य लिए खड़ी है और लालसा···उसका तो कहना ही क्या ? उसकी तो हर साँस में मैं हूँ; आँखों की पुतली में मैं श्याम कनी हूँ।"

उसकी विह्वलता आज देखते ही बनती थी। आनन्द के हिलोर में वह डूबने-तिरने लगा। नस-नस और साँस-साँस में मादकता भर गई। भाव-विभोर होकर वह अपने को कृष्ण समझ बैठा। उसे लगा मानो रुक्मिणी ने उसे पत्र भेजा है। वह ठीक समय पर वहाँ जाएगा, सारे शत्रुओं को

धराशायी कर देगा और रुक्मिणी का हरण करके अपनी द्वारिका में लाएगा, शहनाई बज उठेगी, देवता आकाश से पुष्प वर्षा करेंगे···और··· और···।

सहसा लेखनी उठकर उसके हाथों में आ गई। खुरशीद की खुमारी में ही उसने एक महान काव्य ग्रंथ लिख डाला···बेलि कृष्ण रुक्मिणी री।

लेकिन इससे भी खुमारी उतरी नहीं। भावी की आशा और अतीत की स्मृतियों से बढ़कर शायद कोई चीज़ अधिक मादक नहीं होती। पीथल को ये दोनों चीज़ें एक साथ मिली थीं, साथ ही वर्तमान का खूबसूरत स्वरूप भी कम न था। कल्पना बेलगाम दौड़ने लगी। कविताओं के ग्रन्थ मस्ती में लिखे जाने लगे। फिर भी जी नहीं भरा। झट उसने तूलिका उठाई और तन्मय होकर चित्र बनाने में लग गया। प्राणों में चम्पा थी, आँखों में लालसा थी और साँसों में खुरशीद। फिर चित्र बनाने में क्या देरी थी ?··· शायद बहुत, शायद कुछ नहीं।

चित्र बना। खूबसूरत, अच्छा, बहुत अच्छा। लेकिन ज्यादा अच्छा कभी अच्छा नहीं होता। शहराती लड़कियों की बैठक में जैसे हर तरह के खूबसूरत फूलों को बाँधकर एक खूबसूरत जल-पात्र में रख दिया जाता है वैसे ही। वहाँ खूबसूरती तो होती है, लेकिन बनावटी। स्वाभाविक नहीं। चम्पा ने समझा, यह चित्र मेरा है। लालसा कहने लगी, मेरा है। भाभी को कुछ-कुछ अपना लगा। किन्तु, दूसरे ही क्षण वे उदास हो गईं। तब तक चम्पा और लालसा एक-दूसरे को चिढ़ाने के लिए झगड़ पड़ीं, "देख, चम्पा ! मुँह बिलकुल तेरी तरह है।"

"और ये लम्बे-लम्बे नाखून तेरे हैं।"

भाभी ने दोनों का झगड़ा मिटाया, "यह चित्र न तुम्हारा है चम्पा, और न तुम्हारा लालसा। व्यर्थ क्यों झगड़ रही हो ?"

"तो क्या आगरे वाली का है ?" लालसा आँखें मटकाती हुई बोली

"चम्पा हँस पड़ी। भाभी ने दोनों को यह कहकर चुप कर दिया कि कलाकार की कोई कला किसी एक की नहीं होती। सबकी होती है। यह

क्या कम गौरव की बात है कि तुम दोनों अपना-अपना समझ रही हो।"

पीथल खुश हो गया। पूछा, "भाभी ! तुम्हें यह चित्र कैसा लगा ?"

"खूबसूरत नहीं, बहुत-बहुत खूबसूरत।"

"प्रभाव कैसा है भाभी ?"

"मधुर नहीं, अत्यन्त मधुर। शायद इतना मधुर जो गले से नीचे नहीं उतर सके।"

"व्यंग क्यों कर रही हो भाभी ?"

"कला की बात करते समय मैं व्यंग नहीं करती।"

पीथल सकपका गया। भाभी के मुँह पर जो अनेकानेक भाव बन-बिगड़ रहे थे, उन्हें उसने ऊपर-ऊपर से पढ़ लिया। उससे नहीं रहा गया। बड़े अनुनय से पूछा, "भाभी ! कला की कसौटी तुम हो। मुझे सही-सही बताओ। मैं बड़े चक्कर में पड़ रहा हूँ।"

गंगादे यद्यपि स्पष्ट कहकर पीथल का दिल छोटा नहीं करना चाहती थीं, किन्तु कला की गरिमा के आगे उन्हें पीथल की प्रसन्नता-अप्रसन्नता का ध्यान नहीं रहा। उन्होंने कहा, "देखो, पीथल ! यह चित्र बेहद खूबसूरत है। सारी खूबसूरत बनावटों को एकत्र किया गया है। इसमें शक नहीं। हर देखने वाला यही कहेगा कि चित्र की खूबसूरती में कोई कमी नहीं है। जी चाहता है कलाकार का हाथ चूम लें।"

चम्पा और लालसा ने एक साथ कहा, "बेशक।"

गंगादे—लेकिन यही इस चित्र की सबसे बड़ी कमी है। इसमें स्वाभाविकता नहीं है। जिसका ऐसा दिव्य मुँह होगा, उसकी आँखें ऐसी बेहद रसदार और चमकदार नहीं होंगी। इन आँखों में तो एक अजीब वासना का ज़हर है और मक्कारी भी।

पीथल—ऐसी ही रसदार आँखें उसकी थीं भाभी, खुरशीद की।

गंगादे—व्यक्तिगत बात अभी मत करो। इस चित्र में जिसके इतने खूबसूरत नाखून हैं, उसके केश इतने छोटे न होकर कुछ लम्बे होंगे। इसी तरह समझ लो, इस चित्र में ऊपर की खूबसूरती को एकत्र किया गया

है। यह नहीं देखा गया है कि इसका सम्बन्ध किस-किस जगह की आत्माओं से होता है। याद रखो, शरीर की हर बनावट, यहाँ तक कि रोएँ और केश भी मन के भीतरी बीज के अनुकूल होते हैं।

पीथल—शायद ठीक कह रही हो, भाभी।

गंगादे—तो शायद यह भी ठीक है कि यह चित्र तो है ही ऊपर से निहायत खूबसूरत और भीतर से निहायत बदसूरत। साथ ही तुम भी……।

पीथल—भा……भी……।

गंगादे—तुम्हारी आँख में देवता की जगह अब सूअर का बाल है। ऊपर से जहाँ भी तुम्हें गोरी-चिट्टी चमड़ी दिखाई देगी, तुम वहीं अब राल टपकाकर बैठ जाओगे। लिपी-पुती चुड़ैल तुम्हें परी लगेगी। मौत को अमृत समझोगे औ…र…।

पीथल ने भाभी के मुँह पर हाथ रख दिया और सहमकर बोला, "भा……भी……।" गंगादे वहाँ रुक न सकी। तेज़ी से अपने कक्ष की ओर चल दी।

पीथल बैठे-बैठे सोचने लगा। हर बाहरी सूरत भीतरी मन का प्रतिबिंब है। हर बाहरी घटना के भीतर कोई सूक्ष्म तत्व है। गोरी-काली चमड़ी और उसकी बनावट कुछ नहीं है, उसमें लहर कहाँ से और कैसी उठती है, यह जानना चाहिए। तो फिर……मैं प्यार किसे करता हूँ? खुरशीद से, चम्पा से, लालसा से, या किसी से भी नहीं। कैसा खूबसूरत धोखा है? सोचते-सोचते उसका सिर दर्द से भर गया। सिर की नसें पिन्न-पिन्न करने लगीं। आँखों के आगे अन्धेरा-सा छा गया। अनजाने ही पैर खड़े हो गए। मुड़ पड़े भाभी के कक्ष की ओर। हाथ में अभी तक वही चित्र था। उसे वह खूबसूरत चित्र अत्यन्त घृणास्पद लग रहा था।

खुरशीद की आँखें और गाल का तिल, चम्पा के केश और मुख, लालसा का भोलापन और उसके सहज खूबसूरत नाखून! ये सभी एक जगह ऐसे लग रहे थे मानो मरी हुई लाश को लीप-पोतकर ज़िन्दा रंग चढ़ाया गया हो। उससे नहीं देखा गया। फाड़कर चित्र को टुकड़े-टुकड़े

कर दिया। तेज़ी से लौटकर आया और कूची और रंगदानी को भी तोड़-फोड़कर फेंक दिया। मन ही मन कसम पर कसम खाने लगा, अब चित्र नहीं बनाऊँगा। मैं मन की खूबसूरती समझता नहीं तो तन की छिछली छलना बनाकर क्या करूँगा? चम्पा और लालसा ताली पीटकर हँस पड़ीं। पीथल जलभुन कर राख हो गया।

सहसा भाभी के कक्ष से संगीत की ध्वनि सुनाई दी। वीणा पर राग केदारा। सभी चुप। शान्त। सारी सृष्टि करुणरस में बरस पड़ी। पेड़-पौदे भी रो पड़े: दीवालों के भी आँसू छलक पड़े। पवित्रता से सारा वातावरण निर्मल, शुद्ध और पुनीत बन गया। भाभी के अधर काँप उठे। किन्तु उँगलियों की गति तीव्रतर होती चली गई। जब स्वर का चरम चढ़ाव आया तब पता भी न चला कि पीथल कब दौड़कर भाभी की गोद में गिर पड़ा। भाभी के हाथ से वीणा छूट गई।

पीथल विह्वल होकर कह रहा था, "भा···भी···माफ़ कर दो।···मैंने तुमसे कपट किया, बहुत छिपाया।"

जब मन निर्मल होता है तो अपने सारे कलंक धो डालता है······सब कुछ कहकर। पीथल ने आगरे की सारी घटना सुना दी। भाभी ने पीथल को सहलाया। निर्मल आत्मा को आश्रय तुरन्त मिलता है। फिर कहा, "पीथल! तुम बड़े अच्छे हो। देवता हो।"

पीथल—भाभी! माना कि यह छलना थी। फिर मैं अन्धा कैसे बना?

भाभी—प्यार आँखों को अन्धा, कान को बहरा, मुँह को मूक, बुद्धि को दिवालिया और मन को पागल बना देता है। उसके आगे शरीर के यन्त्रों की सारी प्रकृति हार मानकर झुक जाती है।

पीथल—तो क्या मैं उसे सचमुच प्यार करता हूँ? अगर नहीं करता हूँ तो यह दर्द कैसा है?

भाभी—वह यह कि प्यार काँटा नहीं है, दर्द है। काँटा बाहरी चीज़ है। दर्द अपने में से पैदा होता है। दर्द काँटा नहीं चाहता, शान्ति चाहता है। सच तो यह है कि तुम्हारा दिल बहुत खूबसूरत फूल है। कोई भी काँटा

चुभ सकता है। सच कहना, तुम चम्पा को प्यार नहीं करते ? खुरशीद को नहीं करते ?

पीथल—ठीक कहती हो।

भाभी—तो फिर ? इससे साफ ज़ाहिर है कि काँटा कोई भी चुभ सकता है। दर्द सिर्फ तुम्हारा है। प्यार तुम्हारे भीतर है, बाहर नहीं।

पीथल—फिर यह प्यार बाहरी चीज़ के लिए क्यों होता है ? अन्दर-अन्दर ही क्यों नहीं रहता ?

भाभी—वह रहता भीतर-भीतर ही है और भीतर के लिए ही प्यार भी होता है।

पीथल—कैसे ?

भाभी—बचपन से ही क़िस्सा-कहानी सुनकर, नाटक देखकर या पास-पड़ोस में शादी-ब्याह के अवसरों पर देखकर या पिछले जन्म के संस्कारों से मन के परदे पर एक ऐसा चित्र तैयार होता रहता है, जिसका रूप प्राणों में, नस-नस में, साँस-साँस में छा जाता है। वह रूप बाहर से जितना ख़ूबसूरत होता है, उससे ज़्यादा भीतर से होता है। रूप का दिल-दिमाग और बाहरी चमक-दमक सबमें अत्यन्त मादक एकता होती है। हर प्राणी बस उसी मानसी रूप को प्यार करता है और बाहर जब वैसा रूप दिखाई देता है, तब वह भड़क उठता है और पागल होकर उसे पाने की कोशिश करता है। ज़ाहिर है कि वह बाहर के काँटे को प्यार नहीं करता, भीतर के दर्द को, रूप को प्यार करता है।

पीथल—मैं कैसे समझूँ कि मेरा मानसी रूप खुरशीद है, लालसा है, या चम्पा है ?

भाभी—इसे केवल तुम्हारे दिल की आँख पहचान सकती है, मैं नहीं। हो सकता है उनमें से ही कोई हो या कोई न हो। बस, इतना ध्यान रखो कि कोई दूसरा रूप तुम्हारे मानसी रूप के ऊपर जोंक की तरह ज़बरदस्ती न चिपक जाय। तन का स्वाद पैदा करके मन का स्वाद खत्म न कर दे।

यदि कहीं ऐसा एक बार हो गया, मन का स्वाद खत्म हो गया और तन का स्वाद नशा बनकर चढ़ गया, तो याद रखो प्यार के नाम पर लाखों सुन्दरियों से व्यभिचार करोगे और कहीं टिक न सकोगे''एक के बाद एक। यही चक्कर तुम्हारा स्वभाव बन जायगा।

पीथल की आँखें झुक गईं। मन का कोना-कोना झाँकने लगा। हर रंग को बारीकी से पढ़ने लगा। भाभी की वाणी में मानो अमृत हो, वह जी उठा। आँखों की चहल-पहल स्वतः बन्द हो गई। मन का सागर उमड़ पड़ा। कूड़ा-करकट सागर की लहरों से थपेड़ा खाकर किनारे भाग गया। समुद्र में जब ज्वार आता है, तब वह लहराकर छूना चाहता है केवल चंदा को। पीथल के मन का सागर भी लहरा-लहराकर उठने लगा अपने चंदा के लिए, चम्पा के लिए। वह सारे बाँध तोड़कर उमड़ पड़ा। चल पड़ा चम्पा के पास। तब उसके पैरों में केवल चंचलता ही न थी, असीम गम्भीरता और गजराज-मंथरता भी थी।

सहसा उसे एक बात याद आई और लौटकर अपनी भाभी से पूछा, "भाभी! कुछ दिनों पहले जब मैं सोकर उठा था तो मेरे मुँह पर रखा हुआ खुरशीद का एक पत्र मिला था। यह पत्र कौन लाया? किसने मेरे मुँह पर रख दिया?"

गंगादे गम्भीर हो गई। कुछ देर सोचती रहीं। उन्हें कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। उन्होंने कहा, "मुझे पता नहीं। हाँ, दीवानजी बीकानेर से आगरा लौटते हुए यहाँ भी आए थे। किन्तु रुके नहीं। बस, इतना कहकर चले गए थे कि पुष्कर मेले पर तुम्हारे भैया ने सबको जरूर-से-जरूर बुलाया है। शायद तुमसे भी मिले थे।"

पीथल—नहीं तो।

गंगादे—हाँ, उन्हें अवकाश नहीं था। नहीं मिले होंगे।

पीथल—फिर यह पत्र कौन लाया? ज़रा इसे पढ़ो तो।

गंगादे ने कुछ हिचकिचाहट के साथ पत्र को हाथ में लिया, पढ़ा और बार-बार पढ़ती रहीं। रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। दीवानजी

से आशा न थी। कोई दूसरा आगरे से आया नहीं। फिर चोरी-चोरी पत्र पीथल के मुँह पर रख दिया गया। यह सब क्या है? हमारे महल से हमारे राज़ आगरे तक ले जाने-ले आने वाला कौन है? चिन्ता और संदेह मन के आकाश में बादलों की तरह घिर आए। पीथल की भी यही दशा थी। दोनों मौन थे।

पंचदश परिच्छेद

पुष्कर का मेला और सोमवती अमावस्या का पर्व। सारा भारत पुण्य लूटने के लिए टूट पड़ा। देशी रजवाड़ों के परिवार दो दिन पहले ही पहुँच चुके थे। जैसलमेर से भी पीथल अपनी भाभी, लालसा ,चम्पा तथा अन्य लोगों के साथ पहुँच चुका था। सभी पर्व की तैयारी में लगे थे। उधर मानसिंह, रायसिंह, नवाब साहब और शक्तिसिंह सभी पहुँच गए थे। उनकी सेनाएँ महाराणा पर आक्रमण करने की पूरी तैयारी में थीं।

रायसिंह के प्रबन्ध से मानसिंह ने जब चम्पा को देखा तो बेहोश से हो गए। उनके हृदय में तड़प और दर्द ने सीमा को तोड़ दिया। विवेक खो बैठे। रायसिंह ने इस सम्बन्ध में शक्तिसिंह को गुप्त चर्चा के लिए बुलाया। उनकी राय थी कि चम्पा का विवाह मानसिंह से तुरंत कर दिया जाए और सम्राट् से किसी अन्य लड़की की शादी यह कहकर कर दी जाए कि वही चम्पा है शक्तिसिंह की पुत्री। शक्तिसिंह को यह व्यवस्था बहुत ही प्यारी लगी। शायद इसलिए कि उनकी लड़की एक महान राजपूत के पास रहेगी। जाति-मर्यादा बनी रहेगी। दूसरी ओर सम्राट् अकबर को दिया हुआ वचन भी पूरा हो जाएगा। राजनीति के दाँव-पेच में दिया हुआ वचन ऐसा ही होता है।

मानसिंह की बाँछें खिल उठीं। गुप्त रीति से तुरंत मंडप तैयार कराया गया। विधि के लिए ब्राह्मण आ गए। मूक शहनाई चुपचुप बज उठी। एक नई चहल-पहल, नई जिन्दगी और नई खुशी से वातावरण भर गया। कल सायंकाल शादी होगी। परसों दुलहा-दुलहिन पुष्कर में सोमवती-स्नान गाँठ जोड़कर करेंगे। इस सुख की कल्पना से भला कौन पुलकित न होता?

लेकिन इस सारी खुशी का वातावरण अन्दर ही अन्दर था। ऊपर से कठोर नियंत्रण था। आग जल रही थी भीतर-भीतर। ऊपर से सभी बेखबर थे।

रात को रायसिंह ने सारी बात गंगादे को बताई और कहा कि यह सारा कार्य तुम्हें ही करना है। गंगादे सुनते ही चौंक गई। कुछ समझ में नहीं आया कि क्या कहें, क्या करें और क्या न करें। थोड़ी देर बाद कुछ सोचकर उन्होंने कहा, "महाराज लेकिन एक बात है।"

रायसिंह—क्या ?

गंगादे—शायद आपको मालूम नहीं है कि पीथल और चम्पा एक दूसरे से गहरा प्यार करते हैं। अगर चम्पा का विवाह किसी भी दूसरे से हुआ तो हमें पीथल और चम्पा दोनों से हाथ धोना पड़ेगा। संभव है, दोनों आत्म-हत्या कर लें।

यह सुनकर रायसिंह अट्टहास कर बैठे और बोले, "खूब, बहुत खूब। चलो, अब तुम उसे जहर का बीड़ा देने से बच जाओगी। साँप अपनी मौत मर जाएगा। लाठी भी नहीं टूटेगी। दीवानजी ने शायद ऐसा ही कहा था।" खुशी में रायसिंह के मुँह से दीवानजी का नाम अपने आप निकल गया। गंगादे चौंक पड़ीं। उनके सामने दीवानजी की मूर्ति झलक आई। होली वाले दिन दीवानजी रायसिंह के साथ थे। पीथल को दीवानजी आगरे ले गए थे। अभी हाल में बीकानेर से आगरा लौटते समय दीवानजी जैसलमेर आए थे। यहाँ आने के लिए जरूर-से-जरूर बुलावे की बात कह गए थे और खुरशीद का पत्र उसी दिन पीथल को मिला था। यह सब क्या है ? गंगादे किसी भीषण षड्यंत्र के भय से काँप उठीं। उनके चेहरे पर भीषण चिन्ता और विषाद की रेखाएँ खिंच गई।

रायसिंह गंगादे को उदास होता हुआ देखकर बोले, "गंगा ! तुम बेकार चिन्ता करती हो। पीथल चम्पा से प्यार नहीं करता। वह जिससे करता है उसे मैं जानता हूँ। मैंने स्वयं उसे उसकी गोद में प्यार पाते देखा है।"

"पीथल मुझसे कुछ छिपाता नहीं है। मुझे सब मालूम है।"

"हुँह···जिस नीच ने अपनी सगी भाभी के सतीत्व को भ्रष्ट किया। जिसने नवाब साहब की भानजी को भ्रष्ट किया और वह बिचारी कहीं डूब मरी। आज तुम उसीका पक्ष ले रही हो ?"

गंगादे यह अपमान बर्दाश्त न कर सकीं। और धूल भी अपमान पाकर सिर चढ़ जाती है। गंगादे ने किंचित् रोष से कहा, "मेरा आचरण कैसा है, भगवान जानता है। रही बात खुरशीद की, वह अभी तक जीवित है। आपने तो उसे यमुना में डूबो ही दिया था। मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।" यह कहते हुए गंगादे उठीं और खुरशीद का पत्र लाकर उनके हाथों में रख दिया।

रायसिंह पत्र पढ़कर आग बबूला हो गए। एक तो उन्होंने और नवाब साहब ने उसे डुबोया नहीं था। पत्र की यह बात झूठ थी। दूसरी ओर उन्हें तैश आया कि खुरशीद और पीथल उनसे छिपकर अब भी प्यार करते हैं। पत्र परस्पर आते-जाते हैं। तीसरी ओर चम्पा से प्यार का राग चल रहा है। चौथी ओर गंगादे पीथल का साथ दे रही हैं। मानो उसके चारों ओर आग लग गई। वे बौखला गए और पत्र को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। क्रोध को पीते हुए उन्होंने कहा, "ठीक है। लेकिन तुम चम्पा और मानसिंह की शादी रोक नहीं सकतीं। चम्पा के पिता शक्तिसिंह यहाँ हैं। वे स्वयं कन्या-दान देंगे। मैंने तुम्हें यह दिल-सफाई के लिए अवसर दिया था, तुम वह भी खो बैठीं।"

रायसिंह यह सारा कार्य गंगादे के हाथों इस राजनैतिक लाभ से कराना चाहते थे कि इससे मानसिंह और शक्तिसिंह दोनों को वे अपना गहरा मित्र बना सकते थे। उन्हें कोई बात सूझी और कह बैठे, "खबरदार, अगर तुमने इस योजना को पीथल और चम्पा को बताया तो मेरी कसम है।" गंगादे ने मन में सोचा कि कुछ भी हो, कम-से-कम वह इन दोनों प्रेमियों की हत्या में शामिल नहीं होगी। दो प्रेमियों के बीच परमात्मा का वास होता है। उनके बीच काँटा बनना परमात्मा के चरणों में काँटा बनने के समान है।

रायसिंह रातों-रात उठकर मानसिंह के शिविर में आए और नवाब साहब को तुरन्त बुलाया गया। सभी को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि खुरशीद पीथल को सचमुच प्यार करती है, तभी उसने पीथल को पत्र भेजा है। लेकिन यह बात समझने में नहीं आ रही थी कि उसने यह झूठ क्यों लिखा कि रायसिंह और नवाब साहब ने उसे बोरी में बन्द करके दरिया में डलवा दिया था। बस इसी बात पर शक हो गया। कोई-न-कोई गहरी चाल है। यह सबने स्वीकार किया। नवाब साहब की राय यह थी कि कोई चाल या षड़यन्त्र नहीं है। हर लड़की अपने प्रेमी को जीतने के लिए ऐसे ही ऊटपटाँग झूठ बोलती है। उनकी राय से मानसिंह ने गुप्त-चरों का जाल बिछवा दिया कि खुरशीद जहाँ भी मिले, तुरन्त पकड़कर उसे हाज़िर किया जाए।

चम्पा का पीथल के साथ प्यार सुनकर मानसिंह ईर्ष्या से जल उठे। उन्होंने एक प्रश्न भरी दृष्टि से रायसिंह की ओर देखा। रायसिंह ने सिर झुका लिया। फिर बोले, "भाई साहब! मेरी सहानुभूति आपके साथ है, पीथल के साथ नहीं। वह आपके मार्ग में काँटा है, आप खुशी से उसे तोड़ सकते हैं। बल्कि मैं इस बात से ज़्यादा खुश होऊँगा। आज समय आ गया है कि मैं आपको अपना प्रेम जता सकूँ। आपकी खुशी मुझे पीथल से हज़ार गुना प्यारी है।" मानसिंह ने कुछ कहा नहीं, बस मुस्करा दिया।

इसी उधेड़-बुन में सुबह हो गई। मन्दिरों के घण्टे रो उठे। आज सायंकाल चम्पा और मानसिंह की शादी तै हो गई। शक्तिसिंह ने कन्या-दान देना स्वीकार कर लिया।

सहसा सायंकाल की सारी योजना अस्त-व्यस्त हो गई। बादशाह सदलबल दोपहर को ही अजमेर आ धमका और आते ही मानसिंह, शक्तिसिंह और रायसिंह आदि सभी सामन्तों को युद्ध-मंत्रणा के लिए बुला लिया। बादशाह की आज्ञा सभी के लिए अप्रत्याशित थी। वे सभी बादशाह की आज्ञा की ही प्रतीक्षा कर रहे थे, बादशाह की नहीं। उन्हें स्वप्न में भी अनुमान न था कि बादशाह स्वयं आवेंगे।

बादशाह ने सबसे मिलकर यह तै किया कि आज ही रात को महा-राणा पर चढ़ाई करने के लिए कूच कर दिया जाए। चढ़ाई तीन तरफ से हो। एक ओर से मानसिंह, दूसरी ओर से रायसिंह और तीसरी ओर से शक्तिसिंह। इस तरह अकबर ने चतुराई से राजस्थान के सभी हिन्दू राजाओं की तलवारें महाराणा पर उठवा दीं, हिन्दू का सिर और हिन्दू तलवार। हर हालत में उसकी विजय, दोनों हाथ लड्डू।

मानसिंह को यह योजना बहुत बुरी लगी। वासना में विघ्न पड़ने पर क्रोध होता ही है। किन्तु वे कुछ कह नहीं सके। उन्हें मालूम था कि बाद-शाह चम्पा की खूबसूरती पर मरता है लेकिन उन्हें स्वप्न में भी यह मालूम न था कि बादशाह यहाँ किसी तरह चम्पा को पाने के लिए आया है। वह यह भी नहीं जानता कि चम्पा कौन है, वह तो सिर्फ तस्वीर वाली खूबसूरत परी को जानता है। यथार्थ में वह कौन है ? यह उसे मालूम नहीं है। बस, इसी बात से मानसिंह के दिल को ज़रा शांति मिली। फिर भी वे अपने को रोक न सके। उन्होंने अर्ज़ किया कि कल हम हिन्दुओं का पर्व है। आज्ञा मिले तो कल यहाँ स्नान-पूजा करके परसों चढ़ाई की जाए।

बादशाह ने थोड़ी देर इस अर्ज़ पर गौर किया और पीछे मानसिंह की बात को मान लिया। मानसिंह खुश हो गए, बादशाह के दिल की गहराई को एक सीधा-सादा राजपूत योद्धा क्या समझे ?

सब लोग चलने लगे तो बादशाह ने मानसिंह को कहा कि काबुल में मिरज़ा हकीम ने विद्रोह कर दिया है। वहाँ पर भी तुरन्त सेना भेजनी है। इसका इन्तजाम भी फौरन होना चाहिए। मानसिंह ने तुरन्त योजना बनाई और उसमें पीथल का नाम डाल दिया। उन्होंने जानबूझ कर बड़ी कमज़ोर सेना बनाई और बादशाह को सुझाया कि यह सेना बहुत मज़बूत रहेगी। मिरज़ा हकीम को जीवित या मृत पकड़कर ला सकेगी। बादशाह पीथल का नाम देखकर मुस्करा दिया मानो सोच रहा हो कि यह तो उसे पहले ही से मालूम था। उसने सोचा, चलो कंटक अपने आप साफ हो जाएगा। योजना मंजूर हो गई। अकबर, मानसिंह, रायसिंह, शक्तिसिंह आदि सभी

खुश थे। पीथल सब की आँख की किरकिरी था। आज उसे बलि का बकरा बनाकर गले में जयमाल डाल दी गई थी। परसों उसे भी काबुल की ओर कूच करने का हुक्म दे दिया गया।

जब मानसिंह आदि बादशाह के पास से उठे तो रात हो गई थी। फिर भी मानसिंह की शिविर में बैठक हुई। प्रश्न था कि चम्पा की शादी किस तरह हो कि बादशाह को कोई खबर न मिले! उसके गुप्तचरों को भी पता न चले। इस प्रश्न पर नवाब साहब ने वशीकरण मंत्र, ताबीज और यंत्र वगैरह सारी चीजों की चर्चा की। किन्तु शक्तिसिंह इस तरह की किसी भी बात पर राज़ी नहीं हुए। कोई भी पिता यह मंजूर नहीं कर सकता कि उसकी बेटी पर प्यार का जादू-टोना चलाया जाए।

आखिर में रायसिंह ने सलाह दी कि कल यहाँ स्नान-पूजा के बाद वह सरस्वती-मन्दिर ज़रूर जाएगी। सरस्वती-मन्दिर पुष्कर से कोस भर की दूरी पर एक बहुत ऊँची पहाड़ी पर है। वहीं से शान के साथ मानसिंह उसका हरण करें जिस तरह भगवान कृष्ण ने रुक्मिणी का किया था, या अर्जुन ने सुभद्रा का किया था या पृथ्वीराज ने संयोगिता का किया था। यह बात राजपूतों के सम्मान के अनुकूल है। शक्तिसिंह राजपूती गौरव की बात तर्कपूर्ण सुनकर राजी हो गए। हाय रे काली खोपड़ी के आदमी का नीच तर्क! तू पाप का पारस है। किसी भी असत्य लोहे को छूकर तू सत्य सोना बना देता है। रायसिंह ने यह बात अपने जिम्मे ली कि चम्पा को थोड़ी दूर पर कहीं एकान्त में किसी काम से बैठा दिया जाएगा और चम्पा-हरण की खबर किसी को नहीं पहुँच सकेगी।

दूसरी ओर शाम को ही यह बात फूट गई थी कि चम्पा और मानसिंह की शादी होने वाली थी, लेकिन बादशाह के आ धमकने से बात रुक गई। ब्राह्मणों का दान-दक्षिणा मारा गया था। वे बादशाह को गाली दे-देकर निहाल हो गए थे। बात उन्हीं के मुँह से फूट निकली थी। पीछे मानसिंह ने उन्हें बुलाकर दान-दक्षिणा देकर मनाया और सन्तुष्ट किया। तब वे चुप हो गए और अपनी पहले कही हुई बात को झुठला दिया।

लेकिन हर हालत में यह खबर पीथल और चम्पा को मिल गई। वे तुरन्त मिले। दोनों की निगाहों में बेवसी के आँसू थे। पीछे पाथल ने कहा, "बादशाह सलामत के आने से हमारा भाग्य फूटते-फूटते बच गया। परमात्मा उसे लम्बी उमर दे।" चम्पा के मुँह पर एक फीकी मुस्कान रँग गई और लम्बी साँस लेती हुई बोली, "मेरे भोले पीथल ! तुम क्या जानो ? इस ओर कुआँ, उस ओर खाई। मानसिंह और बादशाह, ये दोनों ही मेरे लिए कुआँ और खाई की तरह से हैं। शायद कल तुम कुछ सुनने भी न पाओगे, तब तक मेरे हाथ-पैरों में बेड़ी डालकर बादशाह के यहाँ पटक दिया जाएगा।"

पीथल वीर था। कलाकार था। उसने हँसकर कहा, "जब तक मेरी भुजाओं में शक्ति है, तब तक तुम्हें मुझसे इन्द्र भी नहीं छीन सकता। मेरे मरने के बाद चाहे तुम कुछ भी करो।" चम्पा हँसकर बोली, "प्रियतम ! तुम्हारी प्रेयसी कायर नहीं हो सकती। तुम इतना विश्वास देते हो तो मुझे जीवित कोई भी तुमसे छीन नहीं सकता। अपने प्राणों की स्वामिनी मैं हूँ। हाँ, लाश पर मेरा अधिकार नहीं। कोई गीदड़ भी ले सकता है।" दोनों अपूर्व साहस से भर उठे। दोनों ने निश्चय किया कि अपनी शिविर से बाहर हम दोनों साथ-साथ रहेंगे और हर परिस्थिति का मुकाबला डटकर करेंगे।

प्रातःकाल पुष्कर का स्नान-दृश्य अपूर्व था। भक्त लोग जल में किनारे-किनारे स्नान करते हुए ऐसे लग रहे थे, मानो आकाश में किनारे-किनारे चारों ओर बादल घिर आए हों। यह दृश्य देखने के लिए अकबर भी किनारे के एक घाट पर एकान्त में आ बैठा था और उसके स्नान आदि का राजसी प्रबन्ध था। चारों ओर पहरा था। मानसिंह आदि ने भी अपने-अपने लिए कुछ ऐसी व्यवस्था कर ली थी जिससे स्नान का दृश्य देख सकें।

सहसा जल में सुरीले कण्ठों की एक ऐसी मादक खिलखिलाहट हुई कि सबकी दृष्टि वहाँ अटक गई। गौर छरहरे बाजरे की गदराई कलगी के समान चम्पा, लालसा और अपनी सखियों के साथ स्नान करते-करते

खिलखिला उठी थीं। खिलखिलाहट का स्वर इतना मधुर एवं तलस्पर्शी था कि मानसिंह का हृदय उसके सुख से तड़प उठा। और सम्राट् अकबर? बेखबर होकर लुढ़क-सा गया था'''तब तक एक बार और वैसी ही खिल-खिलाहट। मानो धरती का दर्द मिटाकर ही चैन लेगी। सम्राट् इतनी मादकता सँभाल नहीं सका। "उफ्'''चाँद'''आह'''खुदा" बस, इतना ही उसके मुँह से निकला और मूर्च्छित हो गया। किसी ने उसे मूर्च्छित होते नहीं देखा।

चम्पा और लालसा जब स्नान करके चली गई तब सम्राट् के पास पिंजड़े में आबद्ध तोते की आवाज़ सुनाई दी, "उफ, चाँद, आह खुदा!" सम्राट के व्यक्ति दौड़ पड़े। पहले यहाँ सम्राट् अकबर अपने तोते के साथ अकेला ही बैठा था। किसी को पास बैठने की इजाज़त न थी। बादशाह की मूर्च्छा से हलचल मच गई। वैद्यों की चाँदी बन आई। किन्तु वह शीघ्र ही सचेत हो गया और उदास मन अपनी शिविर को लौट आया। हाय रे रूप की ज्वाला! तू कितनी मासूम है और कितनी शैतान! जहाँ से सभी पुण्य लूटकर तेजी से लौट रहे थे, वहीं से सम्राट् अकबर अपना सब-कुछ लुटाकर हारे जुआरी की भाँति मन्द-मन्द लौट रहा था। क्यों? रूप और रसिक का सम्बन्ध ऐसा ही होता है। रूप की सार्थकता रसिक को लूटने में और रसिक की सार्थकता लुट जाने में ही है।

दूसरी ओर स्नान के पश्चात भक्तों ने सरस्वती-मंदिर जाने के लिए यात्रा शुरू कर दी थी। जैसलमेर राज-परिवार भी उसमें था। चम्पा और पीथल दोनों साथ-साथ थे। लालसा उछलती-कूदती सबसे आगे-आगे चल रही थी। रास्ते में एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर जाते समय मोड़ था। बारी-बारी से एक-एक ही व्यक्ति आ सकता था। चम्पा आगे थी और पीथल उसके पीछे। ज्योंही चम्पा ने अपना पैर आगे बढ़ाया, पीथल ने उसे सहारा दिया। ठीक इसी समय पीछे से एक सुकोमल हाथ पीथल के कन्धे पर पड़ा। और आवाज़ सुनाई दी, "पीथल! बधाई है। तुम्हारा बेटा पैदा हुआ है, मेरे गर्भ से। जल्दी पीछे लौटो, तुम्हें दिखाऊँ।"

पीथल चौंक पड़ा। तब तक हँसती हुई उस दूधिया रंग की सुन्दरी ने कहा, "चौंकते क्यों हो ? मैं हूँ तुम्हारी खुरशीद।" चम्पा सुन्न रह गई, काटो तो खून नहीं। पीथल अभी कोई जवाब भी न दे पाया था कि चम्पा के पैरों में बिजली नाच उठी, हाथों में चंडी सवार हो गई। वह कहाँ-से-कहाँ दौड़ती-गिरती-उठती भाग गई, कुछ पता नहीं। केवल दो-चार स्थलों पर उसे सैनिकों ने घेरा। किन्तु चंडी जिसके हाथों में नाच रही हो, उसके आगे किसकी क्या बिसात ? गाजर-मूली की तरह काटती हुई भाग निकली। पहाड़ों के रास्ते जब वह कई कोस भाग निकली तो उसने अपने को सँभाला और पाया कि वह अब सैनिक वेष में है। घोड़े पर सवार है। एक नहीं कई तलवारें उसके पास हैं।

शायद रास्ते में मिले सैनिकों को मारकर उसने किसी एक की वर्दी पहन ली थी और किसी का घोड़ा सवारी के काम ले लिया था। अब वह दुनिया में अकेली थी। जिस पीथल का सहारा लेकर वह सारे संसार से नाता तोड़ने को तैयार थी, वही पीथल खुरशीद का प्रियतम था। खुरशीद के पुत्र का पिता था। उसे यह बात मालूम न थी। पहले वह इतना अवश्य जानती थी कि खुरशीद से पीथल की दोस्ती रह चुकी है। लेकिन उसे पहले कभी पता न था कि दोनों के बीच के सम्बन्ध इतने गहरे रह चुके थे कि पति-पत्नी की सीमा को प्राप्त कर चुके थे।

पीथल ने उसे कभी बताया न था। चम्पा को शिकायत इस बात की नहीं थी कि उसका सम्बन्ध खुरशीद से सीमा पार कर चुका है बल्कि उसे सबसे ज़्यादा दुःख इस बात का था कि पीथल ने उससे यह सब-कुछ छिपाया क्यों ? अगर वह छिपाया न होता तो शायद वह क्षमा कर देती और उसकी प्रिया बनी रहती। लेकिन यहाँ तो बात ही दूसरी थी। उसकी दृष्टि में पीथल एक अक्षम्य अपराधी था। वह उसे अब अपनी दृष्टि से देखना भी नहीं चाहती थी ? घृणा ने आखिरी हद को छू लिया था।

दूसरी ओर पीथल खुरशीद को देखकर लहरा उठा। उसका पशुत्व जाग उठा। अपने को रोककर भी वह रोक न सका। किन्तु इतना पूछना

षोडश परिच्छेद

चम्पा के चरणों में भूचाल था, दिमाग में आँधी थी और दिल में तूफान। वह पहाड़ और जंगलों में उड़ी चली जा रही थी। थककर चूर हो गई थी। किन्तु क्षणभर भी कहीं विश्राम का नाम तक न ले सकी थी। पीछे बादशाह के तीन सैनिक अभी तक पीछा कर रहे थे। वह सहसा मुड़ी और साक्षात् दुर्गा की तरह उन पर टूट पड़ी। वे भी वीर सैनिक थे किन्तु पाप के पैर टिकते नहीं। वे भी टिक न सके। चम्पा ने तीनों को धराशाई कर दिया और किसी गम्भीर चिन्ता में डूबकर वहीं बैठ गई। सहसा आँखों में चमक आई। उसने झट सैनिकों की तलाशी ली और चकमक पत्थर पर रगड़कर आग सुलगाई। लकड़ियाँ एकत्र कीं और तीनों सैनिकों में एक को आग में झोंक दिया। सैनिकों की साफ वरदी उसने पहन ली और वरदी के नीचे वाले अपने सारे वस्त्र-आभूषणों को निकालकर वहीं रख दिया। इस समय उसके मुख पर मुस्कराहट रेंग गई। उसने सैनिकों के घोड़ों में से छाँटकर एक को ले लिया और अपने थके हुए घोड़े को खोल दिया। तीनों खाली घोड़ों में से दो के ऊपर मरे हुए दोनों सैनिकों को बाँध दिया और तीसरे को उनके पीछे कर दिया। सबके पीछे-पीछे वह स्वयं चली। अब वह निश्चिन्त थी। धीरे-धीरे जंगल-पहाड़ के रास्ते आगे बढ़ती चली गई।

इधर जब बादशाह के सैनिकों का दूसरा दल पहुँचा तो चम्पा के सारे वस्त्र-आभूषणों को उठा लिया और जली हुई लाश की राख को लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह यह देखकर बड़ा दु:खी हुआ। खुरशीद ने वस्त्र-आभूषणों को पहचान कर बताया कि ये चम्पा के ही हैं।

सरस्वती-मन्दिर जाते समय उसने ये ही वस्त्र और आभूषण पहने थे। कुछ आभूषणों पर चम्पा के नाम खुदे हुए थे जो प्रत्यक्ष प्रमाण थे।

जली हुई राख और हड्डियों के टुकड़े की पहचान न हो सकी। बादशाह को चम्पा के जल-मरने का विश्वास हो गया। उसने उन वस्त्र-आभूषणों तथा राख को मानसिंह के पास यह कहकर भिजवा दिया कि ये सब चम्पा नाम की किसी नारी के मालूम पड़ते हैं। साथ में उसकी चिता की राख का हवाला देते हुए यह लिखा दिया कि यदि आपको इसके सगे-सम्बन्धियों का पता हो या चले तो दे दें। ऐसा करने में बादशाह की चाल यह थी कि मानसिंह अब चम्पा का ख्याल छोड़कर युद्ध का कार्य उत्साह पूर्वक करेगा। किन्तु ऐसा हुआ नहीं। मानसिंह को इससे बड़ा भारी धक्का पहुँचा। वे चम्पा को शायद दिल की गहराई में बिठा चुके थे। उन्होंने इस घटना से रायसिंह और शक्तिसिंह को भी अवगत करा दिया। उन दोनों पर न जाने क्यों, इस घटना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, इसकी सूचना जैसलमेर गंगादे के पास अवश्य भेज दी गई।

उधर चम्पा बढ़ी ही चली जा रही थी। किन्तु प्रत्येक वस्तु की सीमा होती है। थकावट ने उसे घेर लिया था। उसमें इतनी भी शक्ति नहीं रह गई थी कि घोड़े पर से कूदकर उतर जाए। वह उसकी पीठ पर ही लेट-सी गई। आँखें मुँद गईं और...। और कई दिनों बाद जब नींद या बेहोशी खुली तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही। उसने अपने को नितान्त सुसभ्य एवं रमणीय वातावरण में पाया।

भव्य भवन के तिमंजिले कक्ष में उसकी पलंग थी जिस पर वह लेटी हुई थी। कक्ष का कण-कण कलात्मक सौन्दर्य से भरा हुआ था। दीवालों पर एक-से-एक मधुर चित्र बने हुए थे। फर्श नीले रंग की थी। ऊपर दृष्टि पड़ी तो देखा कि छत एक खण्ड शीशे से ढका हुआ है जिसमें सारा नीला फर्श और उसकी पलंग झलक रही है। केश राशि में उलझा हुआ उसका मुँह इस प्रकार झलक रहा है मानो आकाश में बदली हो और बदली में चन्दा झाँक रहा हो। वह मुस्करा उठी, उधर चाँदनी बिखर गई। उसने अँगड़ाई

ली : उधर राशि-राशि तारों के फूल झड़ पड़े।

सहसा मुस्कराती हुई एक दुधिया सुन्दरी ने प्रवेश किया। दोनों एक दूसरे को देखकर मुस्करा उठीं। मानों आकाश में दो चाँद निकल आए हों। रमणी ने चम्पा के सिरहाने वाली छोटी खिड़की खोल दी। सारा कक्ष विभिन्न फूलों की सुगन्धि से भर गया। उस खिड़की से लगा हुआ कुसुम वन था जिसका निर्माण इस तरह हुआ था कि उसमें से शीतल वायु और सुगन्धि ऊपर वाले सभी कक्षों में आवश्यकतानुसार खींची जा सके। चम्पा आह्लादित हो गई। उसकी सूंघने की शक्ति तृप्त हो गई। मद से आँखों में लाल रेशे खिंच आए। मुस्कराती हुई रमणी ने पूछा, "आप स्वस्थ तो हैं ? प्रकृतिस्थ तो हैं ?" स्वर में इतनी लोच, इतनी मादकता, इतना माधुर्य एवं इतनी शिष्टता थी कि चम्पा उसके व्यवहार पर विमुग्ध हो गई। यद्यपि अकड़ और दर्द अभी शरीर में काफी था, फिर भी वह प्रसन्न होकर उठी और रमणी को अपने पार्श्व में बिठा लिया। दोनों ने बातें कीं। परिचित हुईं।

रमणी ने बताया कि उसका नाम रम्भा है और उसके बड़े भाई श्वेतांग इस उपत्यका के स्वामी हैं। लगभग दस कोस की सारी भूमि उन्हीं की है जो परम्परा से चली आ रही है। जाति के ब्राह्मण हैं और सारा परिवार पण्डित है। काशी तक के पण्डित श्वेतांग की विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। वे बड़े ही कला-प्रेमी हैं। सौन्दर्य के उपासक हैं। इसी बीच चम्पा की दृष्टि सामने वाले एक दिव्य चित्र से टकरा गई। यह उसी का चित्र था पीथल का बनाया हुआ। वह एक दम सहम गई। मुँह पर कई तरह की रेखाएँ एक साथ नाच उठीं। रम्भा ने भाँप लिया और उसे शृंगार-कक्ष में लेकर चली गई।

रम्भा ने अपने साथ चम्पा को उष्ण जल से स्नान कराया और गीत गा-गाकर चम्पा का शृंगार अपने हाथों से करने लगी। चम्पा आनन्द और लज्जा से भर गई, मानो नई दुलहिन को सुहागरात के लिए तैयार किया जा रहा हो। वह बार-बार रम्भा के गीतों पर उसे टोकने लगी। दोनों

खिलखिला उठीं और दर्पण के सम्मुख दोनों आमने-सामने बैठ गईं।

रम्भा ने चम्पा के नहाये हुए रूप पर गाकर कहा—

बिजली स्नान कर आई।
मधु राका के सावन में॥

चम्पा ने अगली कड़ी गाकर पूरी की—

रे छवि ने मुँह देखा है।
तेरे तन नव पावन में॥

अब दोनों में ठन गई। एक दूसरे के सौन्दर्य पर गीतों में व्यंग बरस पड़ा। रम्भा ने चम्पा की बाहुओं को झटककर कहा—

अलबेली बाहु कहो ना।
सच बोलो हे मधु लहरी॥

चम्पा ने उत्तर दिया—

यह तो अनंग-धनु की है।
शिथिल शिंजिनी दुहरी॥

चम्पा के चाँद-जैसे मुँह पर बिखरी हुई एक अलक को हिलाकर रम्भा ने पूछा—

विधु-मण्डल में कैसी।
अंजन रंजित यह रेखा॥

चम्पा ने हँसकर कहा—

चन्दा ने नागिन डँस दी।
ऐसी अनहोनी लेखा॥

इसी प्रकार दोनों गा-गाकर एक दूसरे को बड़ी देर तक रिझाती रहीं। तब तक पास वाले कमरे में श्वेतांग का संगीत सुनाई पड़ा। वह वंशी पर कोई मधुरतम राग अलाप रहा था। रम्भा की आँखें उसे सुनते ही किसी सपने में खो-सी गईं। अब चम्पा की बारी थी। उसने झट गाकर पूछा—

हैं किसे निरखती आँखें।
सपनों में मेंहदी रचकर॥

रम्भा के अधर उत्तर में हिल पड़े—

हैं तुम्हें निरखती भोली।
सीपी में सागर भरकर॥

चम्पा ने व्यंग में बड़ी अदा से कहा, "हाय रे सीपी!" रम्भा शरमा गई। चम्पा ने रम्भा को बाहुओं में भर लिया। दोनों मुस्कराती हुई श्वेतांग के कक्ष में चली गई। श्वेतांग ने संगीत बन्द कर दिया और श्रृंगार से पूर्ण चम्पा को देखते ही रह गया। वह कभी उसे देखता और कभी कक्ष में टँगी हुई तस्वीर को। यह तस्वीर भी पीथल वाली ही थी। चम्पा भाँप गई, तब श्वेतांग ने अपनी झेंप मिटाते हुए अपने चित्रों को दिखाया। उसने भी कुछ चित्र लगभग वैसे ही तैयार किये थे, किन्तु उनमें वह पवित्र भावना नहीं थी।

चम्पा ने श्वेतांग के प्रति कृतज्ञता प्रगट की और अपना पूरा-पूरा परिचय बता दिया। इस परिवार की शिष्टता देखकर उसने अनुमान लगा लिया था कि यहाँ अनिष्ट की आशंका नहीं है। श्वेतांग ने पूछा, "अब आगे क्या विचार है?"

चम्पा—मैं किसी तरह शीघ्र महाराणा के राज्य में पहुँचना चाहती हूँ।

श्वेतांग—क्यों? यहाँ कोई कष्ट है आपको?

चम्पा—नहीं। परन्तु मुझे अपने देश को आततायी अकबर के हाथ से बचाना है। मानसिंह की विषैली आँख से बचाना है।

श्वेतांग—कैसे बचाएँगी?

चम्पा—चारिणी बनूँगी। एक-एक गाँव, एक-एक व्यक्ति को जगाऊँगी। पेड़-पौधों में भी इतनी आग पैदा कर दूँगी कि उसमें अकबर जलकर भस्म हो जायगा। उस आग की लपटें एक दिन बढ़कर सारी दुनिया पर छा जाएँगी। तब पीछे एक ऐसे मानव-साम्राज्य की नींव पड़ेगी, जहाँ प्रेम और सद्भावना से सभी जी सकेंगे, सभी सबसे प्यार और स्वतन्त्रता का आदर करेंगे।

श्वेतांग यह सुनकर हँस पड़ा और बोला, "अकबर भी यही करने जा

रहा है। पहले वह सारे भारत को एक शासन के आधीन करना चाहता है ताकि वह सबमें उच्च प्रेम-भावना भर सके।"

चम्पा—प्रेम की नींव ईर्ष्या-घृणा, रक्तपात और बलात्कार पर नहीं टिक सकेगी। प्रेम प्रेम से ही पैदा होता है। सारे भारत में एक शासन का होना आवश्यक है, लेकिन तलवार के बल पर नहीं, प्रेम के बल पर।

श्वेतांग—अकबर ने प्रेम का अच्छा परिचय दिया है। लगभग सभी हिन्दू राजाओं की राजकुमारियों के साथ विवाह और प्यार किया है। सबके साथ सम्बन्ध जोड़ा है। उधर महाराणा व्यर्थ की हठ पर हैं। मानते ही नहीं। फिर युद्ध के अतिरिक्त रास्ता ही क्या है?

चम्पा—वह प्रेम और सम्बन्ध नहीं है। दूसरों को अपमानित करके अपने को उच्च बनाने की भावना है। कामुकता और वासना की भावना है। और'''इस नींव पर खड़ा होने वाला साम्राज्य टिक नहीं सकता। देख लेना, एक दिन उसकी सन्तानें इसी वासना में डूबकर सारे साम्राज्य को स्वाहा कर देंगी और सारी भारतीय प्रजा निराधार हो जायगी।

श्वेतांग—आपने तो ज्योतिषी को भी मात कर दिया। सारा भविष्य बता दिया। कहीं हिन्दू-मुसलमान का पक्ष तो नहीं है?

यह कहता हुआ हँस पड़ा।

चम्पा—निरुत्तर होने पर ऐसे ही तर्क किये जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान का पक्ष इसमें कहाँ है? सीधी-सी बात है। अकबर ज़बर्दस्ती महाराणा का राज्य हड़पना चाहता है। यह ठीक नहीं है। यदि उसका विचार ठीक है तो आपस में बातचीत से सुलझ ले। राज्य ले ले या कुछ भी करे। तलवार से मारकर राज्य छीनना तो बर्बरता है। और वैसे भी शासन में किसी प्रबल विरोधी का रहना आवश्यक है। अन्यथा शासक निरंकुश हो जायगा।

श्वेतांग—ठीक है, लेकिन आप क्यों पचड़े में पड़ती हैं? ज़िन्दगी बरबाद करने पर तुली हैं। अरे, मौज उड़ाइए। सुखी रहिए।

चम्पा—कृतज्ञ हूँ। किन्तु···।

श्वेतांग—किन्तु पहले आप अपने रूप, सौन्दर्य और यौवन के प्रति कृतज्ञ होइए। इन्होंने भला आपका क्या बिगाड़ा है? अजी, सुख से जीओ। ऋण लेकर भी घी पीओ···"यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।"

चम्पा सन्न हो गई। कुछ उत्तर न दे सकी। तब तक भोजन का समय हो गया था। चम्पा ने कहा, "पहले मैं पूजा करूँगी, कोई मन्दिर है यहाँ?"

रम्भा हँस पड़ी। उसने कहा, "हम लोग नास्तिक हैं। चार्वाक के वंशधर हैं।"

श्वेतांग ने कहा, "हम ईश्वर को नहीं मानते।"

चम्पा—पिछले जन्म में तो आप नास्तिक नहीं रहे होंगे।

श्वेतांग—पुनर्जन्म केवल मूर्खों की कल्पना में होता है। ईश्वर नाम के धतूरे का बीज खाकर हम पागल नहीं बनते। हम केवल इस बात में विश्वास करते हैं कि जीवन के सारे सुखों का उपभोग करें। रस, राग और माधुर्य को नये-से-नये ढंग में भोगें।

चम्पा—मुक्त भोग और केवल भोग। क्यों?

श्वेतांग—मुक्त और मर्यादा से भोग को कलंकित न करें।

तब तक सभी भोज के लिए बैठ गए थे। मदिरा का पान सारे परिवार ने बड़ी खिलखिलाहट और उमंग के वातावरण में किया। चम्पा ने उसे नहीं छुआ और बड़ी बारीकी से उन लोगों का अध्ययन करने लगी। भोजन प्रारम्भ हुआ। बीच-बीच में श्वेतांग कहता रहा, "आप स्वयं तो सुख से रहना नहीं चाहतीं। दूसरों को सुखी क्या बनाएँगी?" अन्त में सबने पुनः मदिरा पी और पुनः भोजन में लग गए। इस तरह भूख पैदा करने के लिए मदिरा पीते जाते थे और भूख को शान्त करने के लिए खाते जाते थे। घंटों तक यही क्रम रहा। अब श्वेतांग और उसके परिवार पर पूरा नशा चढ़ चुका था। उसके एक ओर उसकी सौतेली माँ थी और दूसरी ओर

उसकी बहिन रम्भा। चम्पा सामने बैठी थी। उसने पूछा, "आपने अपनी पत्नी से परिचय नहीं कराया ?"

इस पर रम्भा और उसकी सौतेली माँ हंस पड़ीं। तब तक श्वेतांग बोल पड़ा, "विवाह तो मनुष्य को आधा कर देता है। इससे बढ़कर बेहूदा कोई कार्य नहीं। यह प्रश्न करके आपने सारा मज़ा किरकिरा कर दिया।"

तब तक रम्भा ने एक गिलास मदिरा और ढाल दी और नशे में उसके पास लुढ़क गई। दूसरी ओर श्वेतांग की सौतेली माँ का भी यही हाल था। वह किसी दूसरे की गोद में थी। सभी स्त्री-पुरुष मनचाहे ढंग से किसी-न-किसी की गोद में थे। श्वेतांग ने हँसकर रम्भा को उठाया और ज़ोर से चूमता हुआ बोला, "परी है परी। प्यार की कला इसे ही आती है।" कहता हुआ आलिंगन में बाँध लिया। चम्पा यह देखकर काँप उठी और बोली, "यह क्या ? आप उसे बहन कह रहे हैं और कर क्या रहे हैं ?"

श्वेतांग—हुँह······सम्बन्ध और सम्बोधन का भारी अन्तर भी आप नहीं समझतीं।···हुँह···आप निरी बच्ची हैं। जब ज़िन्दगी का स्वाद आप-को आवेगा, आप तब समझेंगी। ···आओ, बताएँ, इसमें कितना रस है।" कहता हुआ वह चम्पा की ओर बढ़ा। चम्पा अवाक् रह गई। रम्भा अभी वहीं मस्ती में बेहोश पड़ी थी। चम्पा तेज़ी से बाहर निकली। श्वेतांग लड़-खड़ाकर गिर पड़ा।

चम्पा के पैर के नीचे से धरती खिसक गई थी। वह किसी तरह लुकते-छिपते उस भवन से, उस नगर से दूर सुदूर भाग जाना चाहती थी। उसका दिमाग कुछ काम नहीं दे रहा था। शिष्टता के परदे में छिपे हुए उस राक्षस पर रो पड़ी। समाज के बीच उनके द्वारा फैलाए गए विषैले परिणामों को सोचकर उसका माथा ठनक उठा। दिमाग में आंधी भर आई और दिल में प्रलय के कण समा गए। किन्तु वह बन्द थी महल में। भाग न सकी।

जब रम्भा को होश हुआ तो वह भागती हुई चम्पा के पास आई और रो-रोकर कहने लगी, "बहन ! तुम भाग चलो यहाँ से। यहाँ का तो यही

हाल है। सभी साढ़े तीन हाथ के तन के पुजारी हैं। मन के नहीं। अपने सुख के लिए जीते हैं। विकृत बुद्धि है। सभी अपने सुख के लिए एक-दूसरे को निगल जाना चाहते हैं। नीति, आचार और विवेक का इस समाज में नाम तक नहीं है।"

चम्पा—और न जाऊँ तो ?

रम्भा—तो केवल दो रास्ते हैं। या तो यहाँ के इस विषैले समाज में मिल जाओ नहीं तो श्वेतांग तुम्हें बादशाह को देकर कोई राजनैतिक लाभ उठाएगा। उसके पास हृदय नहीं, केवल विकृत बुद्धि है। मेरा जी भर गया है इस नारकीय जीवन से।

चम्पा ने शीघ्रता की। रम्भा को कुछ संकेत दिया। दोनों ने जल्दी-जल्दी में कुछ सामान लिया। रम्भा महल और राज्य का सारा रहस्य जानती थी। दोनों वहाँ से दूर सुदूर भाग निकलीं। तब तक महाराणा का राज्य आ गया था। अब दोनों चारिणी थीं। चारण सूरचन्द टापरिया ने उन दोनों को अपनी धर्म-बहिन स्वीकार कर लिया था। वह स्वयं मेवाड़ का देश-भक्त चारण था।

सप्तदश परिच्छेद

लालसा आज बहुत उदास है—सचमुच बहुत उदास । इतनी बड़ी उदासी तो शायद उसकी छोटी-सी मासूम ज़िन्दगी में कभी भी न आई—कभी न आई । आज सुबह से ही वह खिड़की में बैठी है और सुबक-सुबक-कर रो रही है । रोने का तार ही नहीं टूटता । न जाने रात को कब वह उठ गई थी और तबसे यही हाल है । दिन चढ़ आया है, लेकिन उसे होश नहीं । उससे रहस्य छिपाया गया है । उसे पता नहीं कि चम्पा एकदम कहाँ गायब हो गई और पीथल ··· उफ् । वह इतना क्यों उदास था, रो रहा था ? मानों मौत के साये ने उसके मुँह को ढक लिया हो । यह सब क्या है ? उसे सहसा युद्ध पर जाना पड़ा । कैसे गया होगा ? कहाँ तक पहुँचा होगा ? कैसे होगा ? ईश्वर जाने । उसके सिर में दर्द है या दर्द में सिर है, कुछ पता ही नहीं चल रहा है । बस, ऐसा जी में आरहा है कि वह ज़ोर से सिर को पत्थर से फोड़ दे और जो कुछ उसमें अन्दर बैठा हुआ है, वह निकल जाए । सिर हलका हो जाए ।

जब मनुष्य का बस नहीं चलता तो ईश्वर की बहुत याद आती है । लालसा को भी इस धरती पर बस ईश्वर का ही अब भरोसा-सा लग रहा है जैसे सूचीभेद्य घने अंधकार में कोई क्षीण प्रकाश की रेखा हो । वैसे वह संस्कारवश पूजा नित्य करती है । तन के सारे अंग भगवान में झुक जाते हैं लेकिन मन तो पीथल में झुका रहता है । लेकिन आज···आज की तो बात ही निराली है । न उसने स्नान किया है, न मुँह धोया है । पूजा के लिए फूल नहीं है, अक्षत नहीं है, कोई नैवेद्य नहीं है । फिर भी वह भगवान की मूर्ति के पास सिर पटककर बैठ गई है । पहले मूर्ति से कुछ दूर बैठती थी,

आज बिल्कुल सटकर बैठ गई है। और आँसुओं का अर्घ्य अटूट होकर स्वतः चढ़ रहा है।

पहले वह जोर जोर से बोलकर मंत्र-पाठ करती थी। आज न मंत्र है, न आवाज। बस मन-ही-मन कह रही है—भगवान्! मन नहाया नहीं है तो हाड़-मांस का यह तन नहलाकर तुम्हारे सामने क्या लाऊँ ? और फूल तोड़कर क्या लाऊँ ? लो इस धरती पर जितने भी फूल जहाँ कहीं भी खिले हैं, उन सबको बिना तोड़े हुए ही तुम्हें चढ़ा रही हूँ—बाहर ही क्या, मेरे दिल के भीतर भी जितने फूल आज तक खिले हैं या भाग्य से खिलने वाले हैं, उन सबको तुम्हें समर्पण करती हूँ। भगवान ! इस अभागिन की बात सुन लो। देखो, कहीं मेरे पीथल को कुछ होने न पावे। वह कहीं भी रहे, उदास न रहे। उसके दिल की फुलवाड़ी तुम हँसा देना जगत-पिता ! मेरी सारी खुशियाँ उसे मिल जाएँ और उसके सारे दुःख मुझे दे दो प्रभु ! आज तक तुमसे मैंने कुछ माँगा नहीं है···आज मुझे, बस, यही दे दो। फिर कभी कुछ न माँगूगी। बस, उसकी ज़िन्दगी के सारे अभिशाप, दुःख और काँटों से मेरी ज़िन्दगी भर दो और मेरे भाग्य के, इस जन्म के और अगले करोड़ों जन्मों के भी, सारे सुख उसे दे दो। बस, मैं उसे खुश देखूँ। काँटों की शय्या पर सोकर उसे फूलों की शय्या पर मुस्कराता देखूँ ! दे दो !! दे दो !!!"

आँसू की धार खरखराकर वह पड़ती है। उसका तन अचेत है। मन दूर; बहुत दूर पीथल को खुश देखने के लिए दौड़ पड़ता है···देखती है पीथल को। पीथल सामने खड़ा है और कह रहा है, "तुम्हारा मैं कौन हूँ ? तुम मेरी कौन हो मुझ पर दया करने वाली ? तुमने अपनी खुशियों के ढेर सारे ये फूल क्यों भेजे हैं ? ···" और वह गुस्से में आकर फूलों की ढेरी को पैरों से रौंद देता है। लालसा के मुँह से एक तीखी चीख निकल पड़ती है। बन्द आँखें खुल जाती हैं। सामने भगवान की मूर्ति मुस्करा रही है। वहाँ पीथल नहीं है, कोई नहीं है। वह तेजी से भागकर अपने कक्ष में आती है। तब तक ऊपर से एक छिपकली उसके सिर पर गिर पड़ती है।

रोआँ-रोआँ अनिष्ट और अशुभ की आशंका से काँप उठता है। वह धड़ाम से पलंग पर गिर जाती है, कलेजा धक-धक करने लगता है। वह फूट पड़ती है।

दासी सब कुछ देख रही थी। आगे उससे नहीं देखा गया। वह हाँफती हुई गंगादे के पास पहुँची। गंगादे स्वयं भी बहुत ग़मगीन थीं। भीतर ही भीतर दम घुट रहा था। आँसुओं का बोझ गले अटका हुआ था और अधरों पर मुस्कराहट थी। तेज़ी से उठीं और आँधी की तरह लालसा के पास आई। सिर सहलाया और सहलाते-सहलाते आँखों से बादल न जाने कब बरस पड़े, उन्हें पता नहीं। सहानुभूति से पिघलकर लालसा के दिल पर बैठी हुई बरफ़ की शिला झरने की तरह झर उठी। और बरसात से धरती-आसमान एक हो उठे।

जब बरसात कुछ हलकी हुई तो गंगादे ने कहा, "तुम पानी हो पानी—सिर्फ पानी। तुम्हारी आँखें पानी, तुम्हारा दिल पानी, दिमाग पानी और सारा स्वभाव पानी—बस पानी स्वच्छ, सरल, सहज। अरे! ज़रा पत्थर भी बनो।"

लालसा अपनी आँखों को पोंछती हुई बोली, "क्या मतलब? क्या पानी? और क्या पत्थर?

गंगादे—यही प्यार। तुम सिर्फ प्यार हो प्यार। इसे बाँध रखने के लिए थोड़ा पत्थर भी बनो। बाँध भी बनो।

लालसा खीझ उठी और आवेश में आकर बोली, "प्यार! प्यार!! प्यार!!! क्या रट लगा रक्खी है तुमने? क्या बिगाड़ा है मैंने तुम्हारा? ख़ामख़ाह शक में मरती हो। तुम जिज्जी नहीं हो, शक हो शक—सिर्फ शक।"

गंगादे—ज्यादा बनने की कोशिश मत करो लालसा। ये मोती यूँ ही नहीं लुटाए जा रहे हैं। जबसे पीथल गया है तब से धरती आसमान पर उठा लिया है तुमने।

लालसा डाँट खाकर रो पड़ी और सिसकती हुई बोली, "मैं कहाँ प्यार करती हूँ पीथल से? तुम्हें कलंक लगाते शरम भी नहीं आती। तुम्हारी

क़सम, माँ की क़सम, पिताजी की क़सम, राम क़सम मै सच कहती हूँ और एक तुम हो जो दिन रात इसी शक में ···" लालसा आगे कुछ न कह सकी। बस फूट-फूटकर रो पड़ी और गंगादे से दूर हटकर आँचल में मुँह छिपा लिया।

गंगादे ने एक उच्छ्वास ली और मन-ही-मन रो पड़ीं। सोचने लगी, "यह लड़की कितनी नादान है! कितनी भोली और कितनी नासमझ!! रो-रोकर इसने स्वास्थ्य नष्ट कर लिया। मर रही है पीथल के लिए और यह भी नहीं जानती कि वह उसे प्यार कर रही है। बस, यह सिर्फ हृदय है। बुद्धि और चतुराई से हज़ारों कोस दूर। क्या करूँ? क्या न करूँ?? भला यह क्या जाने कि···"

इसी बीच दासी ने सील-मोहर किया हुआ एक कपड़े का बण्डल गंगादे के सामने रख दिया और बोली, "बड़े सरकार ने तोहफ़ा भेजा है, सवार लाया है।"

गंगादे ने उदास मन से उस तोहफ़े के बण्डल को उठाया। उदास भाव से देखा और ज्यों का त्यों एक ओर रख दिया। खोला तक नहीं।

लालसा ने दासी की बात सुन ली थी। उसने दृष्टि फेरी और अपनी जीजी को बहुत उदास देखकर मुस्करा उठी। शायद उन्हें बहलाने के लिए। "जीजाजी ने भेजा है जीजी! खोलो ना! देखो तो मेरे लिए क्या भेजा है?" गंगादे न हिलीं, न डुलीं। बस, देखने लगीं एकटक लालसा की धुली हुई आँखों को। "उफ्···कितनी निर्मल! कितनी नादान!! बस, पानी है पानी···सिर्फ पानी!" यही सोच रही थी कि लालसा उछलकर गुनगुना उठी जैसे किसी रोते हुए बालक को खिलौना मिल गया हो। उसने अपनी जीजी को सुना-सुनाकर जीजाजी की बेरहमी के गीत गाए। उसकी भोली बचकानी अठखेलियों को देखकर गंगादे के अधरों पर एक मुस्कान रेंग गई और आँखों से दो मोती चू पड़े···सभी एक साथ। यह समझौते का चिह्न था।

अब लालसा मना करने पर भी नहीं मानी। गंगादे अपने पति की ओर से इतना अपमान पा चुकी थी कि उनके द्वारा भेजे हुए तोहफ़े को खोलना

तक न चाहती थी। उन्होंने लालसा को भी मना किया कि रहने दो। रख दो कहीं। क्या करना है तोहफ़े का। जब तोहफ़ा भेजने वाला ही······।

लालसा नहीं मानी और हँसते-हँसते खोल ही दिया बण्डल को और पछाड़ खाकर गिर पड़ी—सामने बिखर गए चम्पा के वस्त्र, आभूषण, राख, हड्डी और एक पत्र···"तुम्हारी नासमझी का तोहफ़ा सँभाल लो। पहचान लेना ये किसके हैं। उसकी माँग में सिन्दूर नहीं भरने दिया तुमने··· यही चाहती थी न! आखिर बिचारी जल मरी।···मानसिंह, रायसिंह, शक्तिसिंह।"

सारे महल में कोहराम मच गया। मातम की स्याही सबके मुँह पर पुत गई। बिचारी चम्पा शक्तिसिंह की बेटी भले ही थी लेकिन नाम मात्र को। उसका सारा लालन-पालन और बचपन इसी महल में बीता था, महल का कण-कण उसे पहचानता था, प्यार करता था। उसी महल के बीच उसकी राख, वस्त्र, आभूषण और व्यंग का घृणात्मक पत्र। मानो माँ की आँसू भरी गोद में बेटी की लाश हो और लोग कह रहे हों, "तुम्हीं ने तो ज़हर दिया है इसे। अब रोती क्यों हो?"

अष्टदश परिच्छेद

प्रेम और प्रार्थना में भारी शक्ति है। जो काम बड़े-बड़े प्रयत्नों से नहीं सिद्ध होते वे प्रार्थना से बन जाते हैं। यह सोलह आने सच है। लालसा की प्रार्थना न जाने कब प्रभु ने स्वीकार कर ली। 'जाको राखे साँइयाँ, मारि सके न कोय।'

पीथल अभी लाहौर ही पहुँचा था कि वहाँ के शाही हाकिम ने बताया कि काबुल का विद्रोह समाप्त हो गया है। मिरजा हकीम ने माफी माँगी है। बादशाह को इसकी खबर कर दी गई है। फलतः पीथल बादशाह की आज्ञा आने तक वहीं रुका रहा और तत्पश्चात् वापस लौट पड़ा। किन्तु उसका मन ववंडर बना हुआ था। उसका सपना सच होते-होते झूठ हो गया था, उसकी चम्पा उससे बिछुड़ चुकी थी। वह सेना के साथ आगरे नहीं गया और अपना त्याग-पत्र बादशाह को भेजकर बीकानेर पहुँचा। बीकानेर उसका अपना राज्य था। पीथल तीन भाई थे--रायसिंह, रामसिंह, और पृथ्वीसिंह। पृथ्वीसिंह को सभी प्यार से पीथल कहते थे। रायसिंह और पीथल शाही नौकरी में थे। रामसिंह भी राज्य सँभालते थे।

बीकानेर में रामसिंह ने जब अपने अनुज को दुःखी और संतप्त देखा तो रो पड़े। वे बार-बार अपने को धिक्कारने लगे, "लानत है मेरी ज़िन्दगी पर जो मेरा अनुज रो-रोकर ऐसा हो गया है, उसकी हड्डियाँ निकल आई हैं। जो चेहरा सर्वदा हँसी और खिलखिलाहट से भरा रहता था, वही आज मौत की छाया से ग्रसित है। उन्होंने पीथल से सारा किस्सा बार-बार सुना, सोचा, विचारा। उनके मस्तिष्क में खुरशीद, लालसा और चम्पा के नाम बार-बार आने लगे। तब वे एकटक देखने लगे पीथल की ओर।

पीथल सचमुच बिल्कुल काला पड़ गया था। आँखों के लाल डोरे पीले हो गए थे। वह समय से पहले ही बूढ़ा हो गया था। रामसिंह से यह सब नहीं देखा गया। वे क्रान्तिकारी जीव थे। वैसे भी उन्हें राज्य में रुचि नहीं थी और भाई रायसिंह की गुलामी-नीति से भीतर-भीतर ही कुढ़ते थे। जब उन्हें पीथल से सारा समाचार मिला तो आग-बबूला हो गए—अकबर पर भी, मानसिंह पर भी और अपने भाई रायसिंह पर भी। हाँ, उनके मन में भक्ति थी तो केवल अपनी भाभी गंगादे के लिए। उसी के डर से वे सर्वदा मौन रहते थे। आज भी काँपते थे। सचमुच पारिवारिक जीवन के लिए भाभी ही एक ऐसी केन्द्रीय शक्ति होती है जो सबको समेट सकती है। यही गंगादे ने भी किया था। तभी तो सभी उससे काँपते थे और माँ-बाप से भी ज्यादा मानते थे।

रामसिंह ने आव देखा न ताव। पीथल को लेकर भाभी के पास जैसलमेर चल पड़े। वहाँ आने पर चम्पा के जल मरने का समाचार पाते ही उनका कलेजा टूक-टूक हो गया और फूट फूटकर रोने लगे। पीथल को छाती से चिपका लिया और अपने आँसुओं से उसका कपोल धोते रहे। और पीथल ? ···उसे तो इस समाचार से न जाने क्या हो गया ? पत्थर बन गया, बिल्कुल पत्थर। आँसू आते न थे, खाना-पीना बन्द कर दिया था। गूँगा था गूँगा। बिल्कुल गूँगा। कानों ने सुनना बन्द कर दिया था। बहरा शायद सुन भी ले, पीथल कुछ सुनता ही न था। वहाँ बस आँखें खुली हुई थीं। लेकिन देखता वह कुछ न था। बस, पागलों की तरह एक टक शून्य में निहारा करता था।

इन घटनाओं से रामसिंह रामसिंह न रहे। प्रेतसिंह बन गए--बिल्कुल खून के प्यासे। जब भ्रातृत्व का प्यार जागता है तो भगवान् को भी मात कर देता है। आज वे भाभी के मनाने पर भी न माने और सहसा अपना घोड़ा ठीक करके दौड़ पड़े चित्तौड़ की ओर। जाते समय उनकी आँखें भरी हुई थीं। कण्ठ भर्राया हुआ था। उन्होंने केवल इतना कहा, "भाभी ! इस अभागे देवर को माफ़ करना। मैं जा रहा हूँ वहाँ···देखो वहाँ, जहाँ से कोई

राजपूत लौटकर नहीं आता । मैं अब बवंडर बनकर टकराऊँगा अकबर से । और आज से मेरे बड़े भाई रायसिंह नहीं हैं, महाराणा प्रताप हैं । अगर कहीं शक्तिसिंह मिल गए तो बता दूँगा कि प्रेम और देश के ग़द्दार के साथ कैसा बर्ताव किया जाता है ।···सामने पीथल खड़ा था पत्थर की निर्जीव सूखी मूर्ति की तरह । उन्होंने झपटकर उसे गोद में उठा लिया और फफक-फफक कर रो उठे । धरती सिहर उठी, आसमान हिल उठा और भाभी पछाड़ खा-कर धड़ाम से गिर पड़ीं । जब सचेत होकर उठीं तो वह आग, चिन्गारी और मौत का सच्चा दोस्त रामसिंह वहाँ न था । घोड़े पर बैठते समय उसने पीथल को चूमा था और कह गया था कि यदि मैं सचमुच तुम्हारा भाई होऊँ तो दुर्गा माता ! आज मेरी तक़दीर में लिख दो कि लौटूँ तो पीथल के सपने को यमराज के पास से छीनकर लेकर लौटूँ । नहीं तो दुबारा दिल के इस टुकड़े अनुज का प्यारा मुँह देखना नसीब न हो । वह बवंडर की तरह उठा था और आँधी की तरह उड़ चला था चित्तौड़ की ओर ।

और लालसा ? किसीने भ्रातृत्व निभा लिया आँधी के समान उड़ करके, किसीने भाभीपन निभा दिया सब कुछ बलिदान करके । विसूर रही है बिचारी लालसा···वह क्या निभाए ? और क्या करके निभाए ? पीथल उसके प्राणों से भिन्न तत्त्व हो तब तो कुछ करे ? यहाँ तो उसका निजी अस्तित्व कुछ है ही नहीं । वह तो उससे भी अधिक जड़, पत्थर और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर बैठी है । उसके दुःख को और भी गहरा बनाती जा रही है । उसे कोई छोर ही नहीं मिलता । वह सोच रही है—ठीक है । सब पीथल के कुछ हैं तो कुछ करते हैं । वह उसकी क्या है जो कुछ करे और बस, इसी बात पर रो पड़ती है—सचमुच बहुत रोती है । वह अपना प्राण दे सकती है । बस पीथल एक बार कह दे, आज्ञा दे दे ।

इसी अन्धकार में दिन बीते ।

रातें बीतीं ।

और समय की धार में चन्दा-सूरज उगते-डूबते चले गए ।

न पीथल कुछ कह सका लालसा से, और न लालसा पीथल से ।

फिर समय ऐसा भी आया कि······

दिन नंगा हो गया।

रात नंगी हो गई। चाँदनी बिखर गई। और पीथल पागल हो गया। उसे उस चाँदनी रात की याद आ गई, जिसमें वह और चम्पा मिले थे और अपने सम्बन्ध को पक्का कर लिया था। तब चम्पा ने कहा था, "ये चाँद-सितारे साक्षी हैं, मैं तुम्हारी हूँ और केवल तुम्हारी ही रहूँगी"—बस, इसी पंक्ति पर बिजली कौंध गई, बादल गड़गड़ा उठे, प्रलय चीत्कार कर उठा और पीथल ने अपने कानों में उंगली डालकर उन आवाज़ों से बचना चाहा। लेकिन आवाज़ें सहज आवाज़ें नहीं होतीं, एक पूरा संसार होती हैं। वे आती हैं और अपने पूरे संसार को लेकर आती हैं···और प्राणों पर इस तरह चिपक जाती हैं कि साँसें ले सकना भी मुश्किल हो जाता है।

पीथल भी साँस न ले सका। मूच्छित होकर गिर पड़ा। मुँह पर ज़रदी छा गई और सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया। लालसा की चीख निकल गई और गंगादे सन्न हो गईं। रहस्य किसी को मालूम न था······हायरे अभागा पीथल! दिल का तू कितना धनी था और प्यार का कितना निर्धन, रंक। यह वही स्थल है जहाँ तुमने फूलों की सुरभित गोद में मधुरतम स्वप्न पाया था। आज वहीं तुम्हारी मूच्छित लाश पड़ी है। पता नहीं, तुम्हारी लाश बेहया है या ज़िन्दगी।···शायद ज़िन्दगी।

महल में कुहराम छा गया। राजवैद्य ने सेवा की। पीथल साँस लेने लगा। लेकिन मूर्च्छा नहीं गई। कई दिनों तक मूच्छित रहा। मूर्च्छना में वह सब कुछ कह गया। सबने सुना। लालसा ने भी सुना और उसकी भाभी ने भी। लालसा की आँखें मुँद गईं। गंगादे ने दौड़कर सँभाला और गोद में लेकर फफक उठीं। वह जानती थीं कि जिस दिन लालसा को मालूम हो जाएगा कि पीथल और चम्पा एक-दूसरे को अपना सब कुछ लुटा चुके हैं, उस दिन वह भावुक लड़की जान दे देगी। उनकी साँस ऊपर की ऊपर और नीचे की नीचे। सहसा लालसा मुस्करा उठी। गंगादे के भय और आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने समझा लालसा पागल हो गई है। उन्होंने अपने

आँख-कान मूँद लिए। उन्हें लगा जैसे इन सारी दुर्घटनाओं के लिए वे ही उत्तरदायी हैं।

सहसा लालसा बोल पड़ी, "जीजी ! तुमने मुझे समझा क्या है ? तुमने आज तक मुझसे सब कुछ छिपाया केवल इसलिए कि लालसा पीथल को प्यार करती है। जिस दिन वह सुनेगी कि पीथल चम्पा को अपना सब कुछ दे चुका है, उस दिन वह ईर्ष्या और जलन के मारे चम्पा के नाम पर थूकेगी और पीथल का मुँह भी नहीं देखेगी। लेकिन लालसा लालसा है, गंगादे की बहन है।...मैं पीथल को आज से सचमुच प्यार करूँगी और इतना करूँगी जितना......। क्योंकि वह मेरी प्यारी बहिन चम्पा का सुहाग है। इसलिए मेरा दुगुना सुहाग है। अब मैं सारी मर्यादा तोड़कर उसकी सब कुछ बनकर रहूँगी, क्योंकि वह चम्पा की धरोहर है, उसका सुहाग है। छिः जीजी ! तुम मुझे आज तक न समझ सकीं। अरे..."

गंगादे ने लालसा के मुँह पर हाथ रख दिया और गर्व से फूल उठीं। उनकी बहन इतनी महान है...उनके गर्व का ठिकाना न रहा। बड़े प्यार से उसे सहलाया, हाथ फेरा और बार-बार चूमने लगीं। मानो सारा दुःख भूल गईं। दूसरी ओर जब गंगा के पिता महारावाल हरराज को राजवैद्य से सारी बातों का पता चला तो वे आग बबूला होकर गंगा पर बेभाव बरस पड़े। उनकी आँखों में पीथल खटक गया। उन्होंने उसे मूर्च्छित अवस्था में देखा और घृणा-भरी दृष्टि डालकर बाहर आए। छुई-मुई सी लालसा जो कभी अपने पिता के सम्मुख बोली तक न थी, उससे नहीं रहा गया। न जाने उसमें कहाँ से इतना साहस भर आया। गंगादे भी जो नहीं कह सकती थीं, वह अपने पिता को स्पष्ट कह आई। महारावल भौंचक्के से रह गए। स्वीकृति देने के अतिरिक्त और कोई चारा न था।

शहनाई से सारा जैसलमेर गूँज उठा। आश्चर्य ! सात दिन के भीतर-भीतर लालसा पीथल की हो गई।

नवदश परिच्छेद

काम में विघ्न पड़ने पर क्रोध उत्पन्न होता है। श्वेतांग भी क्रोध में अंधा हो उठा। चम्पा के रूप को उसने अपनी कल्पनाओं में ले जाकर न जाने क्या क्या करने की ठानी थी, कैसे-कैसे स्वप्न सजाए थे। सारे चूर-चूर हो गए। साथ ही रम्भा भी जाती रही। उसकी जिन्दगी का सारा मजा ही किर-किरा हो गया। वह चम्पा और रम्भा की जान का दुश्मन हो गया। उसे चम्पा की योजना का पता तो था ही, साथ ही उसके मुँह से उसका सारा इतिहास भी सुन चुका था। उसने झट महाराणा प्रताप को पत्र भेजकर प्रार्थना की कि चम्पा मेरी विवाहिता पत्नी है। वह आवेश में आकर मेरी बहिन रम्भा के साथ आपके राज्य में भाग गई है और चारणी बन गई है। कृपया उन्हें तलाश कर मेरे पास भेजने की व्यवस्था की जाए।

दूसरी ओर वह अकबर से आ मिला। अकबर अभी तक अजमेर में ही था और वहीं से महाराणा के विरुद्ध युद्ध-रचना कर रहा था। अकबर को श्वेतांग पर पहले तो विश्वास नहीं आया। पीछे कुछ सोचकर उसने उसे खुरशीद की मदद से अपना मित्र बना लिया और उसके राज्य को महा-राणा के विरुद्ध युद्ध-संचालन का केन्द्र बना दिया। श्वेतांग बहुत चतुर था। वह समझ गया कि वह अब अकबर की मुट्ठी में आगया है। चम्पा और रम्भा तो हाथ से गई ही, राज्य भी गया। किन्तु उसने हार नहीं मानी।

उधर बादशाह ने चम्पा और श्वेतांग के रहस्य को रहस्य ही रहने दिया। मानसिंह आदि किसी को भी जाहिर नहीं किया। एक दिन बाद-शाह ने श्वेतांग से अत्यन्त मधुर शब्दों में कहा, "मित्र! चम्पा को पहचानने वाले या तो तुम हो या खुरशीद। मेरी राय है कि तुम दोनों भी चारण-चारणी

बनकर महाराणा के राज्य में पहुँच जाओ और चम्पा का पता लगाओ ताकि कोई उचित कदम उठाया जाए। बिना ठीक-ठीक पता लगाए उसे हम कैसे पा सकते हैं ?" श्वेतांग पहले ही कल्पना कर चुका था। बड़ी तीक्ष्ण बुद्धि थी उसकी। वह खुरशीद को साथ लेकर चल पड़ा···खुश होकर या मन मसोसकर। राम जाने।

श्वेतांग वर्ण का छरहरा नवयुवक था। उसकी आँखों में शराब सदैव भरी रहती थी और घुंघराले केशों में मस्ती की अजीब लहरें। खुरशीद यह न देख सकी। उसकी आँखों की सारी शराब और केशों की सारी मस्त लहरियों को पी जाने के लिए वह व्यग्र हो उठी। उसके रोम-रोम में वासना का ज़हरीला कीड़ा काटने लगा। वह बेचैन हो उठी। उधर श्वेतांग जितना खूबसूरत था उतना ही मक्कार और खिलाड़ी भी। वह खुरशीद को पहचान गया तथा उसने और भी ज़्यादा गरम करने के लिए उसने ज़रा बेरुखी अख्तियार कर ली। खुरशीद छटपटा उठी : तड़प उठी। एक बार नहीं, सौ बार, हज़ार बार। आखिर खुरशीद से नहीं रहा गया। वह कंधा पकड़कर बोली, "देखो ! तड़पाओ मत !"

"क्या मतलब ? हम चारण-चारणी का अभिनय कर रहे हैं, सचमुच नहीं हैं।"

खुरशीद की साँस फूलने लगी। मद के आवेश से उसका सिर भारी हो गया। आँखें सतरा गईं। वह फिर श्वेतांग के चरणों में आकर गिर पड़ी, "अब या तो ज़हर दे दो या प्यार दे दो।"

"हुँह···प्यार ? तुम वासना की नारकीय कीटाणु ! तुम क्या जानो कि प्यार क्या है ?"

"सच कहती हूँ ज़िन्दगी में पहली बार तुम्हें प्यार कर रही हूँ, पहली बार, सिर्फ तुमसे। विश्वास करो।"

श्वेतांग हँस पड़ा। खुरशीद रो पड़ी और रोते-रोते श्वेतांग की गोदी में लुढ़क पड़ी। उसकी छाती से अपना मुँह सटाकर ज़ोर-ज़ोर से हाँफने लगी। श्वेतांग ने उसे झटक दिया। वह गिर पड़ी। अबकी बार

उसने अपनी कमर से एक कटार निकाली और बोली, "मेरे बेरहम खुदा ! अब मैं तुम्हारी नजर में ज़्यादा देर तक खटकना नहीं चाहती।" ऐसा कहते हुए उसने कटार छाती में भोंकने के लिए उठाई। श्वेतांग अट्टहास कर उठा और बोला, "सचमुच कितना अच्छा होता यदि तुम मेरी नज़र से दूर हो जातीं। भोंको न छाती में कटार ! रुक क्यों गई ?" खुरशीद ने कटार को वापिस अपनी कमर में खोंस लिया और बोली, "मैं जानती हूँ तुम मुझे बहुत प्यार करते हो। मेरे बिना पल-भर भी तुम रह नहीं सकते। भला, मैं तुम्हारी ऐसी खूबसूरत ज़िन्दगी से क्यों खेलूं ?"

"शाबाश !" श्वेतांग ने हँसकर कहा और अपने बाहुओं में कसकर बिठा लिया। धीरे-धीरे समझाने लगा, "देखो खुरशीद ! तुम्हें अभी पूरा-पूरा प्यार का नाटक खेलना नहीं आया। अकबर क्या जाने इस कला को। मैं तुम्हें इस कला में दक्ष बना दूँगा, दक्ष।"

खुरशीद सहम गई। वह हार गई थी। उसके हृदय की सारी पोल श्वेतांग ने खोलकर उसके सामने रख दी थी। अब खुरशीद सहज नारी बन गई। उसने कहा, "देखो श्वेतांग ! तुम मुझे अच्छी तरह जानते हो। फिर तुमसे छिपाव कैसा ? मैं तो अवसर-वेश्या हूँ और अवसर-सती। मुझे खेलना पड़ता है किसी के इशारों पर और मैं खेलती हूँ। कोई चारा नहीं। लेकिन ऐसा न समझो कि मेरा नारीत्व मर गया है।"

श्वेतांग—जिस दिन तुमने भोले पीथल को ठगा था उस दिन तुम्हारा नारीत्व कहाँ था ? अरे नीच ! तुमने उसको भी ठग लिया जो स्वयं ठगाने आया था ? उसको ठगो न, जो तुम्हें ठगना चाहता है और रोज़ ठग रहा है।

खुरशीद की स्मृतियों का परदा ताजा हो गया। उसके रोम-रोम सिहर उठे। वह सिसकती हुई बोली, "खुदा के लिए उसका नाम न लो। मैं काँप जाती हूँ—बहुत भोला है वह। उसे बहुत ठगा है मैंने। बहुत ठगा है। सच, बहुत ठगा है और वह मुझे इतनी गहराई से प्यार करता है कि बस पूछो मत।"

श्वेतांग—लेकिन तुम तो उसे प्यार नहीं करती ?

खुरशीद—अब झूठ नहीं बोलूंगी। करती हूँ, बहुत करती हूँ। लेकिन चारा क्या है ?

श्वेतांग—और मुझे ?

खुरशीद—तन तुम्हारा है और मन उसका, पीथल का।

श्वेतांग—तन तो मन का गुलाम है। वह भी उसी का है। तुम अपने को धोखा मत दो।

खुरशीद रो पड़ी और श्वेतांग से चिपट गई। बोली, "मुझे पता नहीं, कुछ पता नहीं। मैं अपने होश में नहीं हूँ।" श्वेतांग गंभीर हो गया। और कहने लगा, "देखो खुरशीद ! जो लोग सचमुच प्यार करते हैं, वे मूर्ख हैं। इस खुशकिस्मत धरती के बदकिस्मत कीटाणु हैं। वे जिस किसी की ज़िन्दगी की फुलवाड़ी में जाते हैं, आग लगा देते हैं और अपनी ज़िन्दगी को तो तबाह कर ही लेते हैं। तुम इस धरती को खुश रखो। अपने को भी खुश रखो। उसका तरीका सिर्फ एक है…।"

खुरशीद—वह यही है न कि आटा, चावल, घी की तरह ही प्यार को भी समझो। जब प्यास लगे, कहीं भी प्यास बुझा लो।

श्वेतांग—बिल्कुल ठीक। "वसुधैव कुटुम्बकम्" धरती को अपना परिवार समझो। हर खूबसूरत फूल को अपना समझो। देखकर प्यास लगे तो प्यास बुझा लो और भूल जाओ कि कभी यहाँ पानी पिया था। ऐसा करने से किसी के लिए दिल में कोई दर्द नहीं होगा, किसी की भी याद नहीं आएगी।

खुरशीद—लेकिन उस रेखा को कैसे मिटाऊँ जो दिल में खिंच गई है। मिटाये नहीं मिटती। बार-बार पीथल सामने खड़ा नज़र आ रहा है।

श्वेतांग—उससे अच्छी और बड़ी कई रेखाएँ खींच डालो।

खुरशीद—उसे मिटाने के लिए मैंने हज़ार बार ऐसा ही किया। लेकिन पीछे की सभी खूबसूरत और बड़ी रेखाएं मिट जाती हैं और बार-बार वही रेखा उभरकर ताज़ा हो जाती है।

श्वेतांग—यह तुम्हारी मूर्खता और दिमाग की कमज़ोरी है। और कुछ नहीं। खैर, तुम मुझसे जो चाहती हो उसके बदले यह करना होगा कि चम्पा और रम्भा का पता चलने पर बादशाह को नहीं बताना होगा।

खुरशीद—मैं तैयार हूँ। लेकिन एक शर्त है। देखो, दगा न देना। मैं तुम्हें काफी चालाक समझती हूँ। किसी तरह मुझे पीथल मिल जाए और बादशाह से मेरा पिंड छूट जाए। उसके इशारे पर यह खेल खेलते-खेलते मैं तंग आ गई हूँ।

श्वेतांग हँस पड़ा, "दोनों का उद्देश्य एक है। बादशाह को धोखा देंगे। मुझे चम्पा मिलेगी और तुम्हें पीथल।"

खुरशीद—लेकिन तुम तो प्यार में विश्वास नहीं करते फिर चम्पा के पीछे दीवाने क्यों हो रहे हो ? राज्य तक खो दिया।

श्वेतांग—सिर्फ बदला लेने के लिए। उस खूबसूरत आम को जी भर कर चूसूँगा और फिर फेंक दूँगा कुत्तों को चाटने के लिए। तब तक कोई दूसरा फूल मिल जाएगा। फूल की सार्थकता उसको मसल देने में है। वही जीवन-भर करूँगा। शक्करखोर को शक्कर मिल ही जाती है। रहा राज्य ? वह तो बादशाह की नाक रगड़कर वापस ले लूँगा।

दोनों हँस पड़े। रात काफ़ी बीत चुकी थी। जाकर दोनों ने मदिरा पी। धीरे-धीरे वासना के मद में खूब खाना खाया। और जब बेहोशी ने चेतनता को ढक दिया तो दोनों के तन की भूख जाग उठी। जी भर कर दोनों तृप्त होने लगे। तब खिलखिलाकर खुरशीद ने कहा, "देखो प्रियतम ! दग़ा न देना। यह मेरा पहला प्यार है। आज तक किसी ने छुआ तक न था।" श्वेतांग की भाषा लड़खड़ा गई थी। उसने भी बड़े ही प्यारे लहज़े में कहा, "देखो ! मेरी ज़िन्दगी उजाड़ना मत। यह पहला प्यार है। जिसे चम्पा तक न छू सकी, उसे तुम पा रही हो।"

"क्यों श्वेतांग ! ज़िन्दगी क्या है ?"

"धोखे का एक मज़ेदार खेल।"

"और ईश्वर, धर्म, पूजा वग़ैरह ?"

"ये सब अपाहिजों और मूर्खों के कोष में पैदा होते हैं। मेरे जैसे समर्थ जीवन-कोष में नहीं।"

"ठीक कहते हो। जी भर कर खेलो।"

"यावत् जीवेत् सुख जीवेत्। ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्॥"

इस तरह एक ही वाम सिद्धान्त के दो ग्रह आपस में मिलकर एक हो गए। धरती काँप उठी, आकाश डोल गया। चम्पा की दाहिनी आँख फड़क उठी और पीथल की बायीं। अशुभ भाग्यहीन सितारे आकाश में टूटने लगे।

विंशति परिच्छेद

पीथल की मूर्च्छना हट चुकी थी। वह तन से कुछ स्वस्थ हो चला था। किन्तु मन झंझावात बना हुआ था। वह प्रातःकाल अपनी भाभी के साथ विनोद-कुंज में घूम रहा था। उसके हृदय में खुरशीद, लालसा और चम्पा घूम रही थीं।

मन पर जमी हुई भावनाओं की काई कुरेदकर ही बाहर निकाली जा सकती है। यह बात गंगादे अच्छी तरह जानती थीं। उन्होंने बात की बात में यह प्रसंग छेड़ दिया :

"पीथल! तुम यह क्यों नहीं सोच पाते कि जिस खुरशीद ने मक्कारी से तुम्हारी चम्पा को तुमसे अलग कर दिया, उसे भुला देना ही ठीक है।"

"लेकिन भाभी! यह भी कितनी अच्छी बात है कि उसकी इच्छा पूरी हो रही है। यदि वह सचमुच मेरी ज़िन्दगी का चमन उजाड़कर ही खुश है, मेरी हरी-भरी फुलवाड़ी में आग लगाकर ही खुश है तो मुझे कोई एतराज़ नहीं होना चाहिए। माना कि वह ग़लत रास्ते पर है। तो क्या उसे ठीक रास्ते पर लाने के लिए मैं ग़लत रास्ता पकड़ूँ? मुझे खुशी है कि अपनी ज़िन्दगी लुटाकर भी मैंने अपनी मानवता नहीं छोड़ी है।"

"लेकिन क्यों? क्या तुम उसे प्यार करते हो?"

"भाभी! वह प्यार नहीं, मेरी ज़िन्दगी की आग है जिसने मेरे नस-नस में ज़हर बिखेरकर हृदय में एक ऐसी आग लगा दी थी जिसकी जलन से मैं आज भी कृतज्ञ हूँ। संभव है, वह मुझसे प्यार न करती हो। सिर्फ मुझे ठगने या धोखा देकर राज़ लेने आई थी। फिर भी भाभी! तुम्हीं सोचो, ठगा जाने में कितना सुख है। धोखा देने से धोखा खा जाना ज़्यादा

अच्छा है भाभी। मैं कलाकार हूँ। मेरे मन की इस पवित्रता को नष्ट न करो।"

"और चम्पा? वह क्या तुम्हारी पवित्रता नहीं थी?"

"वह प्यारी दिवंगता तो मुझसे भिन्न है ही नहीं। जन्म-जन्मान्तर की पुण्य-निधि है। भला! वह कितनी दुःखी होगी जब स्वर्ग में यह सुनेगी कि उसके पीथल ने किसी नारी को वचन देकर उससे दगा कर दिया। चाहे मैंने मस्ती, बेहोशी या मूर्खता में ही वचन दिया था कि खुरशीद तुम मेरी हो। फिर वचन देकर उसे गैर कैसे समझूँ? पीथल अपनी जिन्दगी को लौटा सकता है, लेकिन अपने वचन को नहीं लौटा सकता।"

"लेकिन यह सच है कि चम्पा खुरशीद से तुम्हारा प्यार समझकर ही जल मरी है।"

"तो मैं उसकी इस नासमझी के प्रायश्चित्त के लिए ज़िन्दगी भर तड़पूँगा। तिल-तिल करके जलूंगा और राई-राई करके मरूँगा। पूरा-पूरा प्रायश्चित्त करूँगा भाभी!"

गंगादे सुनकर मौन हो गईं। उन्होंने सोचा था कि किसी तरह पीथल खुरशीद के नंगे रूप को समझ ले और उससे घृणा करके दूर हट जाए ताकि ज़िन्दगी में वह फिर दुबारा उससे धोखा न खाये। लेकिन पीथल गंगादे के ही आंचल में पला था। वह मानव नहीं, देवता था। वह अपने शत्रु की आकांक्षा पूरी करना जानता था। चाहे वह स्वयं उजड़ जाए, टूट जाए, बिखर जाए। उसके उच्छ्वासों में यह संगीत था कि जिसने मेरी ताजी जिन्दगी को जलती चिता की आग दे दी, जिसने मेरे मरघट की दूरी कम कर दी, भला उसका उपकार कैसे भूलूँ? वह लड़खड़ाने लगा और हाँफकर बैठ गया। सीने में जोर-जोर से दर्द हो रहा था। उसने टूटते स्वरों में कहा, "भाभी! हो सकता है, मेरे मर जाने पर भी राज़ राज़ ही रह जाए। लो, तुम्हें बताए देता हूँ। खुरशीद मेरे दिल की आग है जिसने जलाया है, शांत नहीं किया है। दूसरी ओर लालसा पानी है बिलकुल पानी। जिसने सिर्फ शांति दी है पवित्रता और निःस्वार्थता से मेरी जिन्दगी भर दी है।

सच कहता हूँ भाभी, उसे जलाना नहीं आया और न आएगा। काश, वह थोड़ा जला पाती, थोड़ा तड़पा पाती। लेकिन वह ऐसा कर नहीं सकती। मुझे तड़पाने के विचार-मात्र से ही वह तड़प उठेगी, पानी हो उठेगी। खुरशीद और लालसा दोनों एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत दो किनारे हैं, एक उत्तरी ध्रुव है और दूसरी दक्षिणी ध्रुव। एक ने अपने छल-कपट और धोखे से मुझे टूक-टूक कर दिया है तो दूसरी ने अपनी पावन निर्मलता और विश्वास से मेरे चरित्र को चट्टान बना दिया है। देखो, उसे मैं नित्य कम्बख्त कहता हूँ, दूर रहता हूँ, प्यार के स्थान पर पत्थर देता हूँ। इससे भला क्या निर्मम बर्ताव होगा कि सुहाग रात तक को भी मैंने उसे चुम्बन तक नहीं दिया। फिर भी वह अपना जन्म-जन्मान्तर मुझे समर्पण किए बैठी है। उसी से मैंने प्यार की गहराई सीखी है और अपने करोड़ों जन्मों के लिए बाँध लिया है। और चम्पा···उफ्···वह तूफान थी तूफान। जिसके सम्मुख मैं टिक नहीं पाया, पत्ते की तरह उड़ गया। उसमें आग भी है, पानी भी। मेरी मानसी तस्वीर है वह। इस तरह, भाभी, मेरा जीवन आग, पानी और तूफान का केन्द्र रहा है। यह तुम्हें इसलिए कह रहा हूँ कि कहीं तुम्हारी दृष्टि में ग़लत न समझा जाऊँ। देखो उधर, उसे चैन कहाँ है······वह आ रही है मेरी बेचैन ज़िन्दगी···लालसा।"

भाभी ने तब तक प्रसंग पलट दिया था। लालसा खिलखिलाती हुई आ पहुँची। वाणी क्या थी मानो संगीत। बड़ी ही उल्लसित थी वह। लगता था मानो सुधामयी मधु-ऋतु के क्षितिज पर उसका जीवन उषा की तरह उल्लसित होकर सुभाषी बन गया हो। उसे बस हँसने से मतलब था। खुशी उसकी दासी थी और चपलता उसकी सखी। उसके सामने बस पीथल रहे, फिर देखिये उसे। अंग-अंग फड़क उठते थे: अनजाने ही पैर नाच उठते थे। सहज ही संगीत बरस जाता था। यह सब कुछ था, किन्तु थी वह पूरी-पूरी लाजवन्ती की गदराई डाली। वह पीथल के सामने न जाने क्यों······। पीथल यह जानता था। वह दूसरी ओर घूमने चल पड़ा। लेकिन फिर लौटकर लालसा और भाभी के पीछे वाली लताओं के झुरमुट में बैठ गया।

लालसा ने आते ही खीझकर कहा, "देखा जीजी! जैसे मैं बला हूँ बला। मेरे आते ही वे चल दिए दूसरी ओर।" गंगादे ने हँसकर कहा, "क्या करे वह। जब तुम सामने रहती हो तो लाजवंती की गदराई डाली बन कर ज़मीन कुरेदती रहती हो। बड़ी अजीब हो गई हो; जब वह चला गया तो खीझ रही हो।"

लालसा—अरे हटो, उनसे खीझूँगी भला।

गंगादे—लालसा। पीथल और तुम दोनों ही मुझे विचित्र लोक के प्राणी लगते हो। समझ में नहीं आता कि तुम दोनों देवता हो या मूर्ख। वह अपने दिल में खुरशीद को अब भी आग की तरह बिठाए हुए है और चम्पा के तूफान में अपनी जिन्दगी पत्ते की तरह उड़ाता चला जा रहा है। वास्तविकता समझता नहीं, बस कल्पना और आदर्श उसकी दोनों बाँहें हैं। एक तुम हो जो सब कुछ जानती हुई भी उससे ज़बरदस्ती विवाह कर बैठी और उससे कुछ भी न मिलने पर भी बुलबुल की तरह चहकती फिर रही हो जैसे इन्द्रासन का राज मिल गया हो।"

लालसा मुस्कराती रही, मुस्कराती रही, मुस्कराती रही। कुछ बोली नहीं। मुस्कराती रही। गंगादे भावी के अंक को पढ़ती-पढ़ती-सी चिंता में खो गईं। तब लालसा ने कहा, "यह क्या कम खुशी की बात है कि मैं पीथल की सुहागिन हूँ। अपनी प्रिय बहिन के सुहाग को दिन-रात पान के पत्ते की तरह पलटती रहती हूँ। आज यदि चम्पा होती तो क्या अपने पीथल की खुशी के लिए कुछ उठा रखती? दुर्भाग्य से वह नहीं है...नहीं है तो क्या हुआ। उसके सुहाग को लालसा सदैव हरा भरा रखेगी। कभी सूखने नहीं देगी...तुम्हीं ने तो कहा था जीजी, तुम पानी हो पानी। फिर पानी का धर्म भी तो यही है।"

गंगादे—लेकिन पीथल से भी तो तुम्हें कुछ मिलना चाहिए। इसीलिए मैंने कहा था कि तुम पानी ही मत बनो, कुछ बाँध भी बनो, कुछ आग भी बनो। उसे किसी तरह अपने लिए थोड़ा तड़पाओ ताकि तुम्हें तुम्हारा प्राप्य मिल सके।

लालसा—छि: जीजी। यह घृणित कार्य मुझसे न होगा। यह तो नारी का कार्य नहीं, यमराज का है। जिसे मैं प्यार करती हूँ उसे भला मैं तड़पते देख सकती हूँ? असंभव। मैं अपने स्वार्थ के लिए उनके सामने यमराज का नाटक नहीं खेलूंगी। जो हूँ वही रहूँगी। मुझे वे प्यारे हैं, उनकी गाली भी मुझे प्यारी है। कभी खीझकर जब मुझे वे कम्बख्त कहकर चपत लगा देते हैं तो भी मुझे आनन्द ही मिलता है। मैं खिलखिला उठती हूँ। मैं तो…।"

तब तक लालसा और गंगादे के पीछे वाला लताओं का झुरमुट कांप उठा। "आह।" यह आवाज़ पीथल की थी। वह मूर्च्छित होकर वहाँ गिर पड़ा था। दोनों दौड़ पड़ीं। वह बड़बड़ा रहा था "…आग…पानी…तूफान… आह!…क्या किया…मैंने…बेचारी लाल…उफ्…क्षमा…कर…देना…" और बस उसकी जीभ ऐंठने सी लगी। पानी मँगाया गया। छिड़का गया। बड़ी देर बाद वह चौंकता हुआ उठा जैसे किसी भयंकर सपने को देखता हुआ चौंक पड़ा हो। और जोर से अट्टहास कर उठा…हा हा हा…। गंगा और लालसा डर गईं। "भाभी! लालसा…मूर्ख…है…चम्पा…मुझे …बुला रही…है।" इतना कहता हुआ वह आगे बढ़ा और लताओं को उखाड़ने लगा। टहनियों को तोड़ने लगा। पत्थर फेंकने लगा और बस। अब वह पूरा पागल था। भाभी पर पत्थर फेंका। लालसा पर भी। कभी वह काँटों को मुट्ठी में बन्द करके तोड़ता तो कभी फूलों को सिर पर रख-कर नाचता। कभी रोता, कभी गाता, कभी कुछ और कभी कुछ।

लालसा की साँस जहाँ की तहाँ रुक गई। वह पीथल को इस रूप में देखने के लिए तैयार न थी। दिल पर गहरा धक्का पहुँचा था। उसकी आँखें खुली की खुली रह गईं। मानो वह अपने पीथल को इन आँखों में सर्वदा के लिए बसा लेना चाहती हो। उसकी खुली आँखें फिर मुँदी नहीं। गंगादे के मुँह से आवाज़ तक न निकल सकी। सारा महल टूट पड़ा। जैसल नगर के मुँह पर स्याही-सी पुत गई। चिता का धुआँ आकाश में भर गया था। पीथल तब चुप था। न जाने उसकी सनक कहाँ चली गई थी।

वह तेजी से उठा और चिता में से एक जलती हुई आग की लकड़ी को उठा कर अपनी मुट्ठी में जोर से बाँध लिया, मसलकर चूर-चूर कर दिया। बोला, "आग ! तूने मेरी जिन्दगी के पानी को जला दिया ? जा । आज से तेरा छुआ हुआ अन्न-जल यह पीथल नहीं छुएगा, नहीं खाएगा, नहीं पियेगा। जा···जा···जा।"

एकविंशति परिच्छेद

मेवाड़ का पत्ता-पत्ता जाग उठा। क्या बच्चे, क्या बूढ़े और क्या जवान ? सभी के हाथ फड़क उठे। तलवार अपने आप हाथों में आ गई और पैर अपने आप दौड़कर महाराणा प्रताप के पास आकर खड़े हो गए। युद्ध की भेरी बजी। वीरों का रोम-रोम हर्ष से गुनगुना उठा। चारण-चारिणियों के फड़कते हुए गीत जान पर खेल जाने के लिए प्रेरित करने-लगे। मानव तो मानव पशु-पक्षी भी दहाड़ने लगे। उधर रामसिंह के आने-जाने से एक नई जान आ गई थी। उसकी आँख से खून बरस रहा था··· खून। उसका घोड़ा विना ऐंड़ लगाए ही फड़क उठता था। उसका पक्का साथी था सादड़ी का झाला मान। दोनों वीर जब झूमकर देश-भक्ति के गीत गाते तो लगता बस अभी दौड़ पड़ें अकबरी सेना पर।

दूसरी ओर अकबरी सेना ने चारों ओर से मेवाड़ को घेर लिया था। शायद जितनी जनसंख्या महाराणा के राज्य की न थी, उससे कहीं अधिक अकबरी सेना में योद्धा थे। अकबर ने बड़ी चतुराई से अपनी युद्ध रचना की थी। तीर, तलवार और बन्दूक के अलावा तोपों का भारी संख्या में जमाव किया था।

महाराणा ने यह भंयकर तैयारी देखी तो युद्ध के लिए हल्दी घाटी को चुना। घाटी में पहाड़ों की चोटियों पर और नीचे की ओर राजपूतों की सेना इंच-इंच पर बिछ गई। चट्टानों पर भीलों की सेना तीर-कमानों से भरी हुई बैठी और उनके पास शत्रुओं पर लुढ़काने के लिए बड़े-बड़े पत्थरों के ढेर एकत्र कर दिये गए।

दोनों ओर से जमकर युद्ध हुआ। कोहराम मच गया। हल्दी घाटी

से खून की नदी बह निकली, किन्तु न तो महाराणा टस से मस हुए और न अकबरी सेना। महाराणा की नजर युद्ध में अकबर और मानसिंह को ढूंढ़ रही थी, झाला की आँखें रायसिंह को और रामसिंह की आँखें शक्तिसिंह और देशद्रोहियों को। अन्त में मेवाड़ी वीरता के आगे अकबर की सेना के छक्के छूट गए। उन्हें बचाव का रास्ता नहीं मिल रहा था, उधर भील ऊपर से दस-दस मन के पत्थर फेंक रहे थे। बिना मारे ही कई हज़ार सैनिक इन पत्थरों के नीचे दबकर मर गए।

मानसिंह घबड़ा गए और बचाव के लिए पीछे बादशाह की ओर ज्यों ही लौटे त्यों ही महाराणा की नज़र उन पर पड़ी। महाराणा विवेक खो बैठे और बड़ी तेज़ी से शत्रुओं के बीचों-बीच अपने घोड़े को दौड़ा दिया। विशाल और भयंकर बरछे से वे शत्रुओं को गाजर मूली की तरह काटने लगे। न जाने उनकी आखों में प्रलयंकर शंकर की धधकती ज्वाला कहाँ से आ गई थी और उनकी भुजाओं में साक्षात् दुर्गा नाच रही थी। चेतक पर सवार महाराणा प्रताप ऐसे लग रहे थे मानो स्वयं भगवान कार्तिकेय धरती पर उतर आए हों। उन्होंने घोड़े को ऐंड़ लगाकर अपने घोड़े चेतक को कहा, "दोस्त! क्या देखते हो? सब कुछ खा-पीकर क्या तुम्हें आज प्रताप के लिए प्राण देना भी भारी हो रहा है?"

इस व्यंग को सुनकर चेतक को मानो आग लग गई। उसने भयंकर छलाँग लगाई और अपना अगला पाँव बादशाह अकबर के हाथी के कुंभ-स्थल पर टिका दिया। महाराणा ने जमकर बरछा फेंका। दुर्भाग्यवश वह बरछा महावत को चीरता हुआ हाथी के पेट में चला गया। हाथी भड़क-कर भाग चला। अकबर की जान बची। अब मानसिंह की बारी थी। उन्होंने शक्तिसिंह और रायसिंह को ललकारा। घमासान मच गया। किन्तु महा-राणा का बरछा नहीं चूका। वह सीधे मानसिंह की ओर बढ़ा। उनका घोड़ा उछल पड़ा। बेचारा घोड़ा बरछा खाकर गिर पड़ा। तब तक शाही सेना ने प्रतापसिंह को चारों ओर से घेर लिया। यह बात जब झाला मान और राम-सिंह ने देखी तो "हर-हर महादेव" कहते हुए जुहार कर बैठे और महाराणा

के पास पहुँच गए। तब तक महाराणा का शरीर दुश्मनों के बीच तलवार और बन्दूकों से छलनी हो चुका था। झाला बड़ा ही मतवाला जीव था। प्राण पर खेल जाना तो उसके लिए मज़ाक था। उसने झट महाराणा का मुकुट और चामरादि राजचिह्न तेज़ी से लेकर स्वयं पहन लिया और महाराणा की मौत को प्यार से अपनी ओर बुला लिया। दूसरी ओर रामसिंह महाराणा की सहायता करके शत्रुओं के बीच से अपनी सेना की ओर खींच लाए। किन्तु तब तक रामसिंह को अनेक घाव एक साथ लगे थे। आगे चल सकना उनके लिए कठिन था। फिर भी उन्होंने महाराणा का साथ दिया और उन्हें साथ-साथ लिए पहाड़ों की कन्दराओं के रास्ते सुदूर भाग चले। किन्तु रामसिंह अधिक साथ न दे सके। मूर्छित होकर रास्ते में ही गिर पड़े।

महाराणा चेतक पर कन्दराओं के रास्ते भागते जा रहे थे कि दो मुगल सैनिकों की दृष्टि पड़ी। वे तेज़ी से चढ़ दौड़े। उनके पीछे से तूफान की तरह उड़ता हुआ शक्तिसिंह आ रहा था। वह सेना में से महाराणा को भागते हुए पहचान गया था। यह उसकी ज़िन्दगी का सबसे सुनहरा अवसर था। महाराणा को अपने हाथों मारकर ज़िन्दगी भर की जलन शान्त कर लेने का इससे अच्छा अवसर उसे न कभी मिला था और न मिल सकता था। सहसा रास्ते में सैनिक वेश में किसी कोमल कंठ ने पुकारा, "पिताजी, राक्षस न बनो।" कहते-कहते उसने अपने घोड़े को शक्तिसिंह के घोड़े की बराबरी में दौड़ा दिया। शक्तिसिंह पहचान गए। वह चम्पा थी। उन्होंने आवेश में आकर कहा, "कलंकिनी! अभी तक ज़िन्दा हो?"

"हाँ पिताजी! पिता के कलंक को सन्तान ही धो सकती है। देशद्रोह से अपनी व्यक्तिगत जलन शान्त करने वाले भोले पिताजी! आप जितने वीर हैं, कहीं उतने बुद्धिमान भी होते..."

"हट जा मेरे सामने से। नहीं तो दो टुकड़े कर दूँगा।"

"आपकी ही बेटी हूँ पिताजी! किसी कायर की नहीं। मेरे रहते आप और ये दोनों मुगल सवार महाराणा का कुछ न बिगाड़ सकेंगे।"

"अच्छा तो तैयार हो।"

"वार कीजिए पिताजी!"

शक्तिसिंह ने तेज़ी से तलवार उठाई। किन्तु यह भारत है। शक्तिसिंह के आँसू छलक आए। एक भारतीय पिता अपनी पुत्री की शुभकामना ही कर सकता है—चाहे वह बैरी ही क्यों न हो। शक्तिसिंह की आँखें खुल गईं। अपनी बेटी की इस वीरता और बलिदान से उनका रोम-रोम सिहर उठा। उन्होंने तलवार नीचे कर ली। बोले, "महाराणा की भतीजी से ऐसी ही आशा थी। मैं पापी हूँ बेटी···" यह कहते-कहते उन्होंने अपने आगे वाले दोनों मुगल सैनिकों को ललकारा।

तब तक एक बड़ा-सा नाला आ गया था। महाराणा का चेतक उस नाले को कूदकर पार हो गया, किन्तु मुगलों के घोड़े पार नहीं कर सके। फिर भी उन सैनिकों ने देखा कि महाराणा अब बहुत दूर भाग नहीं सकता। काफी थक गया है। अतः वे दूसरी ओर से नाले को फाँदकर महाराणा की ओर चढ़ दौड़े। महाराणा पर उनकी तलवार चलने ही वाली थी कि शक्तिसिंह ने दोनों को वहीं काट करके रख दिया। महाराणा जानकर तेज़ी से भाग रहे थे। तबतक शक्तिसिंह ने पुकारा, "ओ नीला घोड़ा रा असवार।" यह प्यारी आवाज़ महाराणा का हृदय बेध गई। उन्होंने अपने भाई शक्तिसिंह को पहचाना और घोड़े से कूदकर इस तरह गले मिले मानों कोई खोई हुई निधि मिल गई हो। दोनों के गले भर आए, आँखें छलछला गईं। तब तक चेतक दम तोड़कर गिर पड़ा। महाराणा रो पड़े। ऐसा वफादार घोड़ा था वह। शक्तिसिंह ने समझ लिया कि अभी बात करने का समय नहीं है। उन्होंने चुपचाप झट अपना घोड़ा महाराणा के सामने कर दिया और चरणों की धूलि माथे पर लगाई। महाराणा ने समय खोना ठीक नहीं समझा क्योंकि मुगल सैनिक भारी संख्या में पीछे आ रहे थे।

शक्तिसिंह ने मरे हुए एक मुगल सैनिक का घोड़ा लिया और अपनी

पुत्री चम्पा के साथ भैंसरोर की ओर चढ़ दौड़े। रास्ते में रम्भा और चारण सूरचन्द टापरिया आकर मिल गए। दूर से श्वेतांग और खुरशीद ने इन सबको देखा। पहचाना। अकस्मात् दोनों के मुँह से निकल पड़ा—

"तो अब ?"

द्वाविंशति परिच्छेद

"जहाँ फूल बेचा हो वहाँ कोयला कैरो बेचूँ?" गंगा बार-बार यही बिसूरती है। आज जैसेलमेर में सभी उसके नाम पर थूकते हैं। सभी यह चर्चा करते हैं कि महारावल की बड़ी कन्या गंगा बड़ी ही गन्दी निकली। उसने जान-बूझकर अपने देवर पीथल से अपनी बहिन लालसा का प्यार करा दिया। जब बात बढ़ी तो शादी करा दी। फुफेरी बहिन चम्पा के साथ भी उसने ऐसा ही कराया। आखिर बेचारी दोनों लड़कियाँ जल मरीं—अरे, चुड़ैल है चुड़ैल। शायद खुद भी देवर के साथ ही फँसी है। ऊपर-ऊपर से बड़ी-बड़ी बात करती है। शायद तभी अब उसका पति उसकी परवाह नहीं करता। तीन बरस हो गए जैसलमेर आई थी। तब से उसके पति ने खबर तक नहीं ली, बुलाया भी नहीं।

महल में भी इधर-उधर हर जगह ताने ही ताने मिलते हैं। सभी उसका उपहास करते हैं। स्वयं महारावल भी उसे देखकर मुँह बिचकाते हैं, देखना तक नहीं चाहते। उसकी करतूतों से सभी उससे घृणा करते हैं। नौकर-चाकर भी कानाफूसी करते हैं। बात-बात में अड़ जाते हैं। सौ बार कहने पर तब उसका कोई काम होता है।

मनुष्य सब कुछ सह सकता है, लेकिन सामाजिक अपमान नहीं सह सकता। गंगा को लग रहा है जैसे सारा समाज उसे देखकर मुँह फेर लेता है। कोई किसी से कुछ भी बात कर रहा हो, लेकिन गंगा को लगता है जैसे उसके ही बारे में कानाफूसी हो रही है। दर्पण में अपना मुँह देखकर भी उसे यही लगता है जैसे उसकी छाया तक उसका उपहास कर रही है।

गंगादे की साँस-साँस में लगता है जैसे बबूल के काँटे अड़ गए हों। वह

सोचती है कि धरती फट जाती और वह उसमें समा जाती। एक नारी सीता थीं। भगवान ने उनकी लाज रख ली। धरती फट गई और वह उसमें समा गईं। फिर सोचती है, "धरती तो क्या फटी होगी? सीता से सामाजिक अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ होगा, वन में कहीं डूब-धँसकर मर गई होंगी। आत्म-हत्या कर ली होगी। धरती फटना तो कवियों ने बना लिया होगा। कवियों का क्या? वे तो नदी में भी फूल खिलने की बात करते हैं। कमल का खिलकर भौंरे को गोद में प्यार करते हुए दुबारा बन्द हो जाने और खिल जाने की बात करते हैं।......तो क्या मैं भी आत्म-हत्या कर लूँ? जघन्य अपराध। परमात्मा भी क्षमा नहीं करेगा।......खैर, न करे। मैं नहीं जिऊँगी। पति उस पर अविश्वास करता है, घृणा करता है, देवर के साथ कलंक लगाता है। पिता उसे कुल की कलंकिनी समझते हैं। माँ चुड़ैल समझती हैं। परिवार के सभी लोग चम्पा और लालसा की हत्यारिन राक्षसी कहते हैं—सारा समाज काम-वासना की कीड़ी समझता है। धिक्कार है ऐसी ज़िन्दगी को! बस, ठीक है। सीता ने भी तो ऐसा ही किया था। मैं भी आत्म-हत्या करूँगी...लेकिन...लेकिन सीता का देवर पागल नहीं था। मेरा देवर...वह तो पागल हो गया है...फिर पीथल का क्या होगा? उस पगले को कौन प्यार करेगा? सभी उसे कुत्ता समझकर लात से मारेंगे, उस पर थूकेंगे, बच्चे उसे देखकर भूत कहेंगे और पत्थर मार-मारकर उसे चिढ़ाएँगे..."। और बस, इतना सोचते-सोचते गंगा फूट पड़ती है। जिस महल में उसने अपने पिता से भी ज़्यादा शासन किया है, उसी महल में आज उसका आँसू पोंछने वाला भी कोई नहीं है। बात-बात पर उसे टोका जाता है।

आखिर एक दिन महारावल ने कह ही दिया, "बेटी! माँ-बाप का घर अपना नहीं होता। वहाँ अधिक रहने से सभी अपमान करते हैं। तुम अब जल्दी अपनी ससुराल बीकानेर चली जाओ।"

गंगादे—पिताजी! उनको तो आप जानते ही हैं, अकबर की सेवा में हैं। रामसिंह क्रान्तिकारी है। उससे पीथल का दुःख नहीं देखा गया।

अकबर के विरुद्ध महाराणा का साथ देने हल्दी घाटी चला गया है। पता नहीं, वह अब जीवित है या काम आ गया। पीथल आपके सामने है। भला ! बीकानेर में दूसरा कौन है जिसे देखकर रहूँगी। राज-काज दीवानजी का बेटा चलाता है और दीवानजी उनके पास आगरे बने रहते हैं।

महारावल—तो आगरे ही चली जाओ। हमारा अपमान मत कराओ। कम-से-कम पीथल का तो हर हालत में यहाँ से तुरन्त चले जाना जरूरी है।

इतना काफी था। एक पिता इससे अधिक क्या कहता ? वे रुके नहीं। चले गए। गंगा के ऊपर पहाड़ टूट पड़ा। उसके आँसुओं का तार नहीं टूटा, नहीं टूटा।

गंगा ने दो दिन तक कुछ खाया नहीं। पीथल को देखती और रोती रही। आखिर भयंकर अशुभ आँधियों को सीने में छिपाये आगरे के लिए प्रस्थान किया। लंबा रास्ता और पीथल का पागलपन। ज़िंदगी एक बेशर्म औरत है जो न चाहने पर भी ज़बरदस्ती प्यार करती है, जीने को मजबूर करती है।

आगरा उत्सवों का केन्द्र बना हुआ था। जशन पर जशन मनाए जा रहे थे। हर गली-कूचा वन्दनवारों से सजा हुआ था। उमंग, उल्लास और खुशी का समुद्र उमड़ आया था। महल की बात ही निराली थी। खुशी की तोपें गड़गड़ाकर आसमान चीर रही थीं। महाराणा को परास्त करके अकबर अपनी शान में फूला नहीं समा रहा था। सेनाएँ और सेनापतियों की खुशी का ठिकाना न था। मानसिंह को बधाइयों पर बधाइयाँ मिल रही थीं। अब कोई ऐसा राजपूत राजा नहीं रह गया था जो मानसिंह और अकबर के बेटी-रोटी के सम्बन्ध को बुरा कहता।

इसी बीच अकस्मात् गंगादे अपने पागल पीथल को लिए-लिए वहाँ पहुँचीं। रायसिंह की कोठी पर पहुँचते ही धड़ाम से गिर पड़ीं। रायसिंह ने अभी कल ही अपने दीवान की बेटी से नई शादी की थी। खुशी की लहर से उनके घर का कोना-कोना मुस्करा रहा था। दीवानजी की घनी मूँछों

के भीतर से हँसते हुए चमकीले दाँत छिपाये नहीं छिपते थे। उनकी महत्वा-कांक्षा रंग ला रही थी।

रायसिंह ने गंगादे और पीथल को एक अशुभ छाया की तरह समझा और घर के भीतर भी जाने से मना कर दिया। दीवानजी से कहकर उनकी कोठी खाली कराई और वहाँ उनके रहने की व्यवस्था कर दी। जब भाग्य ठोकर मारता है तो उसे सभी दो लात मारते हैं। सबसे इस तरह दुत्कार पाकर गंगा सोच रही थी, "इससे तो अच्छा होता, मैं बीकानेर ही चली जाती।"

हाँ, बादशाह ने इस अवसर पर बड़ा सौजन्य दिखलाया। उसने पीथल के पास यह पत्र लिखकर भेजा कि पीथल का सम्मान उसकी नजर में कोई कम नहीं हुआ है। वह कभी भी सम्मानित कवि के रूप में उसके दरबार में आ सकता है। चार हजारी का पद काम न करने पर भी उसके साथ जुड़ा रहेगा। त्याग-पत्र अस्वीकार किया जाता है। परमात्मा शीघ्र ही उसे स्वास्थय-लाभ दे। गंगा ने पत्र को पढ़ा और अंधकार में एक क्षीण प्रकाश-रेखा दिखाई दी।

पीथल अपने पागलपन में बहुत रोता और कभी बहुत हँसता। कभी वह बन्दूक साफ करता, कभी तलवार और ढाल ठीक करता, कभी कोठी के भीतर बगीचे में घूमता।

एक दिन न जाने उसे क्या हुआ। उसने कोठी के भीतर की सारी फुलवाड़ी उजाड़ दी। केवल तीन तरह के फूलों को रखा—सूर्यमुखी, गुलाब, चम्पा। इन्हीं फूलों को उसने बाहर से भी मँगवाकर एक अच्छी-सी क्यारी तैयार की। सूर्यमुखी को खुरशीद कहने लगा, गुलाब को लालसा और चम्पा को चम्पा। कभी मन व्यग्र होता तो उन्हें क्रमशः आग, पानी और तूफान कहता। रात भर जागकर वह उन फूलों का स्वयं पहरा देता और मालियों को डांट देता कि कोई रात को जागा तो जान से मार दूंगा। अगर कोई तितली या पंछी आकर उन फूलों पर आ बैठते तो वह क्रोध से आग बबूला हो जाता। तलवार लेकर दौड़ पड़ता या बन्दूक भरकर वार

करता।

तोता-मैना के जोड़े पालने का शौक उसका पुराना था। सैकड़ों की संख्या में इन पंछियों को पालने लगा। जब वह अपने बगीचे में "आग, पानी और तूफान" या "खुरशीद, लालसा और चम्पा" बोलता तो ये सारे पंछी एक साथ चुह-चुहाकर दुहराते। कोठी में एक अजीब ढंग का समां बँध जाता। जब किसी तोता-मैना की आवाज़ उसे बहुत सुरीली लगती तो वह आपे से बाहर हो जाता और कहता, "तुम ? तुम ?? ··· मेरी आग, पानी और तूफान के कौन हो ? तुम्हीं ने मेरे उन फूलों को चुराया है।" ऐसा कहते-कहते वह पिंजड़ा खोलकर उन्हें निर्दयता से बाहर खींच लेता, उनके पंख पकड़कर पूछता, "बताओ ! तुमने वे तीनों फूल कहाँ रखे हैं ? बिचारे पंछी डरकर चीं-चीं-चाँय-चाँय करके रो पड़ते। पीथल बिगड़कर कहता, "इस चीं-चाँय से काम नहीं चलेगा। सच बोलो नहीं तो टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा।" बेचारे पंछी क्या कहते ? पीथल निहायत बेरहमी से राक्षस की तरह उन पंछियों के पंख को नोचता और सारी ताक़त लगाकर पटक देता ज़मीन पर। खून और माँस से सारा फर्श रँग जाता तो वह दाँत पीसता हुआ आगे बढ़ता और तलवार से बोटी-बोटी कर देता। ··· फिर रो पड़ता। लाल कफन मँगाता। अपने आँसुओं से भिगोता और उसमें पंछियों के पंख, माँस बाँधकर एक कोने में दफ़न कर देता। ऊपर से लगा देता फूल···सूर्यमुखी, गुलाब और चम्पा। ···रोकर गिर पड़ता वहाँ। नींद खुलती तो वहां स्वयं जाकर दीप जलाता···बैठा रहता।

ऐसा हो गया था पीथल। और उसकी अभागिन भाभी ? उसके लिए कुछ न कहना ही सब कुछ कह देना है।

त्रिविंशति परिच्छेद

काली भयानक रात। अरावली की डरावनी पर्वत-चोटियाँ। गीदड़ों का हुआँ-हुआँ और घायलों की दर्दीली कराह। इन सबको पार करता हुआ रामसिंह कभी पीड़ा के मारे बैठ जाता था और कभी कुछ कदम आगे बढ़ता था। आस-पास कोई गाँव नज़र नहीं आ रहा था। भूख और प्यास से उसका दम घुट रहा था। अब उसे अंतिम क्षण नज़र-से आ रहे थे। ज़िन्दगी की लंबी दूरी नापने से उसके पैरों ने इन्कार कर दिया था। वह गिर पड़ा।

सहसा पास में किसी नारी-कंठ की हिचकी सी सुनाई दी। मंद-मंद कराह के साथ रोना और छटपटाना भी मालूम पड़ा। वह किसी तरह डगमगाता हुआ उधर बढ़ा, जिधर से आवाज़ आ रही थी। देखता क्या है कि किसी पुरुष ने एक नारी के हाथ-पाँव बाँध दिये हैं। मुँह में कपड़ा ठूँस दिया है और गला घोंटने की तैयारी में है। रामसिंह के पैरों में न जाने कहाँ से जान आ गई। वह तेज़ी से आगे बढ़ा और तलवार के एक ही झटके में साफ़ कर दिया। उसने जल्दी-जल्दी नारी के मुँह से कपड़ा निकाला। हाथ-पैर के बंधन खोले और उसे आश्वत करके पूछा, "देवी! आप कौन हैं? आप कहाँ जाना चाहती हैं?" तब तक नारी खड़ी हो गई थी। वह सैनिक वेश देखते ही डर गई। कुछ बोली नहीं। उधर रामसिंह जिस साहस से उठकर यहाँ तक आए थे, वह साहस न जाने कहाँ भाग गया। वे हाँफते हुए वहीं बैठ गए। शरीर में जब शक्ति रहती है तभी साहस भी साथ देता है। रामसिंह कई दिनों की भूख-प्यास से शक्ति खो चुके थे। उन्हें इस प्रकार हतचेत होते देख वह नारी घबड़ा-सी गई। तब तक उन्होंने कहा, "देवी! अब मैं अपने अंतिम क्षण समीप देख रहा हूँ। आप मेरे लिए इतना कर देना

कि कोई जैसलमेर महारावल को खबर कर दे कि बीकानेर का रामसिंह युद्ध में मारा गया। वह पीथल की न तो चम्पा को ही यमराज से वापस ला सका और न उस नीच अकबर को ही···" इससे आगे वह नहीं बोल पाया। मूच्छित हो गया।

वह नारी चिंता में पड़ गई। उसे याद आया कि भोजन जल और मदिरा अभी काफी वहाँ बची पड़ी है। "मैंने थोड़ा ही खाया था कि श्वेतांग ने मौका पाकर मेरे हाथ-पाँव बाँध दिये थे और गला घोटते-घोटते यहाँ तक घसीटता हुआ लाया था।" वह तुरन्त कुछ दूर दौड़कर भागती हुई गई और वापस आई। उसने मदिरा में जल मिलाकर रामसिंह को पिलाया। चेतना आने पर भोजन दिया। जब रामसिंह स्वस्थ हुए तो उसने बतलाया, "मानव जन्म से कपटी, धोखेबाज़ या राक्षस नहीं होता। संस्कार और वातावरण उसे वैसा बना देता है। मुझी को लीजिए। मैं सम्राट् अकबर के मीना बाजार की रानी हूँ। खुरशीद मेरा नाम···"

इसी बीच रामसिंह बोल उठा, "तुम्हीं हो वह खुरशीद, जिसने मेरे अनुज की फुलवाड़ी-सी मुस्कराती जिन्दगी उजाड़ दी? नीच! अभी तुम्हें दो टुकड़े कर देता। लेकिन···लेकिन···तुम एक नारी हो, मेरा हाथ नारी पर नहीं···"

खुरशीद ने बात को बीच में ही काट लिया। उसने कहा, "सर हाज़िर है मेरे परवरदिगार! यह अरमान दिल में न रखिये···लेकिन अभी रुकिए, मुझे कह लेने दीजिए। ··· हाँ, तो मैं कुछ नहीं थी। मेरी ज़िन्दगी अकबर के हाथों में नाचती थी, जैसा वह नचाता था। पीथल की जिन्दगी उजड़ी या बसी, इसके लिए मैं अपने को ज़िम्मेदार नहीं मानती। मैं तो अकबर के हाथों में खिलौना थी। खिलौने का क्या अस्तित्व?·· लेकिन आज यह नई ज़िन्दगी मिली है। अकबर की खुरशीद की ज़िन्दगी खत्म हो गई। अब इस खुरशीद की जिन्दगी आपकी है। बोलिए आप इसका उपयोग किस तरह करना चाहते हैं?"

रामसिंह—हुँह···यह प्रपंच क्यों करती हो? मुझे ठगने की कोशिश

मत करो। जो तुम माँगो वह दे दूँ। साफ कहो। प्राण-दान तुम्हें दे दिया है। चाहो तो अकबर के दरबार तक भी तुम्हें पहुँचा दूँ। डरो मत। प्रपंच मत करो।"

खुरशीद—मैं प्रपंच थी, मायावी थी, सब कुछ थी। तब आपको कहना नहीं पड़ता। मैं स्वयं ही आपको लेकर आगरे तक जाती और आप वहाँ उल्टे मुँह खाई में सर्प, बिच्छू आदि ज़हरीले कीड़ों के बीच फेंक दिए जाते। मैं मुस्कराती और अकबर'''। खैर, आप विश्वास करें तो कीजिए कि यह मेरी नई ज़िन्दगी अकबर की गुलाम नहीं है। है तो सिर्फ आपकी। आपने मेरी जान बचाई है। इसके मालिक भी अब आप ही हैं। आपका प्यारा भाई मेरी करतूतों से पागल हुआ है। कितनी नीच हूँ मैं? '''दोज़ख के क़ाबिल भी न रही।

यह कहकर खुरशीद ने रामसिंह के पैर पकड़ लिये और फूट-फूटकर रोने लगी, "पता नहीं, खुदा मुझे कैसे माफ करेगा? मुझे प्रायश्चित का मौका दो, मेरे परवरदिगार! कुछ तो अपने पापों को इस जन्म में धोलूँ। बड़ी मेहरबानी होगी।'''मौका दो, मेरे खुदा!"

सच्चे हृदय से जो पुकार उठती है, उसको परमात्मा भी सुनता है। उस आवाज़ की कातरता पर प्रभु के रोम भी सिहर उठते हैं। रामसिंह न नहीं कर सके। हाँ, उन्होंने इतना कहा, "मैं एक राजपूत हूँ। माँगना मेरा धर्म नहीं है। तुमसे भी कुछ माँगूगा नहीं, चाहे तुम त्रिलोकी का राज ही क्यों न दो। हाँ, तुम्हारे प्रायश्चित्त में मैं अवश्य हाथ बँटाऊँगा। तुम्हारी आत्मा जिन-जिन कार्यों से पवित्र बनेगी, उन-उन कार्यों में मेरा सहयोग तुम्हें मिलेगा।" खुरशीद ने सिर हिला दिया। बड़ी देर तक मौन बैठी रही। रामसिंह ने एक लम्बी साँस ली और कहा, "लेकिन इन सब बातों से क्या होगा खुरशीद? चम्पा तो जल मरी। मेरा पागल पीथल कैसे जीएगा?"

खुरशीद हँस पड़ी और बोली, "परवरदिगार। मेरा नाम खुरशीद है। पीथल की ज़िन्दगी के अन्धकार को रोशनी से भर दूँगी। चम्पा को

जिला दूँगी और कुछ ही दिनों में आपके पीथल की उजड़ी हुई ज़िन्दगी ऐसी बसा दूँगी कि बादशाह भी देखकर तरस जाएगा। आप···"

रामसिंह अपने को न रोक सके और हड़बड़ाकर पूछ बैठे, "सच खुरशीद ! अच्छी खुरशीद ! देवी खुरशीद ! ज़रा इस बात को एक बार··· एक बार और कहो। कहो न···"

खुरशीद ने बार-बार कहकर रामसिंह के धड़कते दिल को शान्ति दी और बतलाया कि जो आदमी उसका गला घोंट रहा था, वह श्वेतांग था। उसकी सारी घटना, चरित्र-हीनता, और उसकी ज़िन्दगी के सारे वाम सिद्धान्त हँस-हँस कर सुनाती रही। रामसिंह को भारी सुख पहुँचा कि ऐसा राक्षस उनके हाथों मारा गया। वे इतनी सारी खुशियों को एक साथ नहीं सँभाल सके और खुरशीद की पीठ को सहलाने लगे। खुरशीद ने दिल की पवित्रता की लहर में चम्पा की सारी कहानी सुना दी।

रामसिंह खुशी में झूम उठे। उन्हें चम्पा की दिलेरी पर गर्व-सा हो गया। उन्हें विश्वास हो गया कि अब शक्तिसिंह चम्पा का हाथ पीथल को बड़ी खुशी के साथ दे देंगे। खुरशीद ने कहा, "चम्पा को जिस दिन मालूम होगा कि मैंने झूठ बोलकर उसके दिल को उसके प्यारे पीथल से अलग कर दिया था उस दिन वह मुझसे चाहे जितनी घृणा करे, लेकिन वह क्षण-भर भी चैन नहीं लेगी और पीथल के चरणों में गिरेगी, रोएगी और क्षमा पर क्षमा माँगकर सर्वदा सर्वदा के लिए उसकी हो जाएगी। पहले से सौगुना प्यार उसकी ज़िन्दगी में भर जाएगा।"

ठीक है। रामसिंह की बात भी ठीक है। खुरशीद की बात भी ठीक है। पीथल और चम्पा की लहराती ज़िन्दगी की आशा भी ठीक है। लेकिन लालसा···उफ् उसकी ज़िन्दगी लौटा लाने की शक्ति किसमें है ?

"······?······?······?······?"

× × × × ×

तब पीथल का दिमाग बिल्कुल ठीक हो गया था। वह अकस्मात् खुर-शीद की देख-रेख में भाभी सहित बीकानेर चला आया।

एक दिन सब ने सुना—धरती ने भी, आकाश ने भी, अकबर ने भी, मानसिंह ने भी, सारे शत्रु और सारे मित्रों ने भी। बीकानेर की धरती मंगल-गान से भर उठी, तोरण-वंदनवारों से सारा राज्य सज गया। रामसिंह के पैर धरती पर न थे। बस, आकाश में ही उड़ रहे थे। आज उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो रही थी। आकाश के चाँद-सितारों ने कहा, "हमारी गवाही झूठी नहीं हुई।" शक्तिसिंह ने बारात के स्वागत में महाराणा को आमंत्रित कर लिया था। महाराणा प्रताप ने उमंग और उत्साह से भरकर चम्पा का हाथ पीथल के हाथों में दे दिया। अकबर से पराजित होने से सारा दुःख पीथल और चम्पा की शादी से मिट गया। उन्होंने चारण सूरचन्द टापरिया और रम्भा को भी पीथल के हाथों में सौंपकर कहा, "तुम्हें विश्वास और निष्ठा की जीती-जागती दो मूर्तियाँ दे रहा हूँ। इन पर निस्संकोच गहरा विश्वास रख सकते हो।"

और खुरशीद? वह उस समय वहाँ नहीं थी। चुपके-चुपके पीथल को बीकानेर छोड़कर वह अकबर के मीना बाज़ार में आ गई थी। अभी उसे पीथल के लिए बहुत कुछ करना था। वह पहले अकबर के हाथों का खिलौना थी और अब पीथल की कनीज़···उसके चरणों की धूलि के लिए वह सौ बार मर सकती थी। उसने देख लिया था कि पीथल की आँखों में अब भी उसका वही स्थान है—अपने से दगा करने वाले से भी कोई प्यार कर सकता है, इसकी कल्पना तक उसने नहीं की थी। वह पीथल को आदमी नहीं समझती थी—देवता समझती थी, खुदा समझती थी। चम्पा सहित जब पीथल आगरे लौटा तो वह सब में पहली थी जिसने स्वागत में फूलों की डाली भेजी थी और अपने मन के मन्दिर में चम्पा-पीथल को बिठाकर उसी तरह पूजन किया था जिस तरह कोई राम-भक्त सीता-राम की करता है।

चतुर्विंशति परिच्छेद

आगरा पहुँचते ही पीथल की भाभी ने चम्पा-पीथल विवाह के उपलक्ष में एक भारी उत्सव का आयोजन किया। संगीत और कविता-पाठ के साथ-साथ कोठी के भीतर महिलाओं ने नृत्य और नाटक से समाँ बाँध दिया। सभी सामंत-सरदारों आदि को प्रीति-भोज भी दिया गया। नवाब साहब, मानसिंह, दीवानजी और रायसिंह भी पधारे। भोजन करते समय नवाब साहब ने एक बड़ा रंगीन इशारा मानसिंह की ओर किया, किन्तु मानसिंह चम्पा के रूप के अत्यधिक प्रेमी होते हुए भी उस इशारे का स्वागत नहीं कर सके। उन्होंने कहा, "मुझे इतना नीच न समझें। वह बात समाप्त हो गई। अब चम्पा हमारे छोटे भाई के समान पीथल की वधू है। मैं अब दोनों के वैवाहिक जीवन की मंगला-कामना ही करूँगा। उन पुराने विचारों को तथा प्रेम-भावना को पवित्र स्नेह में ढालने की कोशिश करूँगा।" दीवानजी और रायसिंह मौन रहे। उन्होंने प्रसन्नता या अप्रसन्नता कुछ भी प्रगट नहीं की। सम्राट् अकबर ने अपनी ओर से बधाई-संदेश भेजा था।

रात्रि के जगमगाते प्रकाश में रम्भा ने चम्पा का शृंगार किया। आज वह अत्यधिक प्रसन्न थी। उसका मन बार-बार नाच उठता था। पैर अपने आप थिरक उठते थे। उसने चम्पा को प्रसन्न और उत्फुल्ल करने के लिए गा-गाकर उसके सौंदर्य का वर्णन किया। उसके भाव कुछ इस प्रकार थे—

"सखि! तुम्हारी लहराती केश राशि को देखकर ही बादल शर्म के मारे भागकर छिप गए हैं।"

"सखि! आकाश के आइने में तुम आज अपना मुँह देख रही हो तो

तुम्हारे मुँह के प्रतिबिम्ब को दुनिया वाले पूनम का चाँद कहने लग गए हैं !"

"सच कहती हूँ रानी ! फूलों की पंखुड़ियों पर नंगे पाँव न चलना। छाले पड़ जाएँगे।"

"आँखों को घूँघट में छिपा लो। इनकी खूबसूरती को देखकर बेचारे मृग वनों में, खंजन उत्तर दिशा में और मछली जल में भागकर छिप गई है। इनमें काजल जरूर लगा लो, नहीं तो इन्हें शराब की प्याली समझकर पीथल पीने लगेगा और ज़रा भौंहें झुका लो, नहीं तो पीथल उनके वंकिम सौंदर्य से बेहोश होकर गिर पड़ेगा।"

"हाय ! इतना तबस्सुम न बिखेरो। इतना मुस्कराओ मत। पीथल पर बिजली गिर पड़ेगी।"

"भौंरा तुम्हारे गालों को गुलाब समझकर रस चूसने बैठ गया है। उसे उड़ा दो, वह काला तिल नहीं है।"

शृंगार के पश्चात चम्पा ने पीथल को भीतर बुलवाया। दोनों ने मिलकर लालसा की प्रतिमा प्रतिष्ठित की और विधिवत् पूजन किया। अब वह उन दोनों के पारिवारिक जीवन की कुलदेवी थी। भाभी दूर से बैठी-बैठी देख रही थीं। उन्होंने चुपके से अपने आँसुओं का अर्घ्य लालसा की प्रतिमा को समर्पित कर दिया। पूजा के बाद चम्पा ने प्रतिमा के चरणों में अपना आँचल फैला दिया और बोली, "जिज्जी ! तुम कुछ भी न जानते हुए भी प्रेम का सच्चा स्वरूप समझती थीं। हम सब कुछ जानते हुए भी कितने अनजान थे और हैं। अन्धकार में जब हम मार्ग भूलने लगें तो हमें पथ दिखाती रहना। जिज्जी ! तुमने मेरी भूलों को कभी याद नहीं किया। मेरे सुहाग को अपना सर्वोपरि समझा। तुमसे करोड़ों जन्मों में भी मैं उऋण नहीं हो सकती।"

तब तक किसी तरह अवकाश निकालकर खुरशीद बदले हुए वेष में वहाँ पहुँची। वह सारे बंधनों को तोड़ती हुई प्रतिमा के चरणों में गिर पड़ी, "तुम्हारी कथा सुनकर मेरा रोम-रोम तुम्हें पूजना चाहता है। विश्वास नहीं

होता कि तुम कभी सचमुच हाड़-माँस के शरीर में रही होगी। तुम तो साक्षात प्रेम हो। तुम्हारी गाथा से मुझ जैसी पतिता को भी पावनता का स्पर्श मिल जाएगा। मुझे पूर्ण विश्वास है।"

तब भाभी के श्रीमुख से सबने लालसा के बचपन के अनेक पावन प्रसंग सुने। उनकी दृष्टि में लालसा इतिहास की अनुपम सृष्टि थी।

रात्रि पर्याप्त बीत गई थी। खुरशीद को किले में वापस पहुँचने की शीघ्रता थी। वह वहाँ से किसी दूसरे बहाने बाहर निकली थी और गुप्तचरों की दृष्टि को धोखा देते हुए आ पहुँची थी। जाते समय वह पीथल के चरणों में कुछ दूर लेट गई और भावुकता में फूट फूटकर बरस पड़ीं, "मेरे देवता! यह पतिता इतनी अपराधिनी है कि तुम्हारे चरणों को स्पर्श करने योग्य भी नहीं रही।" इतना कहकर उसके चरणों के पास के नीचे की धूलि उठाकर उसने सिर-माथे पर चढ़ाया और आँख-कान आदि सर्वत्र लगाती हुई सिहर उठी। बोली, "नाराज़ न होना देवता! इससे मेरी आत्मा को भारी शान्ति मिलती है। गोकि मैं बुत-परस्त नहीं हूँ, लेकिन मुझे न जाने क्या हो गया है...।" और दो मोती सीपी-से चू पड़े।

दूसरे दिन खुशरोज़ था। सारी नगरी नई दुलहिन जैसी सजी हुई थी। संगीत की लहरी और नृत्य की छलछलाहट से नागरिक मस्त हो रहे थे। स्थान-स्थान पर खेल, तमाशों का राज्य था। किले में मीना बाज़ार की सजावट अपनी पूरी जवानी पर थी। सौंदर्य के इठलाते अँगूरी यौवन से बाज़ार फट रहा था। सभी सरदार-सामंतों की स्त्रियाँ खिलखिलाती हुई अपनी आज़ादी में रसिकता का परिचय दे रही थीं। कितनी खूबसूरती थी इस बाज़ार में। क्या कहना? खरीदने-बेचने वाली सभी स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ थीं। पुरुषों का नाम-निशान भी नहीं था। यहाँ तक कि पहरे पर भी स्त्रियाँ ही थीं। किसी भी पुरुष को वहाँ आने की इजाज़त नहीं थी। घघरिया राज था। लगता था मानो स्त्रियों ने इस धरती के सारे पुरुषों को कहीं समुद्र पार भेज दिया हो या देश निकाला दे दिया हो।

ठीक इसी समय दीवानजी पीथल की कोठी पर आए और सभ्यता

की मूर्ति की तरह पीथल का अभिवादन किया। नवरोज की बधाई दी और चलते समय कह गए कि बड़े सरकार आने वाले हैं। मानसिंहजी के पास जाना है। पीथल ने बतलाया कि वहाँ वह भी जाएगा। तब दीवानजी ने इस लहज़े में कहा मानो कोई खास बात न हो, "अरे हाँ, बड़े सरकार के साथ आपकी छोटी भाभी भी आ रही हैं। बहू रानी और आपकी बड़ी भाभीजी को कह दीजिएगा कि ज़रा उसे मीना बाज़ार दिखा लावें। आज खुशरोज़ का बड़ा भारी मेला लगा होगा वहाँ।"

पीथल ने पूछा, "भाई साहब से कहना चाहिए था आपको। मैं अलग रहता हूँ तो क्या ? हम सभी उन्हीं के अंग हैं, आज्ञाकारी हैं।" दीवानजी ने बताया कि बड़े सरकार की बड़ी इच्छा है। तभी तो वे आपकी छोटी भाभी को लेकर आ रहे हैं। मेरी तो बेटी है वह। मुझसे भी कई बार ज़िक्र किया था उसने। पीथल यह सुनकर राज़ी हो गया।

अभी दीवानजी कुछ ही दूर गए होंगे कि रायसिंह अपनी नव वधू सहित पहुँचे। पीथल ने दोनों को पाँव छूकर अभिवादन किया। सबने बड़े ही प्रफुल्ल वातावरण में भोजन किया। केवल पीथल की भाभी गंगादे भोजनादि में सम्मिलित नहीं हुईं। उनकी या तो रुचि नहीं थी अथवा पता नहीं कोई अन्य कारण होगा। भोजन के पश्चात रायसिंह पीथल को साथ लेकर मानसिंह के पास जाने के लिए तैयार हो गए। पीथल ने रायसिंह की आज्ञा से रम्भा, चम्पा और अपनी भाभी गंगादे को कह दिया कि खुशरोज़ का मेला देखने मीना बाज़ार अवश्य जावें।

गंगादे ने पीथल को अलग कक्ष में बुलाया और पूछा कि तुम मुझे और चम्पा को वहाँ जाने के लिए क्यों मजबूर कर रहे हो ? पीथल ने सारी बात बतला दी। दीवानजी का नाम सुनते ही गंगादे चिढ़ गई और बोलीं, "इसमें कोई न कोई षड्यन्त्र अवश्य है। यह दीवान जब कभी मेरे पास चार-पाँच बरसों में आया है, तब कोई न कोई षड्यन्त्र लेकर ही आया है। पता नहीं, सारा षड्यन्त्र यह स्वयं रचता है या तुम्हारे भै······नहीं···नहीं, या कोई और।"

पीथल—तो क्या हुआ भाभी ! तुम न जाना। वैसे भी तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है। चम्पा और रम्भा को छोटी भाभी के साथ भेज देना। वैसे भी वहाँ खुरशीद है। मीना बाजार की रानी है। बिना उसकी आज्ञा के वहाँ एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।

गंगादे—पीथल! तुम अब भी भोले हो। सुना है,यह खुशरोज़ बादशाह की वासना-तृप्ति का साधन है। वहाँ सभी राजपूत सामंतों की बहू-बेटियाँ जाती हैं। अकबर की दासियाँ वहाँ सब पर निगाह रखती हैं और उच्च एवं प्रसिद्ध राजपूत घरानों की बहू-बेटियों को किसी न किसी बहाने किसी भूलभुलैयाँ के रास्ते अकबर के पास एकांत में लाकर खड़ा कर देती हैं। अकबर उनका सतीत्व लूटता है और हीरे-मोतियों से उनका आँचल भर-कर वापस कर देता है।

पीथल—मैंने भी सुना है। लेकिन मुझे यह सारा झूठ मालूम पड़ता है। अकबर जैसा प्रतापी महान सम्राट् ऐसा क्यों करेगा ?

गंगादे—इससे उसकी हीन-ग्रंथि को संतोष मिलता है। उच्च राजपूत घरानों की उच्च-ग्रंथि का मुँह नीचा होता है। मुसलमानों के साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध बढ़ाने में भी इससे मदद मिलती ही है। एकता बढ़ाने का भी इसको अकबर एक अच्छा रास्ता मानता है।

पीथल—फिर भी अब हमें डरने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि हमारे बीकानेर, जयपुर, जोधपुर आदि सभी ने अपनी-अपनी बेटियाँ उसे दे दी हैं। फिर हम तो झुक ही गए हैं, हमें वह अब क्यों झुकाएगा ?

गंगादे—तुम झुक गए हो। महाराणा प्रताप और सिसोदिया वंश तो अभी तक नहीं झुका है ? टुकड़े-टुकड़े होकर वह फौलाद की तरह बिखर गया है, लेकिन अकबर को बेटी देने का प्रस्ताव कभी स्वीकार नहीं किया। और तुम्हारी चम्पा तो महाराणा की खास भतीजी है।

पीथल—हाँ भाभी ! ठीक कहती हो।...फिर भी...फिर भी चम्पा को जाने दो। अन्यथा भाई साहब की अवज्ञा होगी। वैसे मुझे चम्पा पर पूरा-पूरा भरोसा है। वह अपने प्राणों पर खेलना अच्छी तरह जानती है।

...और भाभी ! उसके जाने से यह लाभ भी तो होगा कि हम सच्चाई समझ जाएँगे। सुनी-सुनाई बात का विश्वास करना भी ठीक नहीं है।

गंगादे मौन हो गई। पीथल अपने भाई के साथ मानसिंह के पास चल दिया।

चम्पा और रम्भा ने तैयारी की और हँसी-खिलखिलाहट में आमोद-विनोद करती हुई रायसिंह की नई बहू के साथ मीना बाज़ार पहुँच गईं। वहाँ से कई प्रकार की कलात्मक वस्तुओं को उन्होंने देखा और खरीदा। नए-नए परिचय भी हुए। अवसर पाकर न जाने किस ओर से खुरशीद राजपूतानी के वेष में चम्पा के पास आई और तेज़ी से एक खूबसूरत कटार उसकी चोली में रखकर धीरे से बोली, "यह तुम्हारे सतीत्व और सुहाग की बहन है। आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारी रक्षा करेगी।" चम्पा ने समझकर आँख का इशारा कर दिया। खुरशीद बिजली की तरह दूसरी ओर निकल गई। अचानक वहाँ कुछ स्त्रियों की बड़ी भीड़ हो गई। चम्पा,रम्भा और रायसिंह की नव वधू का साथ छूट गया। तीनों तीन ओर हो गईं। एक-दूसरे को ढूँढ़ने लगीं। चम्पा का पसीना छूट गया। वह फूंक-फूंककर पाँव रखने लगी और जिधर अधिक से अधिक स्त्रियाँ जाती थीं उधर ही वह भी जाने लगी। किन्तु वहाँ की भूलभुलैयाँ की रचना शायद चक्रव्यूह से भी अधिक पेचीदी थी। वह नहीं समझ सकी। अकेली पड़ गई। किधर भी जाए घूम-फिर कर फिर वहीं आना पड़े।

अब वह सर्वथा सुशोभित कक्ष के भीतर थी। हीरे-मोतियों से जगमगाता कक्ष और उसके बीच मुस्कराता हुआ अकबर।

"आज बहुत दिनों की मुराद पूरी की आपने।"

"..............................."

"खूबसूरती की तूफान हैं आप। यह शाहंशाह अकबर भी पत्ते की तरह उड़ रहा है आपके आकषर्ण में।"

"..............................."

"आह ! खूबसूरती कितनी बेज़ुबाँ है। यह बेज़ुबानी तो आपकी खूब-

सूरती को लाखगुना बढ़ा रही है।"

"......................................"

चम्पा नहीं बोली, नहीं बोली। पर-पुरुष से बोलने का उसे अभ्यास न था। किन्तु मन ही मन अपना कर्त्तव्य निश्चय कर चुकी थी।

वासना मनुष्य को अंधा बना देती है। वह कुछ सोचने नहीं देती। अकबर भी अपवाद न था। वह प्यार से मुस्कराता हुआ चम्पा की ओर बढ़ा। उसकी आँखों में वासना का शैतान चुहुल कर रहा था। सहसा चम्पा ने एक छलाँग लगाई और वह क्षणभर ही में अकबर को गिराकर उसके सीने पर सवार हो गई। जब तक अकबर अपनी रक्षा का उपाय सोचे तब तक चम्पा ने अपनी चोली से कटार निकालकर उसके सीने पर लगा दी। अकबर के छक्के छूट गए। न वह हिला न डुला। चुपचाप शान्त, जहाँ का तहाँ पड़ा रहा। चम्पा उसके सीने पर कटार की नोक लगाए हुए बोली, "वासना के नीच कीड़े! बोल, तेरी अंतिम आकांक्षा क्या है?"

अकबर के अधर धीरे-धीरे हिले, "प्राण-दान।"

"लेकिन शर्त है कि फिर कभी किसी नारी का सतीत्व नहीं लूटोगे।"

"जी, कसम खाता हूँ।"

"आज से यह तुम्हारा खुशरोज़ का व्यभिचार हमेशा के लिए बन्द होगा।"

"जी, कसम खाता हूं।"

चम्पा ने कटार खींच ली और शेरनी की तरह गरज कर बोली, "यह तुम्हारी वासना का ज़हर ही तुम्हारे साम्राज्य और वंशधरों को ले डूबेगा। रूप पूजा की वस्तु है, अपमान की नहीं।"

अकबर लुटे हुए जुआरी की भाँति चुप खड़ा हो गया।

"मुझे क्षमा करो। ऐसी गुस्ताखी अब ज़िन्दगी में किसी भी औरत के साथ उसकी मरज़ी के खिलाफ नहीं करूँगा।"

"लेकिन तुमने सिसोदिया वंश को समझा क्या है? महाराणा की पुत्री को तुमने गाजर-मूली समझ लेने की मूर्खता क्यों की?"

"मैं आपकी पाकीजगी की तहे दिल से इज्जत करता हूँ।"

"प्रमाण क्या है ? दो।"

अकबर ने अपनी शाही मुद्रा वाली मोतियों की माला उतारकर चम्पा के पैरों में रख दी और ससम्मान उसे पीथल की कोठी तक पहुँचा दिया।

उसके पहुँचने से पहले वहाँ रम्भा पहुँच चुकी थी। गंगादे अशुभ की आशंका से थरथरा रही थीं। जब उन्होंने चम्पा को मुस्कराते हुए देखा तो उनकी जान में जान आई। अभी तक रायसिंह की नई बहू नहीं लौटी थी। बाहर पीथल और रायसिंह बैठे-बैठे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गंगादे ने पीथल को थोड़ी देर के लिए भीतर बुलवाया और चम्पा के मुँह से सारी घटना सुनवा दी। पीथल आग-बबूला हो गया और अपने बड़े भाई रायसिंह से बुरी तरह चिढ़ गया। उसने चम्पा से शाही मुद्रा वाली मोती-माला ले ली और बाहर लाकर रायसिंह के सामने रख दी। सारी बात स्पष्ट हो गई। रायसिंह के मुँह पर स्याही फिर गई।

इतने ही में रायसिंह की नव वधू सोने-हीरे और मोतियों के आभूषणों से लदी फदी तथा उनकी आवाज़ में छमछमाती हुई परी-सी रथ से उतरी। रायसिंह का खून खौल उठा। उनकी जलती आग में पीथल ने घी छिड़क दिया, "भाई साहब ! जरा देखूं तो आपकी मूछें किधर हैं ?" यह सुनते ही भीतर से चम्पा, रम्भा और गंगा की हँसी रोकने से भी नहीं रुकी। रायसिंह जल-भुनकर राख हो गए। उनके स्वाभिमानी जीवन में उनका इतना भारी अपमान, वह भी आँखों के सामने, कभी भी नहीं हुआ था। उन्होंने आव देखा न ताव लपक कर तेजी से उठे और कोठी के अन्दर घुसने से पहले ही लपलपाती नंगी तलवार से अपनी नव वधू को दो टुकड़े करके रख दिये। तड़पकर पीथल को बोले, "पकड़ मँगाओ उस बेईमान नीच दीवान को। आज उस......"

पीथल ने शांत किया। उन्हें आज वह अपनी भाभी के पास ले जाने में जरा भी नहीं हिचका। बाहर आकर दीवानजी को सादर बुला लाने के लिए अपने सिपाहियों को भेज दिया।

पंचविंशति परिच्छेद

अभी शाम से सुबह नहीं हो पाई थी कि बात सफेद से स्याह हो गई। बीकानेर से रामसिंह का पत्र पीथल को मिला—

प्रिय पीथल,

मैंने कई पत्र भाई साहब को सवारों के हाथ भेजे। उत्तर एक का भी नहीं मिला। या तो दीवान बीच में सारे पत्र खा जाता है या भाई साहब को अपने राज्य से मोह नहीं है। यहाँ अचानक जाटों ने धोखे से भयंकर विद्रोह कर दिया है। यदि पन्द्रह-बीस दिन के भीतर-भीतर यहाँ कोई सैनिक सहायता नहीं पहुँची तो बीकानेर पर जाटों का झंडा लहराएगा। उनके पास युद्ध-सामग्री न जाने कहाँ से इतनी पहुँच चुकी है और पहुँच रही है कि उनका सामना हम जान पर खेलकर भी नहीं कर पा रहे हैं।

परिस्थिति के अनुकूल जो उचित समझो, करना।

तुम्हारा अग्रज

रामसिंह

इस पत्र से पीथल के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह सन्न रह गया। सन्देह पर सन्देह जमने लगा। वह झट सवार हुआ और रायसिंह की कोठी पर पहुँचा। रायसिंह अभी सो रहे थे। सेवकों की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि जगावें। पीथल ने सीधा उनके शयन-कक्ष में पहुँचकर उन्हें जगा दिया और पत्र उनके हाथों में देकर बोला, "भैया! दीवानजी का पता कल से अभी तक नहीं चला। वे अपने आवास पर नहीं हैं। उनके सेवकों से पता चला कि वे हैं तो यहीं पर, लेकिन किसी से मिलने गए हैं।"

रायसिंह की आँखों में खून उतर आया। वे पीथल को सीने से लगा-

कर बोले, "पीथल! जिन्दगी में यह सबसे बड़ा धोखा हुआ। दीवान ने हम सबको चकमा दे दिया। हमारे घर में फूट डाल दी और राज्य हड़पने को तैयार हो गया। यह सारी करतूत उसी की है। अब वह आगरे से निश्चय ही भाग चुका है और वहाँ जाकर जल्दी से जल्दी हमारा राज्य हड़प लेना चाहता है। अपनी बेटी की शादी मुझसे करके मेरी आँखें बन्द कर दीं। उसके पिता ने भी एक बार हमारे राज्य का तख्ता पलटने की कोशिश की थी। तब भी जाटों से ही विद्रोह कराया गया था। लेकिन हमारे पिता के सामने कुछ न चली। मैं छोटा था और यह दीवान मेरे साथ पढ़ता-लिखता था। मैंने इस पर विश्वास करके पिताजी से इसे क्षमा दिलवा दी, लेकिन इसके कुल को पिताजी ने ज़िन्दा आग में स्वाहा करा दिया था। खैर, कोई चिन्ता नहीं। जल्दी करो। मैं गंगा से मिलूँगा।" रायसिंह पीथल के साथ तुरन्त गंगादे के पास आए। न जाने क्या हुआ, वे रो पड़े, "देवी! मेरी नासमझी को माफ़ कर देना।" कहकर तेज़ी से तीर की तरह बाहर निकले। उधर गंगादे, "सुनिए, रुकिए ज़रा......" कहती ही रह गईं। रायसिंह के पास क्षणभर का अवकाश नहीं था। उन्होंने आज कई वर्षों बाद पीथल की पीठ थपथपाई। माथा चूमा और भर्राए स्वरों में बोले, "पीथल! स्वस्थ और सावधान रहना। अपनी भाभी का ख्याल रखना। और सारे परिवार की राज़ी-खुशी की सूचना यहाँ से हर रोज़ सवार के हाथ मेरे पास बीकानेर भेजते रहना। मैं अभी मानसिंह से मिलूँगा और वहाँ से सहायता लेकर सीधा बीकानेर पहुँचूँगा। वहाँ की सूचना तुम्हें रोज़ मिला करेगी। जैसा मौका आए, वैसा करना।"

रायसिंह आँधी की तरह उड़ चले, मानसिंह के आवास की ओर। आज पीथल ने जब अपने भाई की चाल-ढाल, सवारी और बुद्धि की तीव्रता देखी तो सिहरन छूट गई। उसके मुँह से निकल पड़ा, "भैया।"

अभी पीथल की आँखें सूखने भी नहीं पाई थीं कि चारण सूरचन्द टापरिया, जो मेवाड़ से अभी लौटा ही था, बोला, "सरकार अनर्थ हो गया।"

पीथल चौंक उठा। पूछा, "क्या ?"

चारण—महाराणा चारों ओर से पहाड़ियों में घिर गए हैं। कोई सेवक-चाकर भी नहीं रहा। हफ्तों से भूखे हैं। रसद पहुँच नहीं पाती। शक्तिसिंहजी कहीं दूर सेना एकत्र करने के फेर में चले गए हैं। कहीं देश की स्वतन्त्रता का सूरज डूब न......।

पीथल—चुप। अशुभ कल्पना मत करो। जो देखा या सुना है उसे बताओ।

चारण—आजकल महाराणा जावर की पहाड़ियों में भीलों की देख-रेख में छिपे हुए हैं। घास का भोजन, फूस की शैया, आधी नंगी देह, दुर्बल शरीर। यही तो देखा है, जैसे शेर को पिंजड़े में बन्द करके भूखों तड़पाकर मारा......।

पीथल—सब कुछ पूरा-पूरा कहो। आज ये कान सारी अशुभ घटनाओं को सुनने के लिए ही खड़े हैं।

चारण—एक भील कह रहा था कि महाराणा को कई बार घास की रोटी भी नसीब नहीं हुई। एक दिन तो हद ही हो गई। स्वयं महारानी ने घास और जंगली अन्न मिलाकर चपातियाँ बनाईं और एक-एक सभी बच्चों में बाँट दीं। महाराणा और महारानी भूखे ही घास-फूस पर लेटे थे और अपनी आँखों से यह हृदय-विदारक दृश्य देख रहे थे। कोई बच्चा और रोटियाँ माँग रहा था, कोई दूसरे की छीन रहा था, कोई रो रहा था। इसी बीच एक बन-बिलाव झपट्टा मारकर छोटी बालिका के हाथों से रोटी छीन ले गया। बालिका चीख उठी। महाराणा खून के आँसू रो पड़े और अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। तब उन्हें बिलख-बिलखकर रोते हुए सबने पहली बार देखा। जिस महाराणा की आँखों से कभी दीनता नहीं टपकी, वही......।"

पीथल—अच्छा! अब चुप रहो। मेरा सिर फटा जा रहा है। कल तक कुछ सोचूंगा। आज दरबारे-आम में भी जाना है।

आँसू और खुशी छिपाए नहीं छिपते। आज दरबारे-आम में अकबर

के मुँह पर बरबस ही हँसी फूट रही थी। पीथल यह सोचकर गया था कि अकबर आज बहुत उदास होगा। मुँह पर स्याही पुती होगी। अभी वह चम्पा के द्वारा हद दर्जे के अपने अपमान को भूला ही कहाँ होगा ?

पीथल में जवानी तो थी ही, बचपन भी अभी बेहद था। वह अपनी जेब में शाही मुद्रा वाली वह मोतीमाल साथ लेता गया था जो अकबर के अपमानित होने का पक्का प्रमाण था। बादशाह बहुत पहले से ही पीथल से जला करता था और कभी कभी व्यक्तिगत बातचीत में बेतुका मज़ाक भी कर दिया करता था। वैसे पीथल के साथ उसका व्यवहार बड़ा ही उत्तम था। लेकिन था सब-कुछ ऊपर-ऊपर। अन्दर से दोनों एक-दूसरे को पहचानते थे। पीथल ने सोचा था कि अगर मौका पाकर बादशाह ने आज कुछ अकेले में मज़ाक किया तो मैं कुछ कहूँगा नहीं। बस, मुस्कराकर चुपके से वह माला दिखा दूँगा। किन्तु आदमी सोचता और है और होता कुछ और है। आज बादशाह की नज़रों में पीथल एक नाचीज़ था। उसने कुछ परवाह नहीं की। ढंग से बोला भी नहीं। हँसी-खुशी दरबारे-आम बरख्वास्त किया और उठकर अन्दर चला गया। सभी लोग अपने-अपने घर की ओर लौट पड़े।

चिन्ताग्रस्त और बेचैन पीथल हारा-थका अभी घर लौटा ही था कि बादशाह का संदेश मिला, "तुरन्त मिलो। खास बात करनी है।" पीथल को उल्टे पाँव लौटना पड़ा। आज बादशाह की खुशी उसके रोएं-रोएँ से फूट रही थी। जुबान में भी वैसी ही खुशी थी। पीथल के आते ही हँसकर बोला, "कहिए सीसोदिया वंश के जमाई ! प्रतापसिंह के रहने के लिए भी किसी कोठी वगैरह का इन्तज़ाम किया कि नहीं।" पीथल की जुबान बड़ी संयत थी, "सरकार ! आप जैसे मेहमान के रहते भला मैं क्या इन्तज़ाम करूँगा ? और महाराणा तो किला ही चाहेंगे, कोठी कब पसन्द करेंगे ?"

बादशाह मुस्करा उठा, "सच कविराज ! मज़ाक नहीं कर रहा हूँ।"

पीथल---कब पधार रहे हैं ?

अकबर---जल्दी ही आकर मुज़रा करने वाले हैं। बस, मेरा जवाब

जाने भर की देर है। सोचा, आपसे मशविरा कर लूं और उनके आवास के लिए इन्तज़ाम करने को कह दूँ। वैसे आपको तो सबसे पहले खबर मिलनी चाहिए थी।

पीथल सन्न रह गया। काटो तो खून नहीं। उसकी ज़िन्दगी का यह दिन घटाटोप बादलों से घिरा हुआ दिखाई पड़ा। लेकिन जिसकी ज़िन्दगी बादलों से घिरी हो, उसे बिजली की तरह चमकना ही चाहिए। पीथल के दिमाग में भी बिजली कौंध गई। वह बड़े ही गंभीर स्वरों में बोला, "सूरज पच्छिम में उदय हो सकता है, लेकिन महाराणा आपके दरबार में मुजरा नहीं कर सकते। आपको शायद ग़लतफ़हमी हो गई है।" बादशाह ने मुस्कराकर प्रतापसिंह का भेजा हुआ पत्र पीथल की ओर बढ़ा दिया। पीथल ने पढ़ा—

"मेरे दुःख हरिये………"

इन तीन शब्दों से आगे उसने पढ़ा ही नहीं और तमककर बोला, "सरकार! यह किसी ने आपसे मज़ाक किया है। 'सही' का निशान और मुद्रा दोनों महाराणा की नहीं हैं। ऐसी लिखावट लिखने वाला भी मेरे ख्याल से उनका कोई लिखिया नहीं है। वहाँ तो उनके दरबारी अब भी कहते हैं—

भागै सागै भाम।

अमृत लागै ऊमरा, अकबर तल आराम, जाणे ज़हर प्रतापसिंह।"[1]

अकबर का मुँह उतर गया। उसे शंका हो गई। उसके मुँह के उतार-चढ़ाव को देखकर पीथल समझ गया कि अब लोहा गरम है, अभी काट देना चाहिए। उसने झट बड़े ही मीठे स्वरों में कहा, "सरकार! अभी आप पत्र का उत्तर न भेजिए। मुझे कहिए तो मैं सवार भेजकर पता लगाऊँ कि

---

[1]अपनी पत्नी सहित भी ऊँची-नीची भूमि में भागते रहना भी प्रताप-सिंह को अमृत जैसा लगता है किन्तु अकबर की अधीनता में आराम करना उसे ज़हर जैसा लगता है।

सच्चाई क्या है ? वैसे अगर यह चिट्ठी जाली हुई तो आपके उत्तर को सभी नासमझी समझेंगे और व्यर्थ मज़ाक उड़ाएँगे।"

पीथल का यह सुझाव अकबर को बड़ा बढ़ा-चढ़ा-सा मालूम हुआ। उसे पीथल पर शक हो गया। उसने गुस्से में कहा, "तुम जो बड़ी लम्बी-चौड़ी हाँक रहे हो वह मैं सब समझता हूँ। वैसे प्रतापसिंह को यहाँ मुज़रा करने के अलावा कोई चारा नहीं है। फिर भी तुम पता लगाओ। अगर पत्र झूठा हुआ तो तुम्हें तुम्हारी सूझ-बूझ पर जागीर बख्श दूँगा और अगर सच हुआ तो तुम्हें और प्रताप दोनों को ज़िन्दा दोजख······।"

पीथल प्राणों की बाज़ी पर खेल गया। उसने अकबर की शर्त स्वीकार कर ली।

पीथल ने घर आते ही चारण सूरचन्द टापरिया और रम्भा को बुलाया। चम्पा भी तब तक बीकानेर और मेवाड़ के अशुभ समाचारों को सुन चुकी थी। उससे नहीं रहा गया। वह भी आ गई और पीथल को आवेश दिलाती हुई बोली, "औरतों की तरह रोना और कोमल-कोमल भावों की खूबसूरत चित्रकारी ही करना आता है या ऐसे मौके पर कुछ करोगे भी ?" पीथल को यह बात चुभ गई। उसने कहा, "हाँ, कुछ कर दिया है और कुछ कर दिखाऊँगा जिसे भारत का सारा हिन्दू इतिहास तब तक याद करेगा जब तक उसमें साँस रहेगी।" ऐसा कहते-कहते उसकी हाथों में कलम अपने आप आगई और उसने सिर्फ तीन दोहे लिखे :[1]

पातल जो पतसाह, बोले मुख हूँता बयण।

---

[1] यदि महाराणा प्रताप अपने मुख से अकबर को 'बादशाह' कह दें तो राजा कश्यप का पुत्र सूर्य पश्चिम दिशा में उदय होगा ॥१॥

मूँछों पर ताव दूँ या अपने शरीर पर तलवार चला लूँ ? हे एकलिंग के दीवान (महाराणा) इन दोनों में से एक बात लिख दो ॥२॥

मैं तुर्क (अकबर) के साथ वचनों के विवाद में जीतूँ या उसकी जीत को ज़हर समझूँ ? (मर जाऊँ ?) इन दोनों में से एक बात लिख दो॥३॥

मिहर पछम दिस माँह, ऊगे कासप राव उत ॥१॥
पटकूँ मूँछा पाण, कै पटकूँ कर तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥२॥
समजूँ जहर सवाद, किना बाद जीतूँ कलम।
या दो महली याद, सों लिख दीजै सीस बद ॥३॥

चम्पा फड़क उठी। उसे पढ़ते ही विश्वास हो गया कि इन तीनों दोहों में तीस करोड़ सेना का बल है। इसे पाकर महाराणा चुप नहीं बैठेंगे। कुछ कर दिखाएँगे। कम से कम मेवाड़ अवश्य स्वतंत्र हो जाएगा। उसकी आँखों में मातृ-भूमि के प्यार के आँसू छलक पड़े।

पीथल ने इन दोहों को चारण सूरचन्द टापरिया और रम्भा को सँभला-कर कहा, "भाई सूरचन्द और बहिन रम्भा! तुम दोनों भाई-बहिनों की भारी आवश्यकता अभी मेवाड़ को है। शीघ्र वहाँ पहुँचो और वहाँ रहकर महाराणा के स्वाधीनता-यज्ञ के पुरोधा बनो। मैं यहाँ से किसी भी तरह तुम लोगों की मदद करता रहूँगा। इन दोहों का उत्तर वहाँ से भेजना या स्वयं लाना। ध्यान रहे, तुम लोग उस समय तक चैन न लेना जब तक महा-राणा अपने खोये मेवाड़ को स्वाधीन न कर लें।" जब दोनों पीथल की कोठी छोड़ने लगे तो एक बार हर कोने को देख आए। चारण सूरचन्द वहाँ के पेड़-पत्तों से लिपटकर रो पड़ा और रम्भा चम्पा से लिपट गई। रोकने पर भी किसी की रुलाई न रुकी। ऐसा लगा मानो घर से बेटी की विदाई हो रही हो।

दोनों के चले जाने पर पीथल और चम्पा दोनों ही बड़े रोये, बड़े रोये। अपने विश्वास-पात्र मित्र से अलग होने पर भला कौन नहीं रोता।

खुरशीद को जब सारी घटना का पता चला तब उसका दिल धड़क-कर रह गया। उसने पीथल को एक पत्र भेजा—

मेरे खुदा,

तुम्हारी खैरियत के लिए तो मैंने इस दोज़ख की ज़िल्लत कबूल की है। और तुम रोज़ाना बादशाह से हठ कर बैठते हो। भला, मैं कितनी मदद

कर सकूँगी। बादशाह तुम्हें अब जल्दी ही दो-चार भयंकर युद्धों में भेजेगा ताकि तुम वापिस न लौट सको। वह समझ गया है कि तुम भीतर ही भीतर प्रतापसिंह से मिले हुए हो। तुम्हारे भाई रामसिंह की सरकशी उसे मालूम है ही। क्या कहूँ मेरे देवता ! मैं तो तुम्हारे लिए जान भी दूँगी। लेकिन बादशाह से खामख्वाह बैर क्यों मोल लेते हो ?

पति हट की पतसाह सूँ, येह सुणी मैं आज।
कहँ पातल अकबर कहाँ, करियो बड़ो अकाज ।।

उत्तर में पीथल ने लिखा :

जबरहें सुने हैं बैन तबतें न मोकों चैन,
पाती पढ़ नैंक सो विलम्ब ना लगावेगो
लेके जमदूत से समस्त राजपूत साज,
आगरे में आठों जाम उद्धम मचावेगो ।।
कहै पृथीराज प्रिया नैंक उर धीर धर,
चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो।
मन को मरद्द मानी प्रबल प्रतापसिंह,
बब्बर ज्यूँ तड़प्प अकब्बर पै आवेगो ।।

चम्पा, पीथल, गंगा और खुरशीद बड़ी आशा-निराशा से जूझते हुए महाराणा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। दिन काटे नहीं कटता था। रात युग की तरह लम्बी हो जाती थी। प्रत्येक क्षण आशा-निराशा के पंख फैलाए हुए आते और इन चारों के हृदय छूकर उड़ जाते। खाने-पीने की सुधि नहीं रही। चम्पा बार-बार सोचती, "यदि महाराणा का वह पत्र सच्चा हुआ तो वह किसके बल पर अपना सिर ऊँचा करेगी ? उसी अकबर के सामने मुज़रा करना होगा ? उस क्षण से तो मौत ही अच्छी।" पीथल सोचता, "जिस गर्व से मैंने अकबर से कहकर बात पलट दी है, उस गर्व को नाली में डूबकर मरना होगा यदि महाराणा······" इस कल्पना के होते ही उसके नेत्रों से गंगा-यमुना बह जाती। गंगा और खुरशीद दोनों की स्थिति विचित्र थी। ठीक वैसी ही जैसे कोई अपना साहसी प्रिय व्यक्ति बिना

बचाव का उपाय सोचे समुद्र में कूद पड़े और भाग्य से उसके तैर कर बाहर आजाने की कल्पना से अभिभावक किनारे पर टकटकी बाँधे बैठे रहें।

पीथल को अचानक एक सवार ने दौड़कर पत्र दिया और स्वयं हाँफता हुआ बैठ गया। वह यह भी नहीं कह सका कि कहाँ से आया है। रास्ते में विश्राम, अन्न-पानी उसने ग्रहण नहीं किया है, यह बात उसके चेहरे से साफ ज़ाहिर थी। पीथल की साँस टँगी की टँगी रह गई। बड़े उतावलेपन से उसने पत्र खोला। दुर्भाग्य ! यह पत्र महाराणा का नहीं था। रामसिंह का था—

पीथल,

आँधी की तरह उड़कर तूफान की तरह पहुँचो। भैया की सेना जाटों की सेना से घिर गई है। प्रलय हो रहा है। मैं किले की रक्षा प्राणों पर खेलकर कर रहा हूँ।

तुम्हारा अग्रज
रामसिंह

आफत की भी एक फौज होती है। वह अकेले नहीं आती। एक ओर पीथल के प्राण यूँ ही संकट में थे। यह खबर और भी भयावनी निकली। पता नहीं, यह साल कैसा अशुभ है उसके लिए। ठोकर पर ठोकर, खाज पर खाज, कुएँ से निकले नहीं कि खाई में पहले ही गिर पड़े। गंगादे के रोने का तार लग गया। उनकी दाहिनी आँख ज़ोर से फड़क उठी। दाहिना हाथ बार-बार फड़कने लगा। पड़ोस में वैसे ही एक कुत्ता कई रातों से डकार-डकारकर रो रहा था। इन अपशकुनों से गंगादे का हृदय डोल गया। उन्होंने आँसू भरे नयनों से पीथल की ओर देखा। यह दृश्य पीथल के लिए मौत से भी बदतर था। उसने सेवकों को आदेश दिया कि सवार तैयार हों। हम सभी आज ही बीकानेर के लिए कूच करेंगे।

पीथल की एक आँख में रामसिंह और रायसिंह का शत्रुओं से जूझता हुआ दृश्य था : लुटता हुआ राज्य और उतरते हुए झंडे का दृश्य था और दूसरी आंख में घास की रोटी, घास की शैया और घास ही का ओढ़ना ओढ़

महाराणा का हृदय-द्रावक दृश्य था। उसकी आँखों से आँसू सूख गए। खून बरस पड़ा। वह जल्दी-जल्दी तैयार हो रहा था। वह एक कान से भाभी और चम्पा की बात सुन रहा था और दूसरा कान कोठी के द्वार पर लगा रखा था—शायद कोई सवार आजाये, लेकिन प्रतीक्षा निष्फल निकली। वह अपने परिवार को लेकर चल पड़ा बीकानेर।

अभी पीथल कोठी से दो ही कदम चला होगा कि चारण सूरचन्द टापरिया की आवाज़ सुनाई दी। पीथल का घोड़ा हिन-हिनाकर रुक गया। पीथल ने पत्र को खोला। महाराणा ने उत्तर इस प्रकार लिखा था—

तुरक कहासी मुख पतो, इण तनसं इकलिंग।
ऊगें जाहि ऊगसी, प्राची बीच पतंग ॥१॥
खुस हूंता पीथल कमध, पटकों मूंछा पाण।
पछटण है जेते पतो, कलमा सिर केवाण ॥२॥
सांग मूंछ सहसीस को, समजस जहर लवाद।
भड़ पीथल जीतो भलां, बणे तुरक सूं वाद ॥३॥

पीथल का सीना गर्व से फूल उठा। उसने अपना घोड़ा सीधे किले की ओर मोड़ दिया और बादशाह को मुस्कराकर महाराणा का पत्र दिखा दिया। अकबर जल भुन कर राख हो गया। उसे फिर शक हो गया कि पत्र तो वह प्रताप का ही था लेकिन पीथल ने महाराणा को शह देकर उसे

भगवान एकलिंग इस प्रताप के मुख से तो अकबर के लिए 'तुर्क' शब्द ही कहलवाएँगे। सूर्य जहाँ उदय होता है, वहीं पूर्व दिशा में ही उदय होगा ॥१॥

हे राठौर पृथ्वीराज (पीथल) प्रसन्न होते हुए मूछों पर ताव दो, जबतक तुर्कों के सिर पर तलवार चलाने के लिए प्रताप जीवित है ॥२॥

बराबरी चाहने वाले शत्रु (अकबर) का यश स्वाद में ज़हर-तुल्य है। इसलिए प्रताप सिर पर सांग आदि सब कुछ सहेगा। हे वीर पीथल ! तुर्क के साथ वचनों के विवाद में भलीभाँति विजय प्राप्त करो ॥३॥

झुठला दिया है और यह पत्र उनसे मँगवा लिया है।

पीथल ने वहीं बैठकर महाराणा को धन्यवाद का पत्र लिखा—

हिन्दू हिन्दू कार, राणा जो राखत नहीं।
अकबरियो एकार, पोह सह करत प्रताप सी।।
नर जेथ निमाणा निलज नारी, अकबर गाहक बट अबट।
आवे जिण हाटे ऊदावत, बेंचे नहं रजपूत बट।।
परपंच दिठ बंध लाज निकापत, खोटो लाभ कुलाभ खरो।
रज बेचवा न आवे राणो, हाटे भीर हमीर हरो।।
रोजायतां तणे नवरोजे, जेथमसाणा जगत जन।
चौहटे तण आवे चीतोड़ो, पतो न खरचै खित्रिपन।।
पंड आपणा तणे पुरसातस, रोहणियाल तणे बलराण।
खल बेचिये जठै अन खित्रिये, खत राख्यो उठै खुमाण।।
जासी हार बाल रहसी जग, अकबर ठग जासी एकार।
है राख्यो खित्री धर्म राणा, सारो ले बरते संसार।।

अर्थात हिन्दूओं के हिन्दूपन की रक्षा जो राणा प्रतापसिंह नहीं करता तो अकबर सारी पृथ्वी को एकाकार कर देता। हमारे राजाओं का शौर्य और हमारी महिलाओं का सत डूब गया। राजपूत जाति के बाज़ार में अकबर ग्राहक ने उदयसिंह (महराणा) के अतिरिक्त सबको मोल ले लिया है। क्या नौरोज़ में सच्चा राजपूत अपनी आबरू खोता ? तथापि सब उसे खो बैठे हैं। दूसरे क्षत्रियों ने तो क्षात्र-धर्म बेच दिया पर क्या राणा भी इस चौहट्टे में आवेगा ? कभी नहीं। वीरता और खंग-बल से उस पुरुष सिंह ने क्षात्र-धर्म की रक्षा की। कई तो निराश होकर अपने अपयश को देखने के लिए इस हाट में आए। परन्तु हम्मीर की सन्तान उस कलंक से मुक्त रही। एक दिन अकबर इस बाज़ार में ठगा जावेगा। उस समय अन्य क्षत्री उजड़ी हुई क्षात्र-भूमि में पुनः बीजारोपण करने के हेतु प्रतापसिंह से प्रार्थना करेंगे। उस पवित्रता का उद्धार करने को सबकी आँखें राणा पर लगी हुई हैं।

षडविंशति परिच्छेद

पीथल की आँखों में प्रलय था और उसकी चाल में भूचाल। हाथों में साक्षात् दुर्गा खेल रही थीं और शस्त्रों में प्रलयंकर का तांडव हो रहा था। उसके युद्ध-संचालन की कुशलता और गति-क्षिप्रता पर प्रभंजन विमोहित हो रहे थे। आज वह महाकाल बना हुआ था। जिधर से ही निकल जाता, ढेर के ढेर शत्रुओं के रुँड-मुँड लोट जाते। न जाने आज वह क्या था? मानो दोनों हाथों से धरती को उठाकर दो टूक कर देगा। देखते ही देखते बीकानेर किले के चारों ओर रक्त की नदी बह चली। शत्रु-सैनिकों कि जुबान पर एक ही नाम था···वह काला भूत, वह काला भूत। उसकी सूरत से ही शत्रु-सेना में कँपकँपी मच गई। कोई युद्ध क्या करेगा? उसकी सूरत और नाम के भय से ही थरथराकर सभी गिर पड़ते थे। सचमुच आज वह भूचाल था। उसके आगे टिक सकने की हिम्मत स्वयं इन्द्र में भी न थी। वह होश में नहीं था—प्राणों पर खुलकर खेल गया। उस पर सच-मुच भूत सवार हो गया था। वह न आगे देखता था न पीछे। बस, दोनों हाथों से जिन्दगी और मौत को गेंद की तरह उछालता था और ठहाका मारकर हा···हा···हा···से आसमान को कंपित कर देता था।

सहसा रामसिंह की आवाज़ सुनाई दी, "पीथल! पीथल!! रुको! ठहरो!!" आवाज सुनते ही पीथल के हाथ जहाँ के तहाँ रुक गए। किले पर विजय हो चुकी थी। सारे शत्रु किले के मैदान में खेत रहे थे। पीथल दौड़कर रामसिंह के सीने से सट गया। और हाँफता हुआ बोला, "भैया! बड़े भैया कहाँ हैं? जल्दी बताओ?" रामसिंह ने सान्त्वना देते हुए कहा, "घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। मैं उनकी रक्षा के लिए

जा रहा हूँ। तुम किले की रक्षा करो।" पीथल ऐसे भयंकर समय में भी अपने भाई से हठ करके रूठ गया। वह भर्राये हुए स्वरों में बोला, "मैं इतना बड़ा हो गया। लेकिन अब भी आपको मुझ पर भरोसा नहीं है? जैसे कहीं बीच में रुक जाऊँगा? नहीं, नहीं, यह अवसर मेरा है। आप यहाँ किले में रहें। मुझे जाने की आज्ञा दें।" रामसिंह को अब भी पीथल की बातों में बच्चों की किलकारी सुनाई देती थी। उसके दाँतों को अब भी वे दूधे के दाँत ही समझते थे। लेकिन उसके हठ को देखकर विवश हो गए। गले लगाया और आशीर्वाद सहित तुरत विदा किया। उन्होंने उसके प्रलयकारी युद्ध को देखा था। वे उसकी विजय में पूर्ण विश्वास रखते थे।

अभी पीथल ने सेना सहित बीकानेर से प्रस्थान किया ही था कि उधर रायसिंह पूणिया जाटों द्वारा मारे गए। जाटों ने विजय-दुंदुभी बजादी। उनका झंडा लहरा उठा। रायसिंह के शव को जाटों ने अपने सैनिकों द्वारा बीकानेर के लिए भिजवाया। रास्ते में पीथल ने जब अपने भैया की लाश देखी तो बौखला गया। उसने आज्ञा दी कि यह लाश बीकानेर उस समय तक नहीं जाएगी जब तक शत्रुओं का बच्चा-बच्चा स्वर्ग तक न पहुँचा दिया जाएगा।

रात्रि हो गई थी। पीथल अपने भैया के शव के पास सिर नीचा किए रात भर रोता रहा और अपने नस-नस में कल के भयंकर महाभारत की रूप-रेखा बनाता रहा।

इधर पीथल की आँखों से टपटप आँसु की बूँद गिर रही थीं, उधर शत्रु-पक्ष में मदिरा की नदी बह रही थी। जशन मनाया जा रहा था। नृत्य और संगीत से सैनिकों के घाव भरे जा रहे थे। दीवानजी अब महाराजाधिराज हिम्मतसिंह कहे जा रहे थे और अपने परम मित्र नवाब साहब की चतुराई पर फूले नहीं समा रहे थे। दोनों ने जमकर दोस्ती का जाम पिया और एक परी-सी रमणी थिरक उठी। अन्त में दोनों उस रमणी के पास बैठ गए और बोले, "तुम्हारी सहायता न होती तो हम आज यह खुशी का दिन नहीं देखते। तुम्हारी ही मेहरबानी से रायसिंह और पीथल में फूट पड़ी। सेना

की सहायता मिली। रायसिंह को नई शादी में फँसाया गया और…"

रमणी—अरे ! चुप भी रहो! देखो आज का चाँद कैसा खूबसूरत है।

दीवान—वह चाँद तो दूर है, यह पास वाला चाँद क्या कम खूबसूरत है ?

नवाब साहब—सच पूछो तो मैं तुम्हारी इस लाजबाब खूबसूरती का खादिम हूँ।

रमणी मुस्कराई—मज़ाक के लहज़े में निखार आया। उसने हाथ में एक बेंत लिया और बोली, "अबे कुत्ते ! इसे चाट।" और उसने अपना पैर नवाब के सामने सरका दिया।

……और आश्चर्य। नवाब साहब सचमुच खुशी-खुशी चाटने लगे। तब तक रमणी ने दीवान साहब को कहा, "अबे बदज़ात कुत्ते ! तू क्या देखता है ? तू पूँछ हिला, नाच।"

दीवान साहब लचक-लचककर मजबूरी का नाच नाचने लगे। उन्हें एक ओर ख्याल था कि अब वे दीवान नहीं रहे, महाराजाधिराज हिम्मतसिंह हो गए हैं। लेकिन फिर भी मजबूरी थी। रमणी के अहसान से बेकदर दबे हुए थे। आगे भी हर तरह की सहायता की आशा थी। "हुँह ! कभी तुम्हारे बाप-दादों ने भी नाचा है। कौआ चला हंस की चाल, अपनी भी भूल गया। रहा कुत्ता का कुत्ता ही। चल इसे चाट।" ऐसा कहते हुए रमणी ने अपना दूसरा पैर दीवानजी की ओर बढ़ा दिया। खुद दोनों के सिर पर बेंत फेरने लगी। मानो दो नगाड़ों पर एक साथ संगीत की लकड़ी फेरी जा रही हो।

तब दीवान साहब ने कहा, "खुदा करे बहिश्त में भी तुम्हीं मिलो और तुम्हारे इन दोनों कुत्तों को संभाला करो। जी चाहता है, यहाँ से न उठें, ये कबूतर से पाँव……आह ! खुदा खैर करे।"……और सचमुच वे दोनों वहाँ से नहीं उठ सके। पीछे से सहसा दो सैनिकों ने उनके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और बाँधकर गट्ठर जैसा पटक दिया। देखते-देखते उन्हें घोड़ों पर लादा गया और रातों-रात वह रमणी अपने विश्वास-पात्र सिपाहियों के

साथ चल पड़ी बीकानेर की ओर। सारे सैनिक नशे में चूर सो रहे थे। एक-आध ने टोका। तब तक रमणी के विश्वस्त सैनिकों ने कह दिया, "चुप रहो। महाराजाधिराज कहीं काम से जा रहे हैं।" रमणी यह सुनकर मुस्करा उठी......वह खुरशीद थी।

रास्ते में पीथल दो गट्ठरों सहित खुरशीद को देखकर अवाक् रह गया। उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। कई बार खोला, कई बार बन्द किया। तब खुरशीद ने कहा, "हाँ, यह सच है मेरे खुदा। मैं हमेशा के लिए बादशाह का मीना बाज़ार छोड़कर भाग आई हूँ। तुमने बड़ी ग़लती की। ऐसी मौत जैसी आफ़त में भी मुझे याद नहीं किया। मुझे देर से पता चला। लो, सँभालो अपने दोस्तों को।" इतना कहते हुए उसने गठरी खोल दी। दीवान जी और नवाब साहब को बंधा हुआ देखकर पीथल सन्न रह गया। तब खुरशीद ने बताया, "ये ही सारे विद्रोह के नेता थे। ज़्यादा सुनकर क्या करोगे? शुरू-शुरू में इन लोगों ने मुझसे भी मदद ली थी। मेरे ख्याल से अब सारा राज़ सामने हो गया है।"

पीथल कुछ कह न सका। खुरशीद को पकड़कर रो पड़ा। खुरशीद को सारी बात मालूम हो चुकी थी। वह भी अपने को नहीं रोक सकी। रुँधे हुए कण्ठ से खुरशीद ने पीथल की सेना के अधिकारी को कहा कि जाओ और उधर आवारा जानवरों को भगा आओ। अब देरी नहीं लगेगी। सारे विद्रोह के नेता तो यहाँ गठरी में हैं। सेना-अधिकारी मुस्कराया भी, रोया भी। तुरत सेना को आगे बढ़ने का हुक्म दे दिया। खुरशीद और पीथल रायसिंह के शव को दीवानजी और नवाब साहब के गट्ठर के साथ उठवाकर बीकानेर लाए। सारा नगर मातम की स्याही से पुत गया।

"......................................"

× × ×

पीथल की भाभी का आज अन्तिम सुहाग-दिन था। उन्होंने स्नान करके अपना पूरा-पूरा शृंगार किया। सिन्दूरी आभरण में मुस्कराती हुई वह ऐसी लग रही थीं मानों राग-विराग, हर्ष-शोक से ऊपर कोई सुहाग की

देवी इठला रही हो।

उन्होंने पीथल को हँसते हुए चूमा। सिर पर हाथ फेरा और बोलीं, "देवर ! आज आखिरी बार है। ज़रा मुस्करा दो। तुम्हें अन्तिम बार जी भरकर देख तो लूं।" पीथल लाख कोशिश करने पर भी नहीं रुक सका और फूट-फूटकर रो पड़ा। दौड़कर भाभी की गोद में समा गया।

गंगादे फिर मुस्कराती हुई बोलीं, "जीवन जन्म-मृत्यु के बीच का नाम नहीं है पीथल ! अनन्त और असीम है, फिर मिलेंगे। एक बार मुस्कराओ मेरे पीथल !" पीथल आँखों में रोते-रोते अधरों से मुस्करा दिया।

चम्पा और खुरशीद दोनों वहाँ खड़ी-खड़ी हिचक-हिचककर रो रही थीं। उनका गला रोते-रोते बैठ गया था। गंगादे मुस्कराई और उन दोनों को अपने बाहुओं में भर लिया। बोलीं, "मत रोओ चम्पा ! मत रोओ खुरशीद ! ! तुम दोनों मेरे पीथल की दोनों आँखें हो। आज लालसा की बड़ी याद आ रही है। वह पीथल की शक्ति थी। तुम तीनों को पीथल आग, पानी और तूफान कहता है। पगला है न !" इतना कहते हुए उन्होंने पीथल को अपनी गोद में भर लिया और चम्पा तथा खुरशीद से बोलीं, "देखो ! प्रेम परमात्मा है और विवाह उसकी साधना। दोनों को कभी एक न समझना लेकिन दोनों को अलग-अलग न करना। प्रेमी प्रेयसी के यथार्थ रूप को कभी न तो आज तक देख पाया है और न कभी देख पाएगा। वह हमेशा अपने मानस-चित्र को प्रेयसी के ढाँचे में देखता रहेगा। दूसरी ओर पति-पत्नी के यथार्थ रूप को वह देख लेता है, क्योंकि दोनों हज़ार बार मिलते हैं और निरंतर निकट रहते हैं। बस प्रेम की गहराई के साथ-साथ बाहरी दूरी और आकर्षण बनाए रखना। आकर्षण और रूप में तितली और कर्त्तव्य-संचय में मधुमक्खी। यही दोनों का समाधान है।"

इतना कहकर गंगादे उठीं और पीथल के गालों पर सिन्दूर पोतती हुई बोलीं, "होली खेलोगे लल्ला ?" और मुस्कराती हुई धधकती चिता पर बैठ गईं। उनकी गोद में उनके सुहाग का शव था।

धू-धू-धू करती हुई चिता धधक उठी। पीथल की आँखें रोते-रोते फूटने-

सी लगीं। कानों में बार-बार यही सुनाई दे रहा था, "होली खेलोगे लल्ला ?" वह भावुक था। अधिक नहीं टिक सका। वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

बेहोशी में पीथल बड़बड़ा रहा है। जिन्दगी के सारे गहरे चित्र सामने आ रहे हैं। भाभी ··· खुरशीद···लालसा···चम्पा।···सूर्यमुखी ··· गुलाब ···चम्पा···। आग···पानी···तूफान।